'प्रमुख संस्कृत-महाकाव्यों में पौराणिक सन्दर्भ-एक आलोचनात्मक अध्ययन'

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के संस्कृत विषय में **डी0 फिल्0** उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध
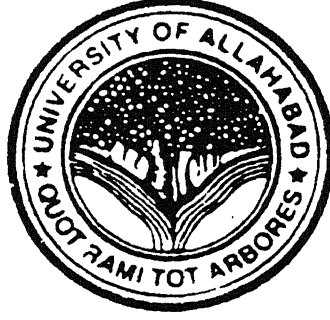
शोधकर्त्ता
ब्रह्मदेव शुक्ल
सीनियर रिसर्च फेलो (यू0जी0सी0)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

शोध-निर्देशिका
डॉ0 (श्रीमती) मृदुला त्रिपाठी
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
2002

डॉ० (श्रीमती) मृदुला त्रिपाठी
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

दिनांक: 8.2.2002.

:: अग्रसारण ::

मैं प्रमाणित करती हूँ कि **श्री ब्रह्मदेव शुक्ल** ने **"प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में पौराणिक सन्दर्भ - एक आलोचनात्मक अध्ययन"** विषय पर आवेदन पत्र की तिथि से मेरे निर्देशन में शोध-कार्य किया है। **प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध शोध** विषय का मौलिक, प्रमाणिक एवं श्रमसाध्य अनुशीलन प्रस्तुत करता है, ऐसा मेरा अभिमत है।

मैं प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को डी.फिल्. उपाधि हेतु परीक्षणार्थ विषय-विशेषज्ञों के सारस्वत-करों में सादर अग्रसारित करती हूँ।

मृदुला त्रिपाठी

डॉ० (श्रीमती) मृदुला त्रिपाठी
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

:: साभारोक्ति ::

बाल्यजीवन से ही मैं अपने माता-पिता एवं वृद्धजनों से अनेक कथाएँ सुना करता था। सनातनधर्मी मेरे माता-पिता प्रत्येक पूर्णमासी को भगवान् विष्णु की पूजा सुनते थे। एक बार मैंने भी इस कथा को सुना और पण्डितजी से पूछा कि सत्यनारायण की यह कथा कहाँ वर्णित है, तो पण्डितजी ने बतलाया कि यह कथा स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में वर्णित है। तभी से मेरे मन में इन पौराणिकउपाख्यानों को सुनने, समझने की उत्कट अभिलाषा हुई। इसीलिए मैं गाँव में होने वाले श्रीमद्भागवत पुराण के सप्ताहपाठ को अवसर सुनने चला जाता था। इन रुचिकर एवं प्राचीन कथाओं से हृदय खूब आहलादित होता रहा। इसकी पर्याप्त शिक्षा सुहृत्सम्मितउपदेश की भाँति थी। जीवन के दुर्गम पथ मुष्य को अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कैसे संयम और धैर्य से विचलित हुए बिना काम करना चाहिए। इसका भलीभाँति निरूपण पुराणों में मिलता है। स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मेरी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन की उत्कट अभिलाषा थी जो पूज्य गुरूदेव डॉ0 सुशील कुमार पाण्डेय (रीडर संस्कृत विभाग, सन्त तुलसीदास स्नातकोत्तर महाविद्यालय कादीपुर) तथा जटायुजी के सहयोग से और परमपूज्यपाद डॉ0 राम किशोर शुक्ल (शास्त्रीजी) (रीडर संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) की महती कृपा से पूरी हुई। इसके लिए मैं इन सभी गुरूजनों का जन्म-जन्मान्तर कृतज्ञ हूँ। स्नातकोत्तर कक्षा में मेरा सम्पर्क विश्वविद्यालय छात्र - **शिरोमणि जगदीश त्रिपाठी** जी से हुआ। व्याकरण में मेरी अभिरूचि देखकर जगदीश जी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने मुझे साहित्य के अध्ययन हेतु प्रेरित किया, साथ-साथ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की कनिष्ठ अनुसंधान अध्येतावृत्ति की परीक्षा में बैठने हेतु सत्परामर्श दिया। प्रथम प्रयास में ही मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया और मैंने शोध करने का निर्णय लिया। परमपूज्य गुरूवर्य **डॉ0 सुरेशचन्द्र पाण्डेय** की प्रेरणा से मैंने परमपूज्या स्नेहार्णव ममतामूर्ति **डा0 (श्रीमती) मृदुला त्रिपाठी** के निर्देशन में पुराणों पर शोधकार्य किया। इस कार्य में उनके सहयोग की जितनी प्रशंसा की जाय वह न्यून है। उनके सहयोग एवं समय-समय पर दिये गये निर्देशन से ही यह शोधकार्य पूर्ण हो सका।

शोधकार्य में प्रोफेसर चन्द्रिका प्रसाद शुक्लजी (भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के यथोचित सहयोग के लिए हृदय से सदा आभारी रहूँगा। शोध में जो दार्शनिकता परिलक्षित होती है वह डॉ0 दुर्गादत्त पाण्डेय जी का आशीर्वाद है। शोध कार्य में स्वतन्त्र चिन्तन एवं वैज्ञानिक विचारों के लिए श्री संजय जी का आभारी हूँ।

व्युत्पत्ति दृष्टि के लिए डॉ0 (आचार्य) नागेशचन्द्र पाण्डेय (सहायक मण्डल अभियन्ता उ0रे0) तथा श्री अवधेश नारायण पाण्डेय जी का मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ।

परमपूज्य डॉ0 हरिशंकर तिवारी (भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) तथा परमपूज्या डॉ0 (श्रीमती) ज्ञान देवी श्रीवास्तव (भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मेरे साथ पुत्रवत् व्यवहार किया साथ ही शोध कार्य में सहायता भी प्रदान की।

मैं अपनी परमादरणीया माँ श्रीमती सुभद्रा देवी, पिता श्री पारसनाथ शुक्ल, धर्मपत्नी श्रीमती ऋचा देवी तथा बहन रीता देवी का भी जन्म-जन्मान्तर आभारी हूँ जिन्होंने शोधकार्य में सहायोग हेतु अनेक त्यागपूर्ण कार्य किये।

शोधकार्य में श्वसुरजी एवं श्वश्रू जी तथा मनु भैया एवं सौरभ के सहयोग के प्रति भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

यशाकायशेष स्वर्गीया धर्मपत्नी श्रीमती मंजूरानी का किन शब्दों में साभार व्यक्त करूँ यह मेरे व्यथित हृदय की शब्द सामर्थ्य से परे है जो मेरे लिए शक्ति और प्रेरणा थी।

अपने वंश के सभी पूज्य व्यक्तियों का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने सदा इस कार्य में मेरा उत्साहवर्धन किया और आशीर्वाद देते रहे।

संस्कृत विभाग के सभी सदस्यों का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने शोध कार्य में सहायता की।

इस ग्रन्थ को लिखने में जिन अग्रजों - मनोज मिश्रा, डॉ0 जे0एन0 दूबे, सूफियान भाई, भूपेन्द्र सिंह, रणविजय सिंह, अजयजी, रंगनाथ शुक्ल, ठाकुर जी0एन0 सिंह, अरूण सिंह, जय प्रकाश द्विवेदी जी, अनुरूद्ध शर्मा, हीरालाल शर्मा, कप्तान सिंह, जगदीशजी, शैलेन्द्र जी, अनुज जी तथा प्रमोद कुमार सिंह ने सहयोग दिया, उनके प्रति मैं सादर कृतज्ञ हूँ।
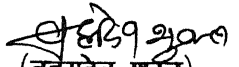
शोध लेखन में सहयोगी अनुज - राहुल, सतीश, श्याम सुन्दर, शकील अहमद, अली खाँ, सुनील, गोपाल, शशांक, ब्रजेश, अशोक, आशीष, संदीप, बब्लू, बैकुण्ठनाथ तथा पुत्र गंगा प्रसाद भी हार्दिक साधुवाद के पात्र हैं।

जिन ऋषि तुल्य, विद्यासागर, सुधीजनों का अमोघ आशीष पाकर यह निबन्ध पूर्ण हुआ उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए मेरे भाव विभोर हृदय के शब्द ही असमर्थ हैं।

इस शोध प्रबन्ध के लेखन में मैंने जिन ग्रन्थ रत्नों एवं लेखकों की सहायता ली उन सबके प्रति मैं परम कृतज्ञ हूँ।

अन्त में शोध प्रबन्ध के टंकणकर्त्ता विनोद जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अत्यन्त सावधानी पूर्वक अल्प समय में ही यह कार्य पूर्ण किया।

दिनांक: 08/02/2002

(ब्रह्मदेव शुक्ल)

विषयानुक्रमणिका

तृतीय अध्याय : पुराणों का प्रतिपाद्य विषय

चतुर्थ अध्याय : संस्कृत के प्रमुख महाकाव्यों का स्वरूप एवं उनमें उपलब्ध पौराणिक

सन्दर्भ - सामान्य परिचय

पंचम अध्याय : प्रमुख पौराणिक आख्यान एवं महाकाव्यों में उनका वर्णन

षष्ठ अध्याय : गौण पौराणिक उपाख्यान एवं महाकाव्यों में उनका वर्णन

सप्तम अध्याय : पौराणिक आख्यानों पर आधारित अन्य महाकाव्य

भूमिका

सुरभारती का काव्य-कोष अपरिमेय है । इस सिद्धान्त को मानने में सम्पूर्ण जगत् के अनेक भाषाशास्त्री लेशमात्र भी विवाद नहीं करते । देव-वाणी संस्कृत - भाषा के इतिहास में जिन संस्कृतज्ञ आलोचकों, समालोचकों का अनुशीलित मत दृष्टिगत किया गया ; उसका फलितार्थ सुस्पष्ट है कि संस्कृत - साहित्य का काव्य क्षेत्र चिरकाल से विकसित, परिष्कृत तथा समृद्धि अवस्था को प्राप्त हो चुका है । संस्कृत - साहित्य ने इस विशाल जम्बूद्वीप में सहस्रों वर्षों से महती प्रतिष्ठा प्राप्त की है । अनेक साम्राज्यों, राज्यों तथा सामन्तों की छत्रछाया में इस भाषा ने अपने वैभव के सुनहरे पल बिताये । सम्भवतः किसी भी भाषा को इतनी लम्बी अवधि तक इतने विशाल भूखण्ड पर इतने सुन्दर दिन देखने को नहीं मिले, एक-एक सूक्ति पर सहस्रों सुवर्ण मुद्रायें लुटा देने वाले गुणग्राही राजाओं ने कई शताब्दियों तक संस्कृत का मनुहार किया ।

प्रकृति की सहचरी आर्यावर्त की धरती ने सहस्रों वर्षो तक अपनी सम्पदाओं, सुविधाओं तथा समृद्धियों से इसका संवर्धन किया । देश का कोई अंचल नहीं बचा जहाँ इसने अपनी विजय वैजयन्ती न फहराई हो । विदेशियों को भी इसकी शरण लेनी पड़ी । ऐसी सर्वसाधन सम्पन्न, सहस्रों वर्षों की सुख-समृद्धियों में पली एक उन्नत राष्ट्र की विजयिनी भाषा में अनगिनत उच्च कोटि के ग्रन्थों की रचना आश्चर्य की बात नहीं । विपरीत परिस्थितियों और विपत्तियों के जिस क्रूर झंझावात से होकर संस्कृत - साहित्य को गुजरना पड़ा, इसकी भी समानता कोई दूसरी भाषा नहीं कर सकती । समय और विपत्तियों के थपेड़े में भी अविचल और अडिग बनी सुमधुरा संस्कृत-भाषा व्यसनी-मर्मज्ञ-चण-विलक्षणों ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से संस्कृत-भाषा में प्रणीत लब्ध-प्रतिष्ठ ग्रन्थों के अनुशीलन, चिन्तन, अवबोधन तथा मनन के माध्यम से समस्त संस्कृत काव्यगत सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों का सुस्पष्ट विवेचन करते हुए संस्कृत-साहित्य की गरिमा को लोकोत्तर साहित्य का गौरव प्रदान किया है ।

अपनी अलोकसामान्य भव्य भास्वर प्रतिभा के प्रभाव से महाकवि देशकाल की सीमा पारकर देशान्तर तथा कालान्तर को भी निरवधि ज्योतिर्मय करता रहता है । वह अपने तथा अपने युग की चेतना को सार्वभौम तथा सार्वजनीन बना देता हैं । उसकी स्वानुभूति विश्वानुभूति बन जाती है । विश्व के जिन साहित्यों को ऐसे महाकवि मिले है वे अमर हो गये । संस्कृत साहित्य उनमें अग्रणी है । प्रत्येक साहित्य में प्रतिभाशाली कवियों की लेखनी से प्रस्तुत कतिपय ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं । जिससे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर अवान्तरकालीन कविगण अपने काव्यों को सजाया करते हैं । ऐसे काव्यों को हम व्यापक प्रभाव सम्पन्न होने के हेतु 'उपजीव्य-काव्य' के नाम से पुकार सकते हैं । संस्कृत साहित्य में भी ऐसे ही उपजीव्य काव्य विद्यमान हैं जिनसे संस्कृत भाषा तथा अर्वाचीन प्रान्तीय भाषाओं के कवियों ने अपने विषय के निर्देश के लिए तथा काव्यशैली के विमल विधान के निमित्त सतत् उत्साह तथा अश्रान्त स्फूर्तिग्रहण की और आज भी कर रहें हैं । ऐसे काव्य तीन हैं :- (1) रामायण (2) महाभारत (3) पुराण ग्रन्थ । इन्हें 'उपजीव्यत्रयी' भी कहा जाता है । इन तीनों का अवान्तर काव्य-साहित्य के ऊपर बड़ा ही विशाल, मार्मिक तथा आभ्यन्तर प्रभाव पड़ा है ।

कालिदास, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष जैसे मूर्धन्य महाकवियों ने अपने ग्रन्थ में चमत्कार बढ़ाने के लिए पुराणों का सहारा लिया । पुराणों में वर्णित कथाओं का समावेश करके महाकवियों ने ग्रन्थ को और रुचिकर बना दिया है क्योंकि पौराणिक कथाओं के समाज में अत्यन्त प्रिय होने के कारण उनके द्वारा भावबोध कराने में बड़ी सुगमता हो जाती है । ये पौराणिक कथानक प्रायः उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, अतिशयोक्ति, भ्रान्तिमान, समासोक्ति आदि अलङ्कारों के साथ ही आते है, अतः ग्रन्थ की मनोहारिता बढ़ जाती है । पुराणों से ही अपने पिता-पितामह के निर्मल मार्ग को जाना जाता है, नाना जातियों की उत्पत्ति, देश-भेद, ज्ञान-विज्ञान आदि का ज्ञान पुराणों से ही होता है । पुराण तो सनातन धर्म के प्राणभूत हैं । भारतवासियों का पुराण ही परमधन हैं, उपासना का भण्डार, मुक्ति का द्वार पुराण ही हैं । भगवदवतार की विशेषता का प्रतिपादन पुराण ही करते हैं । नवधा भक्ति, ईश्वर के चरणों में प्रीति पुराण कथा से ही आती है । बहुत क्या, दोनों लोकों का साधक पुराण ही हैं ।

पुराण संस्कृति हमारी पुरातनता, सनातन सत्य का बोध कराती है। सनातन सत्य है, ऋषिमनीषा की वह सोच, जो उसने हजारों वर्ष पूर्व आकाश तले हरितभरित पावन आश्रम भूमि रूप अक्षय क्रोड में आसनस्थ हो, वेद वाणी - 'सर्वे सन्तु निरामया' 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'समानीप्रपा' आदि को उद्घाटित किया था। यही है हमारी जीवन्तता के उत्स, जिसकी धार भारतीय संस्कृति का अजस्र प्रवाह बना। उसी प्रवाह के विश्रामस्थल पुराण, हमारी जीवन यात्रा के शाश्वत पाथेय है।

इसी महनीय महत्त्व के कारण ही महाकवियों ने अपने महाकाव्यों में अनेक पौराणिक कथाओं का विस्तृत उल्लेख किया है। इसका विशद विवेचन आगे के अध्यायों में किया जायेगा। कुछ महाकवियों ने पौराणिक कथानकों को आधार रूप में अपनाया तथा कुछ ने अपने महाकाव्यों में अनेकशः इन कथानकों का समावेश किया है।

इसी प्रकार अनेक पौराणिक प्रसंग, जैसे - वामनावतार, मदनदाह, सागरपान, इन्द्रद्वारा पर्वतों का पक्षभेदन, मत्स्यावतार, कूर्मावतार, अन्धकासुर वध, त्रिपुरदाह, पारिजातहरण तथा परशुराम द्वारा क्षत्रियों का वध इत्यादि कथायें इन ग्रन्थों में उल्लिखित होकर उसे और अधिक पाण्डित्यपूर्ण बना देती हैं।

इस शोध-प्रबन्ध में महाकाव्यों में वर्णित पौराणिक उपाख्यानों का तुलनात्मक अध्ययन विशेष रूप से वर्णित किया गया है। महाकवियों ने पुराणों के पीयूष-पयोधि को सर्गबद्ध महाकाव्य - रूप में रचकर स्तुत्य कार्य किया है।

शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में महाकाव्यों के स्वरूप एवं विकास परम्परा पर विस्तृत विवेचन है। इसके अन्तर्गत काव्य की अन्तःस्फूर्ति, काव्य-प्रेरणा एवं नवीन मनोविज्ञान पर फ्रायड, ऐडलर तथा युंग की चर्चा के साथ एक समीक्षात्मक मत प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही काव्य के महत्त्व, स्वरूप तथा काव्यभेद की भी समीक्षा की गयी है। महाकाव्यों के स्वरूप पर आलोचनात्मक विवेचन के साथ पाश्चात्य मत की भी चर्चा की गयी है। आर्ष महाकाव्यों के सामान्य परिचय के साथ सुप्रसिद्ध लौकिक संस्कृत महाकाव्यों का सामान्य परिचय दिया गया है। इसके साथ अन्य महाकाव्यों एवं महाकवियों का भी वर्णन किया गया है।

शोध-प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में पुराणों पर गहन विचार-विमर्श किया गया है। इसके अन्तर्गत पुराणों का स्वरूप, अर्थ, लक्षण, रचयिता, रचनाकाल और भेदों की मीमांसा की गई है महापुराणों के सामान्य परिचय के साथ उपपुराणों का नाम निरूपण किया गया है।

शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में पुराणों के प्रतिपाद्य विषय पर विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत त्रिदेव की पुनर्प्रतिष्ठा, व्रत एवं वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपादन, पौराणिक धर्म, अवतारवाद की अवधारणा, भक्ति का स्वरूप, पुराण और राष्ट्रीयता, पुराणों में इतिहास, पुराणों में भूगोल, पुराणों में चिकित्सा, वेद से अधिक पुराणों की महनीयता, पुराणों में वैदिक विचारों का समन्वय, वेद पुराण की एकता, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का समन्वय, लोक कल्याण-पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक सन्दर्भ, विषय पर गम्भीर चिन्तन वर्णित है।

शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में संस्कृत के पाँच प्रमुख महाकाव्यों - कुमारसम्भव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधीय चरित, की विशद विवेचना की गयी है, साथ ही उसके काव्य सौन्दर्य पर प्रकाश डाला गया है। अन्ततः महाकाव्यों में उपलब्ध पौराणिक आख्यानों का नाम निरूपण किया गया है।

शोध-प्रबन्ध के पंचम अध्याय में प्रमुख पौराणिक आख्यानों का सांगोपांग वर्णन है साथ ही महाकाव्य में उनकी समरूपता एवं भिन्नता को सोदाहरण दिखाया गया है। मूल रूप में वे कहाँ से उद्धृत हैं इसका भी स्पष्ट साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है।

शोध-प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में गौण पौराणिक आख्यानों की विशद चर्चा के साथ महाकाव्यों में उनके उदाहरण भी वर्णित किये गये हैं। पौराणिक आख्यान, महाकाव्यों में वर्णित आख्यान से यदि भिन्न है तो उसका भी निरूपण किया गया है। इसी अध्याय में एक समीक्षात्मक मत भी प्रस्तुत किया गया है।
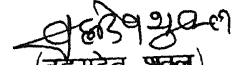
शोध-प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में पौराणिक आख्यानों पर आधारित अन्य महाकाव्यों का वर्णन किया गया है।

शोध-प्रबन्ध के अष्टम अध्याय में उपसंहार में पूर्व वर्णित विचारों के विवेचन के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को प्रमुखता दी गयी है। अन्त में सहायक ग्रन्थों की सूची दी गयी है। अन्त में -

क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते - इस सूक्ति के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ। मेरे इस विद्याभ्यास से सुधीजनों को यदि तनिक भी आनन्दानुभूति होगी तो मेरा श्रम सार्थक हो जायेगा।

श्रीश्रीकृष्णार्पणमस्तु

ब्रह्मदेव शुक्ल
(ब्रह्मदेव शुक्ल)

माघ पूर्णिमा
संवत् 2058 विक्रमी

प्रथम अध्याय

महाकाव्यों का स्वरूप एवं विकास परम्परा

महाकाव्यों का स्वरूप एवं विकास परम्परा

क. काव्य विचार

काव्य की अन्तः स्फूर्ति - एक सामान्य चर्चा :-

कविता का मूल स्रोत भावाभिव्यक्ति है । कवि के हृदय में उद्वेलित होने वाले भावों को शब्दों के द्वारा प्रकट करने वाली ललित वस्तु का ही नाम "कविता" है । भावाविष्ट हृदय होने पर ही कविता का उद्गम होता है । जब तक कवि का हृदय भावों के द्वारा पूर्ण होकर उन भावों को अपने श्रोताओं तक पहुँचाने के लिए छलक नहीं उठता; अपनी अभिव्यक्ति के लिए शब्द का कमनीय कलेवर जब तक धारण नहीं करता तब तक कविता का जन्म नहीं होता । जब तक कविहृदय को तीव्र भावना आक्रान्त नहीं करती तब तक वह विशुद्ध कविता का निर्माण नहीं कर सकता । काव्य अन्तश्चेतना की वाह्य अभिव्यक्ति है । जो हृदय स्वतः किसी भाव का अनुभव नहीं करता, वह किसी भी दशा में दूसरे के ऊपर उस भाव का प्रकटीकरण नहीं कर सकता । तीव्र भाव के अन्तः जागरण के साथ ही साथ उसकी शाब्दी अभिव्यक्ति बाहर अवश्यमेव होती है । अतएव रसात्मक कविता के उन्मेष के लिए हृदय को रस दशा में पहुँचाना ही पड़ता है । आलोचना के इस मर्म को सर्वप्रथम वाल्मीकि ने हमें सूत्र-रूप में समझाया ।

इस प्रकार यह मान्यता सत्य प्रतीत होती है कि दु:खों के संवेग के अवसर पर ही काव्य की उद्भावना होती है । एक सफल काव्य सृजन के लिए कवि में गहरी वेदना होना आवश्यक है तभी कविता की सहजधारा स्वतः परिस्फुटित होती है । जैसे कि आदि कवि वाल्मीकि की वेदना को व्याध के बाण से घायल क्रौंच के लिए विलाप करने वाली क्रौंची की करूण वेदना ने उद्भावित किया -

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ।।[1]

सुमित्रानन्दन पन्त ने इसी भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है ।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण - बालकाण्ड - 2/15 ।
2. वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान ।
   उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अन्जान ।।

यही उनके काव्य का प्रथम सूत्रपात था । वाल्मीकि संस्कृत साहित्य के आदि कवि ही नहीं प्रत्युत् आदिम आलोचक भी हैं । महर्षि वाल्मीकि को ब्रह्माजी ने 'आद्यः कविरसि'[1] कहकर संबोधित किया था । महर्षि की आलोचना जगत् को सबसे महान् देन है - शोक तथा श्लोक का समीकरण । तथ्य यह है कि संस्कृत कविता के जन्म के साथ ही साथ संस्कृत-आलोचना शास्त्र का भी जन्म हुआ । वाल्मीकि का यह पद्य :-

समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा ।
सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः ।।[2]

निःसन्देह कवि को महान् कवि तथा आलोचक सिद्ध करता है ।

संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य आलोचक आनन्दवर्धन तथा कविता-कामिनी-कान्त कालिदास ने शोक तथा श्लोक का समीकरण प्रस्तुत करने वाले वाल्मीकि को महान् कवि के अतिरिक्त महान् आलोचक भी माना है । कालिदास की स्पष्ट उक्ति है :-

तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी, कविः कुशेध्माहरणाय यातः ।
निषादविद्धाण्डज दर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।।[3]

ध्वनि प्रस्थापक राजानक आनन्दवर्धनाचार्य की रुचिर आलोचना है :-

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।
क्रौंचद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ।।[4]

---

1. उत्तररामचरित-अङ्क - 2 वाक्य संख्या 24 ।
2. वाल्मीकि - रामायण - बालकाण्ड 2 - 40 ।
3. रघुवंश महाकाव्यम् - 14 - 70 ।
4. ध्वन्यालोक - 1 - 5 ।

यह ठीक है कि लौकिक संस्कृत में काव्य का प्रथम सूत्रपात वाल्मीकि ने किया किन्तु इससे बहुत पूर्व ही वैदिक संस्कृत ग्रन्थों में काव्य की रमणीय छटा दृष्टिगोचर होती है । वस्तुतः काव्य तत्त्व का मूल उत्स हमें भारतीय वाङ्मय के आदि उषस्कालीन ग्रन्थ ऋग्वेद में मिलता है । ऋग्वेद के विभिन्न देवताओं से सम्बन्धित स्तुतिपरक मन्त्रों तथा दान स्तुतियों में काव्यीय उत्स विद्यमान है । पुरूरवा-उर्वशी, इन्द्र-मरूत, विश्वामित्र -नदी, अगस्त्य-लोपामुद्रा आदि संवाद -सूक्त काव्य की दृष्टि से अगणित कोमल संवेदनाओं के केन्द्र हैं । ऋग्वेद के दशम्-मण्डल में अनेक सरस सूक्त हैं जिनमें मानव मन को छू लेने वाली कोमल काव्यात्मक भावनाएँ अभिव्यक्त की गई हैं । सम्पूर्ण ऋग्वेद ही काव्यात्मक भावनाओं से ओत प्रोत है । कहीं-कहीं तो नाराशंसी गाथाओं में ये भावनाएँ लौकिक संस्कृत की कविता की भाँति उद्दीप्त हो गयी हैं ।

ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् में तो काव्य भरा पड़ा है । मुण्डकोपनिषद् तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् में दो पक्षियों की उपमा देकर आत्मा-परमात्मा के बीच भेद अत्यन्त मनोरम शैली में समझाया गया है :-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकसीति ।।[1]

इसी प्रकार बृहदारण्यकोपनिषद् में भी याज्ञवल्क्य ने काव्यात्मक रूप में ही मैत्रेयी को आत्मतत्त्व का उपदेश दिया है । समूचा वेद - वेदाङ्ग भरपूर काव्य भावनाओं से युक्त है ।

यद्यपि काव्य के दर्शन हमें वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं किन्तु लौकिक संस्कृत में काव्य का प्रथम अवतरण वाल्मीकि द्वारा ही किया गया । इससे ही लौकिक काव्य परम्परा प्रादुर्भूत हुई जो प्रतिदिन पुष्पित एवं पल्लवित होती हुई आज विशाल साहित्य के रूप में समृद्ध है ।

---

1. श्वेताश्वतरोपनिषद् 4 - 6 ।

।। काव्य प्रेरणा एवं नवीन मनोविज्ञान

। फ्रायड - काम वासना :-

नवीन मनोविज्ञान के जन्मदाता फ्रायड के अनुसार मनुष्य की समस्त अभिलाषाओं तथा चेष्टाओं का आधार एक ही शक्ति है जिसे उन्होंने 'लिबिडो' या मूल शक्ति कहा । यह मूल शक्ति काममयी है । मनुष्य जो कुछ कार्य करता है जो कुछ भी चेष्टा करता है उसकी प्रेरिका है यह कामवासना, जो अपनी तृप्ति के लिए अनेक मार्गों को खोज निकालती है । जगत् के मौलिक प्रवृत्ति में यही काम वासना सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान रहती है । मनोविज्ञान के मर्मज्ञों का परीक्षित सत्य है कि जब काम वासना के प्रकाशन का दमन किया जाता है, तब जीवन में मार्मिक तथा प्रभावशाली घटनाओं की उत्पत्ति होती है । काम वासना के निरोध तथा उदात्तीकरण में ही कला की अभिव्यक्ति होती है ।

अतः कला की प्रेरणात्मिका शक्ति काम वासना ही है । उदात्त मार्ग में जब वह प्रकाशित होती है, भोग विलास में दैनन्दिन प्रवाह को रोककर जब उसका प्रवर्तन किसी उदात्त भावना की अभिव्यंजना हेतु किया जाता है तब कला या काव्य का उद्गम होता है ।

प्रगतिशील आलोचकमन्यों की यह धारणा कितनी भ्रांत है कि काम वासना की अटूट तृप्ति ही काव्यकला की जननी है । यदि यही पक्ष मान्य होता तो नैतिक जीवन के विरुद्ध आचरण करने वाले व्यभिचार परायण व्यक्ति ही सर्वश्रेष्ठ कवि होते । फ्रायड ने खुद इसकी आलोचना की है और घोषणा की कि कामवासना के उदात्तीकरण से ही काव्यकला का जन्म होता है न कि कामवासना के अधःकरण से । महाकवियों तथा महनीय कलाकारों के जीवन ही इसके उज्जवल प्रमाण हैं । अतः इन मनोवैज्ञानिकों का काव्य विषयक मत कथमपि ग्राहय तथा उपादेय नहीं हो सकता ।[1] कामेच्छा का प्राबल्य हमारे शास्त्रों में भी सर्वत्र स्वीकार किया गया है । ऋग्वेद के विख्यात नासदीय सूक्त में सृष्टि के आरम्भ में काम के उदय की कथा मिलती है ।[2] वासना रूप काम सूक्ष्म रूप से सृष्टि के मूल में सर्वत्र व्यापक दृष्टिगोचर होता है परन्तु उसी को एकमात्र मूल शक्ति मान लेना मानव जीवन की अन्य प्रेरिका शक्तियों की सत्ता का तिरस्कार करना है । यह सिद्धान्त कला के आंशिक उदय की ही व्याख्या करता है समग्र रूप का नहीं ।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - रसमीमांसा (पृष्ठ 293 - 294) ।
2. कामस्तदग्रे समवर्तताधि (10/ 129 / 04) ऋग्वेद ।

2. **ऐडलर - प्रभुत्वशक्ति**

ऐडलर की सम्मति मे मूल शक्ति प्रभुत्व शक्ति है । प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई व्यापक दोष होता है जो उसके मूल्य तथा महत्त्व को समाज में हीन बनाये रहता है । इस हीनता की ग्रन्थि से उसका मन इतना उलझा रहता है कि वह इस पर आवरण डालकर इस दोष के विरूद्ध गुण के सम्पादन में लग जाता है । सांसारिक प्रवृत्तियों का यही मूल स्रोत है । इसका सबसे सुन्दर प्राचीन उदाहरण है यूनानी वक्ता डिमास्थीनीज का । वह बाल्य काल में तुतलाकर बोलता था परन्तु अपने श्रम और उद्योग से वह प्राचीन काल में श्रेष्ठ व्याख्यानदाताओं में सबसे श्रेष्ठ माना जाता था ।

कुछ अंश तक यह मीमांसा ठीक है । भारतीय सन्दर्भ में भी ऐसे आख्यान मिलते हैं । अपनी पत्नी द्वारा तिरस्कृत तथा अनादृत होकर तुलसीदास तथा कालिदास ने अपने चरित्र की त्रुटिमार्जना के निमित्त ही इतना अलौकिक कार्य किया है । परन्तु इसकी एकांगिकता ही इसका सर्वप्रधान दोष है । हीनता की ग्रन्थि के निराकरण के लिये ही सारी प्रवृत्तियाँ नहीं होती । संसार में ऐसे अनेक व्यक्ति विद्यमान हैं, जिनमें हीनता की विरोधिनी उदात्तता की ग्रन्थि विद्यमान है । ऐसे लोगों की प्रवृत्ति का मूल कहाँ खोजा जायेगा ?[1]

3. **युंग - आत्मसाक्षात्कार की प्रवृत्ति**

युंग के सिद्धान्तानुसार आत्मसाक्षात्कार की वृत्ति ही कला तथा काव्य की प्रेरिका शक्ति है । कला व्यक्ति के मानसिक विकास का अन्यतम प्रकार है । अत उसमें व्यक्ति के मानस विकास की पूर्णता तभी हो सकती है जब वह अपना साक्षात्कार सम्पन्न करता है ।

पूर्व प्रतिपादित भारतीय मत से यही मिलता - जुलता सिद्धान्त है परन्तु इसमें भी अनेक बातें विचारणीय हैं । मेरी दृष्टि में आधुनिक मनोविज्ञान भी कला की प्रेरणा शक्ति की खोज करता हुआ उसी सिद्धान्त तथा मत को मानने के लिए बाध्य हो रहा है जिसे हमारे आलोचकों ने बहुत पहिले ही से निर्णीत और निश्चित कर दिया था ।[2]

---

1. संस्कृत आलोचना - (पृष्ठ - 52) ।
2. संस्कृत आलोचना - (पृष्ठ - 53) ।

।1।- काव्य का महत्त्व

संस्कृत-वाङ्मय अति प्राचीन है । इसके अन्तर्गत शास्त्र, इतिहास तथा काव्य की गणना होती है । इनमें से शास्त्र के अन्तर्गत शब्द का प्राधान्य होता है, इतिहास में इतिवृत्त का महत्त्व होता है जबकि काव्य में अभिव्यक्ति या भावाभिव्यक्ति की प्रधानता होती है ।[1] काव्य में शास्त्रेतिहास की अपेक्षा श्रवणपेशलता अधिक होती है, इसीलिए लोक में इसका महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक है । व्युत्पन्न शिरोमणि, वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रकाश में काव्यप्रयोजन के प्रसङ्ग में काव्य के महत्त्व का प्रतिपादन बड़े सुन्दर ढंग से किया है । अन्तिम दोनों प्रयोजन काव्य के महत्त्व को सम्यक् रूप से प्रदर्शित करते हैं :-

1. सद्यः परनिर्वृति
2. कान्तासम्मित उपदेश ।[2]

काव्य श्रवण से लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति होती है तथा इस आनन्दानुभूति के अवसर पर सहृदय को किसी अन्य वस्तु का ज्ञान नहीं रहता । तेरे-मेरे का परिमित प्रमातृभाव विगलित हो जाता है यही उसकी तन्मयता का रहस्य है । यही रस की स्थिति है । आचार्य अभिनवगुप्त के मत में रस एक अलौकिक वस्तु है जो स्थायीभाव से विलक्षण[3] तथा चर्व्यमाणरूप[4] है । अनेक आचार्यों ने इसे 'ब्रह्मानन्दसहोदरः' तथा 'ब्रह्मानन्द सचिवः' की संज्ञा से विभूषित किया किन्तु ब्रह्मानन्द नहीं कहा । इसके अतिरिक्त काव्य से सरस उपदेशों की भी प्राप्ति होती है । ये उपदेश त्रिविध हैः- 1. प्रभु -सम्मित 2. सुहृद् -सम्मित तथा 3. कान्ता -सम्मित । इनमें से वेदादि शास्त्रों के उपदेश प्रभुतुल्य होते हैं क्योंकि उनमें शब्द की प्रधानता है, आदेश का भाव है, उनमें सत्य का नग्न रूप है । नीरस होने के कारण ये सुग्राह्य नहीं होते ।

---

1. अग्नि पुराण – 337/2,3 ।
2. काव्यं..........................।
   सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।1 काव्य प्रकाश - । / 2 ।
3. अभिनवगुप्त-स्थायीविलक्षण एव रसः . अभिनवभारती . रस सूत्र व्याख्या प्रकरण ।
4. अभिनवगुप्त - चर्व्यमाणतैकसारः. तत्रैव . ।

पुराणेतिहासादि के उपदेश सुहृत्सम्मित होते हैं इनमे अर्थ की प्रधानता होती है । इनमें सत्य के साथ शिवत्व की भावना का भी योग है । किन्तु काव्य का उपदेशतोप्रियतमा क मधुर तथा रसीले वचनों के समान सरल, सरस तथा रसयुक्त होता है, उसमें सौन्दर्य है तथा साथ-साथ सुग्राह्यता भी । इस प्रकार काव्य में शब्द, अर्थ की गौणता तथा रस की प्रधानता होती है । जिस प्रकार कोई पियतमा अपने प्रियतम को सरसतापूर्वक अभिमुख करके किसी कार्य के प्रति प्रेरित करती है उसी प्रकार काव्य भी रसिकहृदय को सरसता के साथ जीवन के लिए उपयोगी शिक्षा देती है । इस दृष्टि से शास्त्र तथा इतिहास की अपेक्षा काव्य का महत्त्व अधिक परिलक्षित होता है । आचार्य विश्वनाथ का मत है कि काव्य के द्वारा ही अल्पबुद्धि वालों को भी बिना किसी विशेष परिश्रम के चतुर्वर्ग ।। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।। के फल की प्राप्ति हो सकती है ।[1] इस प्रकार काव्य सभी के लिए समानरूप से उपयोगी है ।

काव्य का स्वरूप :-

लोकोत्तरवर्णनानिपुण कविकर्म काव्य के लक्षण या स्वरूप का प्रतिपादन मम्मट के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती सभी आचार्यों ने किया है जिसमें साहित्यशास्त्र के भीष्मपितामह भामह[2], काव्यादर्श प्रणेता दण्डी [3], रीतिवादी वामन [4], काव्यालंकारकर्ता रूद्रट [5], प्रतापरूद्रयशोभूषण के रचयिता विद्यानाथ[6] ध्वनिकार आनन्दवर्धन[7], राजशेखर [8], वक्रोक्तिजीवितकार कुन्तक [9] आदि पूर्ववर्ती आचार्य हैं ।

---

1. चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि ।
   काव्यादेव-----------------।। साहित्यदर्पण - 1 / 2 .
2. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा ।। काव्यालङ्कार - 1/16 .
3. शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली ।। काव्यादर्श - 1 / 10 .
4. काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कार संस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते ।। काव्यालङ्कारसूत्र - 1/1.
5. शब्दार्थौ काव्यम् ।। काव्यालङ्कार - 2 / 1 .
6. गुणालङ्कार सहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ ।। प्रतापरूद्रयशोभूषण - पृष्ठ - 42
7. सहृदयहृदयाह्लादि शब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम् ।। ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत-कारिका-1 की वृत्ति
8. शब्दार्थौ ते शरीरम्, संस्कृतम् मुखम्.........अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति ।। काव्यमीमांसा पृष्ठ 13 - 14 .
9. शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि ।
   बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लाद कारिणि ।। वक्रोक्तिजीवितम् - 1/7.

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ[1] तथा रसगड्.गाधर के रचयिता पण्डितराज जगन्नाथ[2] परवर्ती आचार्य हैं । इनमें से सर्वाधिक सुसम्बद्ध, तर्कसड्.गत तथा पूर्ण काव्य-लक्षण 'व्युत्पन्नशिरोमणि' 'वाग्देवतावतार' 'आचार्यमम्मट' ने दिया है । अतः यहाँ उनके द्वारा दिये गये काव्य- लक्षण का ही विश्लेषण समीचीन प्रतीत होता है । मम्मट के अनुसार यथासम्भव दोषरहित, गुणसहित तथा अंलड्.कारों से युक्त शब्दार्थयुगल काव्य है; किन्तु यदि कहीं अलड्.कारों की स्फुट प्रतीति न हो तो भी काव्यत्व की हानि नहीं होती :-

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलड्.कृती पुनः क्वापि ।[3]

यहाँ दोष रहित से मम्मट का तात्पर्य यह है कि जो काव्यत्व के विघातक च्युतसंस्कृति आदि दोषों का अभाव । किन्तु संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो सर्वथा दोष रहित हो । अभिप्राय यह है कि यदि कोई कृति सहृदयों के हृदय को आह्लादित करती है तो उसके काव्य होने में तनिक भी सन्देह नहीं क्योंकि कीट का खाया हुआ रत्न भी रत्न ही है, इसी प्रकार यदि शब्दार्थयुगल में रसादि की स्पष्ट योजना है तो किंचित् दोष भी गुण बन जाते है अर्थात् वह काव्य ही है । इसी बात को आचार्य विश्वनाथ ने इन शब्दों में व्यक्त किया है :-

कीटानुविद्धरत्नादि साधारण्येन काव्यता ।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः ।।[4]

कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदास ने भी इस बात का भरपूर समर्थन किया है ।[5]

---

1. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।। साहित्य-दर्पण ।/3.
2. रमणीयार्थ - प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।। रसगड्.गाधर - पृष्ठ - 4.
3. काव्य-प्रकाश - । / 4
4. साहित्य-दर्पण ।
5. एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाड्.कः ।

गुण समुच्चय होने पर दोष भी गुणता को प्राप्त हो जाते हैं । मम्मट का इस विषय में मत है कि रमणी के नेत्र के अंजन की भाँति आश्रय के सौन्दर्य से काव्य दोष भी शोभा को धारण करता है । इसका भलीभाँति स्पष्टीकरण एक पद्य से किया जा सकता है जो हनुमन्नाटक के चतुर्दश अङ्क में रावण की उक्ति के रूप में वर्णित है ।[1]इसमें विधेयाविमर्श दोष होते हुए इसकी गणना सुधीजन उत्तमकाव्य में करते हैं । आचार्य अभिनवगुप्त की इस श्लोक के बारे में बड़ी उत्कृष्ट धारणा है कि यदि इस श्लोक को खण्ड-2 कर दिया जाय तो इसके एक-एक खण्ड से रस की अलौकिक छटा निकलती है ।

वस्तुतः अनेक आचार्यों ने गुणाधिक्य होने पर दोष के अन्तर्भाव की चर्चा की, चन्द्रमा के सौन्दर्य के भीतर कलङ्क दब जाने की बात की । किन्तु सच बात तो यह है कि चन्द्रमा का कलङ्क कितना ही क्यों न दब गया हो परन्तु देखने वाले को सबसे पहिले खटकता है । इसी प्रकार काव्यदोष काव्य के गौरव को कुछ न कुछ कम करने वाला हो जाता है । इसीलिए मम्मटाचार्य ने गुणालंङ्कार से पूर्व ही दोषों की चर्चा की :-

दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात् पूर्वं गुदप्रक्षालनं यथा ।।

मम्मट के अनुसार काव्यरूप शब्दार्थयुगल गुणयुक्त होना चाहिए । यहाँ गुण पद गुणाभिव्यंजक अर्थ में है क्योंकि गुण तो वस्तुतः रस के धर्म हैं किन्तु उपचार से शब्द तथा अर्थ में भी गुणों की स्थिति मानी जाती है ।[2] किन्तु रस की अभिव्यक्ति शब्द और अर्थ के माध्यम से होने के कारण गुण परम्परा से शब्द तथा अर्थ के भी धर्म होते हैं । अतः जहाँ शब्दार्थयुगल वस्तुतः गुणों के अभिव्यंजक होते हैं वहाँ वे रसाभिव्यंजक भी होते हैं । इस प्रकार रसमयता तथा ध्वन्यात्मकता दोनों का समावेश हो जाता है । चूँकि सगुणता औपचारिक रूप से गुणीभूत व्यङ्ग्य काव्य तथा चित्रकाव्य में भी होती है अतः ये काव्यभेद भी इस काव्यलक्षण के अन्तर्गत आ जाते हैं ।

---

1. न्यक्कारो ह्यमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः
सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसकुलं जीवत्यहो रावणः ।
धिक् धिक् शक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा
स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठन वृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः ।। हनुमन्नाटक - अंङ्क ।4.
2. गुणवृत्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता ।। काव्यप्रकाश- अष्टम् उल्लास -कारिका 7।

मम्मट के मत में काव्य में अलङ्कारों की स्फुटता अनिवार्य नहीं है । यदि किसी काव्य में अलङ्कारों की स्पष्ट प्रतीति नहीं होती किन्तु अदोषता तथा सगुणता विद्यमान है तो उसका काव्यत्व बाधित नहीं होता । उन्होंने इसके समर्थन हेतु बड़ा प्रख्यात श्लोक उद्धृत किया है :-

> यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
> स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः ।
> सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत व्यापार लीलाविधौ
> रेवारोधसि वेतसीतरूतले चेतः समुत्कण्ठते ।।[1]

किन्तु मम्मट ने सर्वथा अलङ्कार रहित काव्य का अनुमोदन नहीं किया है क्योंकि तब तो चित्रकाव्यों के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता ।

काव्य-लक्षण विषय में संस्कृतज्ञों का एकमत नहीं । कुछ विद्वान् मम्मट, कुछ विश्वनाथ तथा कुछ जगन्नाथ को श्रेष्ठ मानते हैं । सर्वविषयावगाहन की दृष्टि से मम्मट-लक्षण श्रेष्ठ है रस की सुगमार्थता की दृष्टि से विश्वनाथ तथा कलापक्ष की अभिव्यक्ति और कल्पनापक्ष की उद्भावना की दृष्टि से जगन्नाथ । जगन्नाथ के लक्षण को पाश्चात्य काव्य रसिकों ने खूब सराहा । वस्तुतः कल्पनानुभूतिजन्य विचारों की मधुर अभिव्यक्ति - कला ही कविता है ।

काव्यभेद - समीक्षा

काव्य के भेदों -प्रभेदों पर प्राचीनकाल से ही विचार किया जाता रहा है । ध्वनि सिद्वान्त (काव्य में व्यङ्ग्यार्थ को प्रधानता देने वाला सिद्वान्त) की स्थापना से पूर्व प्राचीन आलङ्कारिकों ने काव्य का जो वर्गीकरण किया था वह काव्य की वस्तु पर आधारित होने की अपेक्षा रूप और भाषा जैसे वाह्य तत्त्वों पर ही आधारित था । उदाहरणार्थ भामह ने काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :

अ. रचनाभेद के आधार पर दो वर्गों में:
1. गद्य काव्य
2. पद्य काव्य

ब. भाषा के आधार पर तीन वर्गों में :
1. संस्कृत 2. प्राकृत 3. अपभ्रंश

---

1. शीलाभटटारिका.
2. काव्यालङ्कार 1. 16/18.

स. वस्तु के आधार पर चार वर्गों में :

1. ख्यातवृत्त 2. कल्पित 3. कलाश्रित 4. शास्त्राश्रित

द. स्वरूप विधान के आधार पर :

1. सर्गबन्ध (महाकाव्य) 2. अभिनेयार्थ (नाटक) 3. कथा एवं आख्यायिका (गद्यकाव्य की विधाएँ) 4. अनिबद्ध (मुक्तक) ।

भामह के अनुयायी वामन[1] , रूद्रट[2] , तथा दण्डी[3] ने जहाँ-तहाँ मामूली परिवर्तनों के साथ वर्गीकरण की यही पद्धति अपनाई है ।

ध्वनिवादी आचार्यों ने काव्य के इस भेदप्रभेद की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया तथापि आचार्य आनन्द वर्धन ने प्राचीन आचार्यों को अभिमत काव्य-प्रभेदों का उल्लेख किया है ।[4] 'यत:- काव्यस्य प्रभेदा मुक्तकं[5] संस्कृतप्राकृतापभ्रंशनिबद्वं, सन्दानितक विशेषक कलापक कुलकानि[6], पर्यायबन्धः, परिकथा, खण्डकथासकलकथे, सर्गबन्धः, अभिनेयार्थम् आख्यायिकाकथे इत्येवमादयः ।'

आनन्दवर्धन ने अपने युग प्रवर्तक ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' के माध्यम से आलङ्कारिकों का ध्यान काव्य के आन्तरिक पक्ष की ओर खींचा । उन्होंने काव्य के दो भेद - ध्वनि तथा गुणीभूतव्यङ्ग्य का सविस्तार विवेचन किया और इससे भिन्न को काव्याभास मात्र कहा ।[7]

---

1. काव्यं गद्यं पद्यं च ।। काव्यालङ्कारसूत्र - 1.3.21 .
2. संस्कृत , प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, पैशाच, शौरसेनी ।। काव्यालङ्कार.
3. गद्यं पद्यं मिश्रं च ।। काव्यादर्श .
4. ध्वन्यालोक 3 - 7.
5. क. मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमं सताम् ।। ध्वन्यालोक .
   ख. पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हियेन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम् ।। ध्वन्यालोक.
6. द्वाभ्यान्तु युग्मकं ज्ञेयं त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकम् ।
   चतुर्भिस्तु कलापं स्यात् पंचभिःकुलकं मतम् ।। अग्निपुराण .
7. गुणप्रधानभावाभ्यां व्यङ्ग्यस्यैवं व्यवस्थिते ।
   काव्ये उभे ततोऽन्यद्यत् तच्चित्रमभिधीयते ।। ध्वन्यालोक - 3 / 42.

ध्वनिकार के इस विभाजन का मूल आधार है व्यङ्ग्यार्थ । मम्मट ने आनन्दवर्धन द्वारा संकेतित वर्गीकरण का अनुसरण करके ध्वनि, गुणीभूतव्यङ्ग्य तथा चित्र को क्रमश उत्तम- मध्यम[2] तथा अधम[3] नाम दिया । मम्मट के इस काव्य वर्गीकरण को सभी परवर्ती आलङ्कारिकों ने स्वीकारा किन्तु पण्डितराज का विवेचनापरक मानस् मम्मट के वर्गीकरण से सन्तुष्ट नहीं है जो कि कुछ मामलों में आनन्दवर्धन के भी विरूद्ध हैं । इन्होंने चमत्कार (लोकोत्तर आनन्द) को ही काव्य में व्यङ्ग्यार्थ की उत्कृष्टता या अधमता की कसौटी माना है । इसीलिए ध्वनि को उत्तमोत्तम,, गुणीभूत को उत्तम, चित्रकाव्य को मध्यम तथा अन्य को अधम कहा ।

रीतियुग में ध्वनि का प्रबल विरोध दो आचार्यों ने किया - केशवदास तथारसमूर्तिदेव ने । केशवदास ने 'रसिकप्रिया' में, श्रृङ्गारवाद को भी मान्यता दी परन्तु ध्वनि का सर्वथा बहिष्कार किया । रसमूर्तिदेव ने तो व्यंजना को अधम ही कह दिया ।[4]

जो भी हो व्यंजना प्रधान ध्वनि— काव्य ही सहृदयहृदयहारी तथा लोकचित्तानुरंजक है । ध्वनि की प्रतिष्ठा कतिपय आचार्यों की निन्दा से न्यून कथमपि नहीं हो सकती । ध्वनिकार के मतमें व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता होने पर 'ध्वनि' नामक काव्य-भेद होता है तथा व्यङ्ग्यार्थ के गौण होने पर 'गुणीभूत-व्यङ्ग्य' काव्य होता है । इन दोनों से भिन्न रस, भाव, आदि में तात्पर्य से रहित, व्यङ्ग्यार्थ विशेष से रहित, वाच्यवाचक वैचित्र्य मात्र जो काव्य है, वे चित्र काव्य कहलाते हैं ।[5]

---

1. इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः ।। काव्यप्रकाश - 1/4.
2. अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये.तु मध्यमम् । तत्रैव - 1 / 5.
3. शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम् ।। तत्रैव - 1 / 5.
4. अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लच्छना हीन ।
   अधम व्यंजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन ।।
5. व्यङ्ग्योऽर्थो ललनालावण्यप्रख्योयः प्रतिपादितस्य प्राधान्ये ध्वनिरित्युक्तम् । तस्य तु गुणभावेन वाच्यचारूत्वप्रकर्षे गुणीभूत व्यङ्ग्यो नाम काव्य—प्रभेदः प्रकल्प्यते । व्यङ्ग्यार्थस्य प्राधान्ये ध्वनि संज्ञित काव्य प्रकारः, गुणभावे तु गुणीभूत व्यङ्ग्यता । ततोऽन्यद्रसभावा दितात्पर्य रहितं व्यङ्ग्यार्थ विशेष प्रकाशन — शक्ति — शून्यं च काव्यं केवल वाच्यवाचक वैचित्र्यमात्राश्रयेणोपनिबद्धमालेख्य प्रख्यं यदाभासते तच्चित्रम् ।। ध्वन्यालोक वृत्ति— 3.35, 3.42 ।

वह मुख्यरूप से काव्य नहीं अपितु काव्याभास मात्र है[1]। आनन्दवर्धन ने गुणीभूतव्यङ्ग्य को 'ध्वनिनिष्यन्दरूप' अर्थात् ध्वनि का ही एक प्रकार बतलाया है[2]। इसका अभिप्राय यही है कि ध्वनि का स्थान प्रथम तथा गुणीभूतव्यङ्ग्य का द्वितीय है । ध्वनि को काव्य की आत्मा बतलाना - 'काव्यस्यात्माध्वनिः' और गुणीभूत-व्यङ्ग्य को 'प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यङ्ग्यः काव्यस्य दृश्यते' काव्य का एक अन्य दिखाई देने वाला प्रकार कहना भी इसी बात की पुष्टि करता है कि गुणीभूतव्यङ्ग्य ध्वनि की अपेक्षा कुछ कम महत्त्वशाली है, किन्तु इससे गुणीभूत-व्यङ्ग्य की रमणीयता में सन्देह नहीं हो सकता ।

आनन्दवर्धन ने विश्रृंखल वाणी वाले कवियों की रसादि-तात्पर्य से शून्य काव्यरचना में प्रवृत्ति देखकर ही चित्रकाव्य की कल्पना की । उनके मत में केवल अभ्यासी कवि भले ही चित्र काव्य का व्यवहार कर लें, परन्तु रससिद्ध तथा परिपक्व कवियों के लिए तो ध्वनि ही काव्य है ।[3]

रस-भाव आदि ही काव्य की महत्ता के प्रतीक होते हैं और चित्रकाव्य में ये रस-भावादि होते तो हैं किन्तु सम्मानदृष्टि से नहीं अपितु उपेक्षा दृष्टि से । इसमें केवल शब्द आदि प्राधान्य ही विवक्षित होता है । इसीलिए चित्रकाव्य को अधमकाव्य या निम्न श्रेणी का काव्य माना गया है ।

---

1. न तन्मुख्य काव्यं । काव्यानुकारो ह्यसौ । ध्वन्यालोक .
2. तदयं ध्वनि निष्यन्दरूपो द्वितीयोऽपि महाकविविषयोऽपिरमणीयो लक्षणीयः सहृदयैः । सर्वथा नास्त्येव सहृदयहृदयाह्लाद्कारिणः काव्यस्य स प्रकारो यत्र न प्रतीयमानार्थ संस्पर्शेन सौभाग्यम् । तदिद काव्यरहस्यं परिमिति सूरिभिर्विभावनीयम् ।। ध्वन्यालोकवृत्ति - 3/37
3. तदेवमिदानीन्तनकविकाव्यनयोपदेशे क्रियमाणे प्राथमिकानामभ्यासार्थिनां यदि परं चित्रेण व्यवहारः । प्राप्तपरिणतीनान्तु ध्वनिरेव काव्यम् ।। तत्रैव 3/43 .

ध्वनिवादी आचार्यों ने चित्रकाव्य को रस भावादि से शून्य बताया है जिसमें व्यङ्ग्यार्थ प्रकाशन की भी क्षमता नहीं होती, परन्तु रसादि से पूर्णरूपेण विरहित कोई काव्यभेद हो ही नहीं सकता क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का काव्य में किसी न किसी रस से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य होता है । किसी भी वस्तु का काव्य रस से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य होता है । किसी भी वस्तु का काव्य रस से स्पर्श न हो, यह भी उचित नहीं है । अतः सभी पदार्थ या वस्तुएँ किसी न किसी रस या भाव का अङ्ग अवश्य बनती हैं क्योंकि अन्ततः विभावत्व तो सभी पदार्थों में होता है । रसभावादि अनुभूतिगम्य होते हैं और अनुभव चित्तवृत्तिरूप होता है । अतः रसादि चित्तवृत्तिविशेषरूप ही हैं, संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो किसी प्रकार की चित्तवृत्ति को उत्पन्न न करे और यदि कोई वस्तुऐसी है तो वह कवि के काव्य का विषय कदापि नहीं हो सकती । कवि का विषय कोई पदार्थ ही चित्रकाव्य होता है और वह रस भावादि से सर्वथा विरहित या हीन नहीं हो सकता । इसलिए चित्रकाव्य को अधम की संज्ञा देकर आचार्यों ने इसके साथ सहानुभूतिपूर्वक न्याय नहीं किया ।

ख. महाकाव्य विचार

1. महाकाव्य का स्वरूप-निरूपण :-

महाकाव्य काव्य के दो भेदों - 1. श्रव्यकाव्य तथा 2. दृश्यकाव्य में, श्रव्य काव्य का ही एक उपभेद है । महाकाव्य या प्रबन्धकाव्य उस विशिष्ट काव्य की संज्ञा है जिसमें किसी महत्त्वपूर्ण घटना यथा–सङ्ग्राम आदि का वर्णन विस्तार तथा विशदता के साथ किया जाता है । महाकाव्य की सर्वप्रथम रचना महर्षि वाल्मीकि का 'रामायण' है । इसी ग्रन्थ की समीक्षा करने पर 'महाकाव्य" की कल्पना को आलङ्कारिकों ने प्रतिष्ठित किया । महाकाव्य की महत्ता स्वरूप जन्य नहीं, प्रत्युत गुणता जन्य है । कोई भी काव्य अपने विपुलकायता के कारण महाकाव्य की पदवी से विभूषित नहीं किया जा सकता । उसके लिए कतिपय लक्षणों की स्थिति अनिवार्य है । महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता । लक्ष्य के आधार पर लक्षण की कल्पना की जाती है- इस नीति के अनुसार वाल्मीकि रामायण तथा कालिदासीय महाकाव्यों की विवेचना करने से आलोचकों ने महाकाव्य के शास्त्रीय रूप का अनुगमन किया तथा आलङ्कारिकों ने अपने अलङ्कारग्रन्थो में महाकाव्य के लक्षण प्रस्तुत किये ।

इन आलङ्कारिकों में दण्डी सर्वप्राचीन हैं जिनका महाकाव्य लक्षण सर्वप्राचीन माना जाता है । 'दण्डी' के अनुसार महाकाव्य की रचना सर्गों में की जाती है । उसमें एक ही नायक होता है, जो देवता होता है अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त कोई कुलीन क्षत्रिय होता है । वीर-श्रृङ्गार तथा शान्त में से कोई एक रस मुख्य (अङ्गी) होता है । अन्य रस गौण रूप से रखे जाते हैं । कथानक इतिहास मे प्रसिद्ध होता है अथवा किसी सज्जन का चरित्रवर्णन किया जाता है । प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार के वृत्त में रचना की जाती है, परन्तु सर्ग के अन्त में वृत्त बदल दिया जाता है । सर्ग न तो बहुत बड़े होने चाहिए, न बहुत छोटे । सर्ग आठ से अधिक होने चाहिए और प्रतिसर्ग के अन्त में भावी कथा की सूचना होनी चाहिए । वृत्त को अलङ्कृत करने हेतु सन्ध्या सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, वन, ऋतु, समुद्र, पर्वत आदि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अवश्य किया जाता है । बीच-बीच में वीर-रस के प्रसङ्ग में युद्ध, मन्त्रणा, शत्रु पर चढ़ाई आदि विषयों का भी सांगोपांग वर्णन रहता है। नायक तथा प्रतिनायक का संघर्ष महाकाव्य की मुख्य वस्तु होती है । महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य धर्म तथा न्याय की विजय तथा अधर्म औरअन्याय का विनाश होना चाहिए ।[1]

रूद्रट[2] तथा भामह[3] ने दण्डी के द्वारा निर्दिष्टमहाकाव्य – लक्षण को ही दुहराया है । ध्यान देने की बात है कि रूद्रट ने उतने ही विषय के उपबृंहण तथा अलङ्करण को उचित माना जिससे कथा वस्तु का कथमपि विच्छेद न हो सके ।

अष्टादशभाषावार विलासिनीभुजङ्ग, साहित्य-दर्पण प्रणेता तथा रसवादी आचार्य विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों द्वारा दिये गये महाकाव्य - लक्षणों पर सम्यक् रूप से विचार करके समन्वित रूप में सर्वाङ्गपरिपूर्ण तथा व्यापक महाकाव्य लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया - महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है । इसका नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या एक वंशज कुलीन अनेक राजा होते हैं । श्रृङ्गार, वीर, शान्त रस में से कोई एक प्रधान रस होता है अन्य रस उसके सहायक । इनमें सभी नाटकसन्धियाँ होती हैं । इसका कथानक ऐतिहासिक होता है या किसी सज्जन व्यक्ति से सम्बद्ध । इसमें चतुर्वर्ग-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन होता है, उनमें से किसी एक फल की प्राप्ति का वर्णन होता है । प्रारम्भ में देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तुनिर्देश होता है । कहीं दुर्जननिन्दा या सज्जन प्रशंसा भी रहती है । प्रत्येक सर्ग में एक छन्द वाले पद्य रहते हैं किन्तु अन्त में छन्द परिवर्तन हो जाता है ।

---

1. काव्यादर्श - 1/ 14 - 22.
2. काव्यालङ्कार - 16/ 17 - 19.
3. काव्यालङ्कार - 1/ 18 - 23.

इसमें आठ से अधिकसर्ग होते हैं, न बहुत छोटे न बहुत बड़े । कहीं-कहीं एक ही सर्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार के छन्द होते हैं जबकि एक सर्ग में एक ही छन्द होना चाहिए किन्तु सर्ग के अन्त में भिन्न छन्द का । सर्ग के अन्त में भावी कथा का सङ्केत हो जाता है । इनमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन,प्रातः मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, युद्ध, प्रस्थान, विवाह, मन्त्र (राजनीति के छ:अङ्ग) पुत्र, उदय आदि यथासम्भव वर्णित होना चाहिए । ग्रन्थ का नाम महाकवि के नाम से (यथा माघकाव्य - भटिटकाव्य) नायक के नाम से (यथा रामायण, कुमारसम्भवम्, रघुवंश, नैषध) होना चाहिए । कहीं-कहीं इनसे भिन्न भी नाम होता है । सर्ग की वर्णनीय कथा के आधार पर सर्ग नाम रखे जाते हैं । आर्षमहाकाव्यों में सर्गों का नाम आख्यान पर निर्भर होता है ।[1]

---

1. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।।
सद्वशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वितः ।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।।
श्रृङ्गार-वीर- शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम् ।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः ।।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा ।
रणप्रयाणोपयम मन्त्र पुत्रोदयादयः ।।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।।
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु । साहित्य दर्पण - 6/315 - 325.

।। महाकाव्य - लक्षणों का आलोचनात्मक विवेचन :-

काव्य-विपश्चितों ने महाकाव्य के अनेकविध लक्षण प्रस्तुत किये उनमें अनेक बातें प्रायः समान हैं क्योंकि किसी भी मनीषी ने महाकाव्य का स्वप्रतिभाजन्य लक्षण नहीं दिया अपितु लक्ष्यग्रन्थों के आधार पर ही महाकाव्य का स्वरूप निर्धारित किया है । काव्यरसज्ञों की भिन्न - भिन्न रचनाओं की शैली भी भिन्न-भिन्न होती है, अतः लक्षणकारों ने जिन-जिन प्रबन्धों के आधार पर लक्षण निर्धारित किया उन-उन प्रबन्धों की विशिष्टताओं को तो लक्षण में समाहित किया किन्तु जो परवर्ती महाकाव्य उनको दृष्टिगत नहीं हुए वे उनकी विशेषताओं को लक्षण में समाविष्ट न कर सके । किन्हीं मनीषियों ने महाकाव्य की कुछ विशेषताओं को प्रमुखता दी तो किन्हीं ने कुछ अन्य को । अतएव लक्षणकारों द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य-लक्षणों में अनेकविध समानता होते हुए भी कुछ भिन्नताएँ या विषमताएँ दृष्टिगोचर होती हैं । इनका क्रमबद्ध विवेचन निम्न प्रकार है :-

महाकाव्य में सबसे प्रधान वस्तु होती है कथावस्तु याइतिवृत्त तथा उसकी सर्गबद्धता । इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक अथवा लोक में ख्यात किसी सज्जन व्यक्ति पर आश्रित होती है, इस विषय में सभी आचार्य एकमत हैं । परन्तु रूद्रट के मत में इसकी कथावस्तु कविकल्पित भी हो सकती है ।[1] भोज ने इस विषय में सिर्फ इतना ही कहा कि यह न अधिक विस्तृत हो और न अधिक संक्षिप्त ।[2] महाकाव्यों की सर्गबद्धता के विषय में भोज तथा हेमचन्द्र के अतिरिक्त सभी आचार्य अविरोधी हैं । भोज ने सर्गबद्धता के विषय में बहुत कुछ नहीं कहा परन्तु उनके मत में महाकाव्य चार प्रकार के वृत्यङ्गों से युक्त होना चाहिए ।[3] हेमचन्द्र की दृष्टि में महाकाव्य न केवल सर्गबद्ध अपितु आश्वासबद्ध, सन्धिबद्ध और अवस्कन्धबद्ध भी होना चाहिए ।[4] दण्डी के मत में सर्ग अधिक विस्तृत नहीं होने चाहिए ।[5]

---

1. तत्रोत्पाद्या येषां शरीरमुत्पादयेत् कविः सकलम् ।
   कल्पितयुक्तोत्पत्तिं नायकमपि कुत्रचित् कुर्यात् ।। रूद्रट काव्यालङ्कार - 16/3.
2. अविस्तृतमसंक्षिप्तं श्रव्यवृत्तं सुसन्धि च । सरस्वती-कण्ठाभरण - 5/129.
3. चतुर्वृत्यङ्गसम्पन्नं.............प्रबन्धम् । तत्रैव - 5 - 127.
4. पद्यं प्रायः.........सर्गाश्वास सन्ध्यवस्कन्ध बन्धं सत्सन्धि शब्दार्थ वैचित्र्योपेतं महाकाव्यम् । काव्यानुशासन - अष्टम अध्याय.
5. सर्गैरनतिविस्तीर्णैः................।। काव्यादर्श - 1/18.

अग्नि पुराण ने सर्गों की संक्षिप्तता का निषेध किया है ।[1] जबकि अति विस्तीर्णता के विषय में मौन है । शायद इसीलिए साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने यह मत दिया कि सर्ग न ही अधिक विस्तृत होने चाहिए न अधिक संक्षिप्त । सर्गों की संख्या आठ से अधिक बतलायी और कहा कि सर्ग का कोई न कोई शीर्षक भी होना चाहिए ।[2] उनके मत में भावी कथा की सूचना सर्गान्त में होनी चाहिए[3] तथा महाकाव्य का नामकरण कवि अथवा चरित्र के नाम पर होना चाहिए ।[4] महाकाव्यों में एक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग तथा सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन की बात भामह और रूद्रट को छोड़कर सभी आचार्यों ने स्वीकारा है परन्तु विश्वनाथ के मत में एक सर्ग में एक से अधिक छन्द भी हो सकते हैं ।[5] अग्निपुराण के अनुसार शक्वरी, अतिशक्वरी, त्रिष्टुप्, पुष्पिताग्रा तथा वक्त्रादि छन्दों का उपयुक्त समन्वय महाकाव्यों में होना चाहिए ।[6]

महाकाव्य का आरम्भ आशीर्वचन, देवनमस्कार तथा वस्तु निर्देश के साथ होना चाहिए, ऐसा दण्डी[7], हेमचन्द्र[8] तथा विश्वनाथ[9] का मत है ।

---

1. मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम् ।। अग्निपुराण - 337/27.
2. क. ....सर्गा अष्टाधिका इह ।। साहित्यदर्पण - 6 / 320.
   ख ....सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु । तत्रैव - 6/ 325.
3. सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।। तत्रैव - 6/ 321.
4. कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।।
   नामास्य............। तत्रैव - 6/ 324 - 325.
5. नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते । तत्रैव 6/ 321.
6. शक्वर्यातिजगत्यातिशक्वर्या त्रिष्टुभा तथा ।।
   पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्रादिभिर्जनैश्चारूभिः समैः । अग्निपुराण - 337/26-27.
7. आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम् ।। काव्यादर्श - 1 / 14.
8. आशीर्नमस्कार वस्तु निर्देशोपक्रमत्वम्.....। काव्यानुशासन- अष्टम् अध्याय.
9. आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा । साहित्यदर्पण - 6/ 319.

नायक धीरोदात्तादि गुणों से युक्त कुलीन वंशज होना चाहिए, इस विषय में सभी आचार्य एकमत हैं । विश्वनाथ के मत में देवता के साथ-साथ एकवंश में उत्पन्न अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं।[1] इस बात की पुष्टि महाभारत तथा रघुवंश से होती है । आर्षमहाकाव्य महाभारत की भाँति रघुवंश में भी अनेक नायक माने जाते हैं । रूद्रट ने कहा कि नायक को प्रजाप्रिय तथा ऐश्वर्यवान् होना चाहिए ।[2] प्रतिनायक के विषय में रूद्रट तथा भोज की धारणा है कि उसकी कुलीनता तथा गुणों का भी वर्णन अवश्य हो किन्तु सर्वश्रेष्ठता नायक के गुणवर्णन की ही हो ।[3] पुरूषार्थ-चतुष्ट्य के सम्बन्ध में सभी काव्यशास्त्रियों की मान्यता है कि महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन होना चाहिए किन्तु विश्वनाथ की धारणा यह है कि इनमें से कोई एक फलरूप में होना चाहिए ।[4]

महाकाव्यों में युद्ध सम्बन्धी वर्णन यथा-मत्रणा, दूतप्रेषण, युद्ध इत्यादि को सभी आचार्यों ने आवश्यक बतलाया है । इसी प्रकार प्रकृति-वर्णन यथा-समुद्र, पर्वत, नगर, ऋतु, वन, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रदोष, प्रातः, मध्याह्न, उद्यान, नदी, जलक्रीडा, मद्यपान आदि को भी सभी काव्यरसिकों ने अनिवार्य तत्त्व बतलाया किन्तु भामह इस विषय मे मौन हैं ।

---

1. ....तत्रैको नायकःसुरः ।।
   एकवशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा ।। साहित्यदर्पण 6/315, 316.
2. तत्र त्रिवर्गसक्तं समृद्धिशक्तित्रयं च सर्वगुणम् ।
   रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत् ।। काव्यालङ्कार - 16/8.
3. क. प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखम मृष्यमाणमायान्तम् ।
   अभिदध्यात् कार्यवशान्नगरीरोध स्थितम् वापि ।।
   सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युद्धमानयोरूभयोः ।
   कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते ।। रूद्रटकृत काव्यालङ्कार - 16/16.
   ख. वंशवृत्तश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि ।
   तज्जयान्नायकोत्कर्ष कथंच धिनोति नः ।। सरस्वती-कण्ठाभरण- 5/137.
4. चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।। साहित्यदर्पण - 6/318.

दण्डी, भोज तथा विश्वनाथ महाकाव्य में विवाहादि वर्णन को भी आवश्यक मानते हैं ।[1] विश्वनाथ ने सज्जनों की प्रशंसा तथा दुर्जनों की निन्दा का वर्णन भी महाकाव्य में जरूरी माना ।[2] दण्डी और विश्वनाथ दोनों आचार्य पुत्र की उत्पत्ति तथा उदय को आवश्यक मानते हैं ।[3] प्रायः सभी आचार्य महाकाव्य में पाँच नाटकसन्धियों के यथास्थान निवेश के पक्षपाती हैं । अग्निपुराण में उल्लिखित है कि महाकाव्य में सभी रीतियों का समुचित प्रयोग होना चाहिए ।[4]

साहित्य-शास्त्र में भामह ही एकमात्र आचार्य हैं जिन्होंने महाकाव्य में भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में विचार दिए हैं । उनका मत है कि इसमें ग्राम्यशब्दों का प्रयोग उचित नहीं ।[5] इस विषय में दण्डी का विचार है कि महाकाव्य में विप्रलम्भ-श्रृङ्गार का वर्णन होना चाहिए ।[6] जबकि आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि श्रृङ्गार , वीर, शान्त में से कोई एक रस अङ्गी तथा अन्य सभी अङ्गभूत हो ।[7] अन्य सभी आचार्य महाकाव्य में समस्त रसों का परिपाक मानते हैं ।

---

1. क. विप्रलम्भैर्विवाहैश्च..............।। काव्यादर्श - । / 17.
   ख. विप्रलम्भोविवाहश्च चेष्टाः काव्ये रसावहाः ।। सरस्वती-कण्ठाभरण - 5/133.
   ग. रणप्रयाणोपयममन्त्र...............।। साहित्यदर्पण - 6/323.
2. क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् । तत्रैव - 6/319.
3. क. ....कुमारोदयवर्णनैः । काव्यादर्श - 1/17.
   ख................पुत्रोदयादयः । साहित्यदर्पण - 6/323.
4. सर्वरीतिरसैः स्पृष्टं पुष्टं गुणविभूषणैः । अग्निपुराण- 337/32.
5. अग्राम्यशब्दमर्थं च सालङ्कारं सदाश्रयम् । काव्यालङ्कार (भामह)- 1/19.
6. विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः । काव्यादर्श - । / 17.
7. श्रृङ्गार-वीर-शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।
   अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः...............।। साहित्य दर्पण - 6/317.

।11। **महाकाव्य पर पाश्चात्य मत** :-

पाश्चात्य सुधीजनों ने महाकाव्य की दो धाराओं - विकसित तथा कलापूर्ण का उल्लेख किया है। विकसित महाकाव्य अनेक शताब्दियों में अनेक कवियों के महान् प्रयत्न से विकसित महाकाव्य है। यह प्राचीन गाथाओं के आधार पर रचित महाकाव्य होता है, जैसे ग्रीक महाकवि होमर का 'इलियड' तथा "ओडिसी" नामक युगल महाकाव्य। इसका वर्तमान परिष्कृतरूप होमर की प्रतिभा का ही फल है, परन्तु गाथाचक्रों के रूप में वे प्राचीन काल से बन्दीजनों द्वारा गाये जाते थे जो भारत में प्राचीनकाल में चारणगणों द्वारा गाये जाने वाले राजाओं के प्रशंसागीतों के तुल्य हैं। कलापूर्ण काव्य वह है जिसे एक कवि अपनी काव्यकला से गढ़कर तैयार करता है। इसमें प्रथम श्रेणी के काव्यों के समग्र गुण विद्यमान रहते हैं, परन्तु यह रहता है एक ही कवि की प्रौढ़-प्रतिभा का परिणाम। जैसे लैटिनभाषा में वर्जिल कवि द्वारा रचित 'इनीड" महाकाव्य। वर्जिल ने अपने लिए होमर को आदर्श माना और उन्हीं की काव्यकला का पूर्ण अनुसरण अपने महाकाव्य में किया है। रोमन सम्राट आगस्टस सीजर के इस राजकवि (वर्जिल) ने अपने अमर महाकाव्य 'इनीड' की रचना करके रोमन साम्राज्य को प्राचीन गौरव से तथा लैटिन साहित्य को मान्य आद्य-महाकाव्य से मण्डित किया था। कालिदास भी वर्जिल के समकालिक थे और इस प्रकार संस्कृत तथा लैटिन - उभयभाषाओं में सुललित महाकाव्यों की प्रतिष्ठा एक ही युग में मानना तुलनात्मक - ऐतिहासिक दृष्टि से नितान्त समीचीन, शोभन तथा सुन्दर है। इस दृष्टि से यदि संस्कृत महाकाव्यों का वर्गीकरण किया जाय तो वाल्मीकि रामायण प्रथम श्रेणी में रखा जायेगा तथा रघुवंश आदि द्वितीय श्रेणी में।[1]

---

1. संस्कृत - साहित्य का इतिहास - पं0बलदेव उपाध्याय - पृष्ठ - 138, 139.

ग. महाकाव्यों की विकास परम्परा

I आर्ष महाकाव्य - सामान्य परिचय :-

साहित्यमनीषा इस विषय में पूर्ण आश्वस्त है कि महाकाव्यों का उदय वाल्मीकि से हुआ । रामायण हमारा आदि काव्य तथा वाल्मीकि हमारे आदि कवि । कालिदास को अपनी काव्य कला को पुष्ट करने में वाल्मीकि से स्फूर्ति तथा प्रेरणा मिली, यह सिद्धान्त सन्देह-हीन है । कवि-कुलगुरू कालिदास ने शायद इसीलिए वाल्मीकि को 'पूर्वसूरिभिः'[1] तथा उनके ग्रन्थ को 'कविप्रथम-पद्धति'[2] कहा । वाल्मीकि का आदिकाव्य संस्कृत भारती का नितान्त अभिराम निकेतन है । सरसता और स्वाभाविकता ही इसका सर्वस्व है ।

कालान्तर में वेदव्यास की महत्त्वाकांक्षा महाभारत के रूप में फलीभूत हुई । इसे संस्कृत साहित्य का सबसे विशालतम महाकाव्य माना जाता है । इन दोनों महाकाव्यों को 'आर्षमहाकाव्य' की संज्ञा आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में दी ।

I. रामायण :-

महर्षि वाल्मीकि की इस कृति में रामकथा आद्योपान्त सात काण्डों- बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड, में वर्णित है । इसमें 24 हजार श्लोक हैं, अतः इसे 'चतुर्विंशति साहस्रीसंहिता' भी कहते है । ऐसी मान्यता है कि कवि ने गायत्री-मन्त्र के 24 अक्षरों को आधार बनाकर इन 24 हजार श्लोकों की रचना की । रामायण का महत्त्व, उपयोगिता आदि का वर्णन स्वयं वाल्मीकि ने इन शब्दों में किया है :-

> यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
> तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।।[3]

---

1. रघुवंश - 1/4.
2. तत्रैव - 15/33.
3. वाल्मीकि रामायण-बालकाण्ड - 2/36/7.

2. **महाभारत** :-

पंचम वेद नाम से ख्यात लक्षश्लोक परिणाम वाला यह महाकाव्य वेद व्यास की महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति का परिणाम है । इसी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के कारण ही यह जय से भारत अन्ततः महाभारत में परिणत हो गया । वस्तुतः लेखक की यह महत्त्वाकांक्षा रही कि उस समय का उल्लेखनीय कोई भी विषय छूट न जाये । महाभारत में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख है :-

धर्मे ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ।।[1]

इसे 'शतसाहस्री संहिता'[2] भी कहा गया है । यह मूल रूप में 'जय'[3] काव्यथा इसमें 8800 श्लोक थे । इसे धर्मचर्चा के अवसर पर व्यास ने वैशम्पायन को सुनाया था । द्वितीय चरण में 'भारत'[4] 24 हजार श्लोकों वाला यह काव्य उपाख्यान रहित था । इसे नागयज्ञ के अवसर पर वैशम्पायन ने जनमेजय को सुनाया था । तृतीय और अन्तिम चरण में यह उपाख्यानों एवं हरिवंशपर्व से युक्त होकर महाभारत हो गया । इसे नैमिषारण्य में यज्ञ के अवसर पर सौति ने शौनक आदि ऋषियों को सुनाया था ।

महाभारत के अठारह **पर्वों** में चन्द्रवंश का इतिहास तथा कौरव-पाण्डव की उत्पत्ति, द्यूतक्रीडा, पाण्डवों का वनवास, पाण्डवों का अज्ञातवास, श्रीकृष्णद्वारा, सन्धि प्रयत्न, अर्जुन को गीता का उपदेश, अभिमन्युद्रोण वध, कर्ण वध, शल्य वध, पाण्डव-पुत्रों का अश्वत्थामा द्वारा वध, शोकाकुलस्त्रियों का विलाप, युधिष्ठिर एवं भीष्म का वार्तालाप, धर्म-नीति की कथायें, युधिष्ठिर का अश्वमेध अनुष्ठान, धृतराष्ट्र आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश, यादवों का परस्पर संघर्ष में नाश, पाण्डवों की हिमालय यात्रा तथा पाण्डवों का स्वर्गारोहण क्रमशः वार्णित है ।

---

1. महाभारत - आदिपर्व - 1/62/53.
2. गुप्तकालीन अभिलेख .
3. जय नामेतिहासोऽयम् । महाभारत .
4. चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।

   उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ।। तत्रैव.

।। आर्ष एवं लौकिक संस्कृत महाकाव्यों के मध्य के ग्रन्थ-सामान्य निरूपण :-

आर्षकाव्य रामायण तथा महाभारत के बाद एवं कालिदास की सुललित महाकाव्य परम्परा से पूर्व अनेक ग्रन्थ लिखे गये, जो नाममात्र से अवशिष्ट हैं । तात्पर्यतः काल के करालचक्र ने अकाल में ही उनको अपने में समेट लिया । उनका उद्भव कालिदास से पूर्व हुआ और अभिभव कालिदास की अलौकिक प्रतिभा और व्युत्पत्ति से किया गया । इस बात की पुष्टि अनेक साक्ष्यों से होती है । कुछ ग्रन्थ इस प्रकार हैं :-

1- जाम्बवतीजयम् :-

इसका अपर अभिधान 'पाताल-विजय' भी है । इसमे श्रीकृष्ण का पाताल लोक में जाकर विजय एवं जाम्बवती से विवाह का वर्णन 18 सर्गों में है । इसके 18 सर्गों की पुष्टि शरणदेव[1] के एक पद्य से होती है । काव्यमीमांसा के प्रणेता राजशेखर ने पाणिनि को व्याकरण तथा जाम्बवतीजयम् दोनों का रचयिता माना ।[2]

2- स्वर्गारोहण :-

इस काव्यग्रन्थ के रचयिता वररूचि थे । इस ग्रन्थ को भाष्यकार पतंजलि ने 'वाररूचं -काव्यम्' कहकर संबोधित किया है । समुद्रगुप्त के 'कृष्णचरित' काव्य में भी स्वर्गारोहण का उल्लेख है ।[3]

3- महानन्द :-

भाष्यकार पतंजलि ने इसी श्रृंखला में 'महानन्द-काव्य' लिखा । समुद्रगुप्त की 'कृष्णचरित' की प्रस्तावना में लिखा है कि पतंजलि ने योगशास्त्र की व्याख्या के रूप में 'महानन्द काव्य" लिखा ।[4]

4- बालचरित :-

सङ्ग्रह नामक वार्तिक ग्रन्थ के रचयिता महर्षि व्याडि ने इस काव्य ग्रन्थ की रचना की ।

5. देवर्षि चरित :-

सामतन्त्र के प्रवक्ता आचार्य गार्ग्य ने इस काव्यग्रन्थ की रचना की ।

---

1. त्वया सहार्जितं यच्च-यच्च सख्य पुरातनम् ।
चिराय चेतसि पुरस्तरूणीकृतमद्य मे ।
(जाम्बवती विजये पाणिनिनोक्तम्............। दुर्घटवृत्ति-अष्टादश सर्ग
2. नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवती जयम् ।। राजशेखर.
3. यः स्वर्गारोहणंकृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि ।
काव्येन रूचिरेणैव ख्यातो वररूचिः कविः ।। कृष्णचरित.
4. पतंजलिर्मुनिवरो नमस्यो विदुषां सदा ।।
महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्भुतम् ।
योग व्याख्यान भूतं तद् रचित चित्तदोषहम् ।। पतंजलि .

।।। सुप्रसिद्ध लौकिक संस्कृत महाकाव्यों की ललित परम्परा - सामान्य परिचय :-

सरस, सालङ्कार एवं उच्च कल्पनाओं से ओतप्रोत कविता की निर्झरिणी 'कालिदास शैल शिखर' से ही प्रवाहित होती है । सुललित काव्यतरङ्गणी के लिए कालिदास गंगोत्री के साथ-साथ हरिद्वार भी हैं जहाँ से यह काव्य-भागीरथी निकलकर चरम उत्कर्ष को प्राप्त हो जाती है । कालिदास की रसीली बोली पर समाज अपने को न्योछावर कर रहा है । सुकुमार-शैली या रसमय पद्धति में अपने महाकाव्यों का सृजन करके विश्वसाहित्य में जितनी ख्याति कालिदास ने अर्जित की उतनी शायद ही किसी महाकवि को प्राप्त हुई । 'फास्ट' जैसी कालजयी रचना के प्रणेता जर्मन कवि गेटे ने कालिदास के भावों की उदात्तता तथा महनीयता की भूरि-भूरि प्रशंसा की ।[1] भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने भी अपने प्रशंसा माल्य से कालिदास को अलङ्कृत किया ।[2] पाश्चात्य समीक्षकों का यह मत कि 'कालिदास भारत का शेक्सपीयर है'- दुराग्रह पूर्ण कथन है । इसे यह होना चाहिए कि 'शेक्सपीयर ब्रिटेन का कालिदास है । कारण यह कि कालिदास जैसे कवि इस धरा पर उत्पन्न ही नहीं हुए । आलोचना-जगत् ने शायद इसीलिए कालिदास को कनिष्ठिकाधिष्ठित कवि माना :-

पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ।।

प्रो0 विष्णु मिराशी ने गेटे के कथन का संस्कृतानुवाद करते हुए कालिदास की भूरि-भूरि प्रशंसा की ।[3] इसी श्रृंखला में अश्वघोष, भारवि, भटिट, कुमारदास, माघ तथा श्रीहर्ष ने उत्कृष्ट महाकाव्यों का सृजन करके संस्कृत साहित्य को गौरवान्वित किया । इनके ग्रन्थों का विवेचन निम्न प्रकार वर्णित है ।-

1. कुमारसम्भवम् :-

कुमारसम्भवम् कालिदास की प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन है । इसमें भावपक्ष तथा कलापक्ष का सुमधुर समन्वय है । भावों की मनोज्ञता, रसों का सुन्दर परिपाक, रसराज श्रृङ्गार का सर्वाङ्गीण वर्णन, तपोमूलक परिष्कृत प्रेम का महत्त्व प्रतिपादन इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं । इसके 17 सर्गों में हिमालयपुत्री पार्वती द्वारा तपस्या के फलस्वरूप वररूप में शिव को प्राप्त करने तथा उनसे कार्तिकेय-जन्म की कथा वर्णित है । शिव - पार्वती के संभोग-प्रसङ्ग में वर्णित श्रृङ्गार का अतिरंजित रूप कालिदास को निन्दास्पद बना दिया । कुछ विद्वान् 7 सर्गों तक को ही कालिदास की रचना मानते हैं किन्तु यहमत अपुष्ट प्रमाणों पर आधारित है ।

---

1. Wouldst thou the young year's blossoms, And the fruits of its decline;And all by which the soul is charmed; Enraptured, feasted, fed; wouldst thou the earth and heaven itself; In one sole name combine; I name thee, O shakuntala! and all at once is said.
2. Kalidas was a Jungle, but Shakespeare was a lane.
3. वासन्तं कुसुमं फलं च युगपत्ग्रीष्मस्य सर्वं च यत् यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् । एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोक भूलोकयोऐश्वर्यं यदि वांछसि प्रियसखेशाकुन्तलं सेव्यताम् ।।

2. **रघुवंशमहाकाव्यम्** :-

रघुवंश महाकवि कालिदास की प्रतिभा का काव्य रूप में सर्वोत्तम निदर्शन है । इसमें कवि की प्रतिभा पदे-पदे परिलक्षित होती है । भावों का सौन्दर्य, कल्पना का चमत्कार, भाषा का माधुर्य, अलङ्.कारों की अनुपम छटा, व्यङ्ग्यार्थ का अपूर्व निदर्शन, संभोग का सुखद रसास्वाद, विप्रलम्भ-श्रृङ्.गार की मार्मिक अनुभूति इसकी विशेषता है । इसके 19 सर्गों में रघु जन्म से लेकर अग्निवर्ण तक 31 सूर्यवंशी राजाओं का जीवन चरित वर्णित है । इसमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ तथा राम के जीवन का विशद विवेचन है । रघुवंश की रचना के कारण ही कालिदास को "रघुकार" कहा गया । इन्दुमती स्वयंवर के प्रसङ्.ग में मानव मन की जो सूक्ष्म अभिव्यक्ति कालिदास ने की है । ऐसी अभूतपूर्व उपमा अन्यत्र दुर्लभ है । इस उपमा से मुदितहृदयरसिकों ने कालिदास को 'दीपशिखाकालिदास' कहा ।

3. **बुद्धचरित** :-

बुद्धचरित बौद्ध-कवि, विद्वान् अश्वघोष की रचना है । इस महाकाव्य में मूल रूप से 28 सर्ग है । इसमें चौदह सर्ग तक ही संस्कृत अंश प्राप्त होता है । इस ग्रन्थ में बुद्ध का जीवन-चरित तथा उनके सिद्धान्त वर्णित हैं । बुद्ध के जन्म से लेकर महापरिनिर्वाण तक की कथा बड़ी ओजपूर्ण भाषा में वर्णित है । अश्वघोष सुकुमारमार्गी तथा वैदर्भीरीति के कवि हैं ।

4. **सौन्दरानन्द** :-

अश्वघोष के महाकवित्व के क्रमिक विकास का सुन्दर निदर्शन सौन्दरानन्द महाकाव्य है । कवि की कवित्व प्रतिभा का निखार इस ग्रन्थ में परिलक्षित होता है । यही काव्य कवित्व की दृष्टि से विशेष प्रशंसनीय है । "गौतम बुद्ध का भाई नन्द अत्यन्त विलासी प्रकृति का था । वह अपनी पत्नी सुन्दरी के प्रति अत्यन्त आसक्त था । दोनों चक्रवाकयुगल की भाँति एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते थे । गौतम बुद्ध ने बलात् अपनी ओर आकृष्ट करके नन्द को बौद्ध धर्म की दीक्षादी ।" यही कथा इस महाकाव्य में 18 सर्गों मे वर्णित है ।

5. **किरातार्जुनीयम्** :-

रीति-शैली के जनक तथा अलङ्.कार-शैली के प्रवर्तक आचार्य भारवि ने 18 सर्गों में किरातार्जुनीयम् नामक महाकाव्य लिखा । इसकी गणना वृहत्त्रयी में की जाती है । इसमें कौरवों पर विजय प्राप्ति हेतु अर्जुन हिमालय पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरातवेशधारी शिव से युद्ध और प्रसन्न शिव से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का बड़ा अलङ्.कारपूर्ण वर्णन है । अर्थगौरव के लिए यह महाकाव्य एवं महाकवि दोनों विशेषरूप से लोकप्रसिद्ध हैं । भारवि की 'आतपत्रभारवि' [2] की संज्ञा थी । सहृदयों को भारवि का कनकमय आतपत्र इतनासुन्दर लगा कि भारवि को 'आत्रपत्रभारवि' कहा ।

---

1. संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।। रघुवंश0- 6/67

2. उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्भूतः सरसिजसम्भवः परागः ।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ।। किरात0-5/39.

6 **भट्टिकाव्य** :-

साहित्य के माध्यम से व्याकरण की शिक्षा देने की नवीन पद्धति के आविष्कारक भट्टिस्वामी ने 'रावणवध' नामक महाकाव्य लिखा कालान्तर में यह कवि नाम से 'भट्टिकाव्य' हो गया । भट्टि ने 22 सर्गों मे रामजन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है । इस महाकाव्य के चार काण्डों - प्रकीर्ण काण्ड, अधिकार काण्ड, प्रसन्नकाण्ड तथा तिङन्तकाण्ड, में व्याकरण की जटिलता को सुबोधता में परिवर्तित करने का प्रयास किया गया है । व्याकरणज्ञान हेतु यह महाकाव्य दीपक तुल्य है ।[1] इसे शास्त्रकवियों का मार्गदर्शक तथा आदर्श माना जाता है ।

7. **जानकीहरण** :-

कविकुमारदास रचित यह महाकाव्य 20 सर्गों से समन्वित है । इसमे दशरथ राज्यवर्णन से लेकर रावण पर रामचन्द्र की विजय का वर्णन है । कुमारदास वैदर्भीरीति के कवि हैं । कोमल भावों के चित्रण में, मधुरपदावली के विन्यास में तथा हृदय की आह्लादिता हेतु कल्पना के सर्जन मे आरंभिक सर्गों में संलग्न दीखते हैं किन्तु बाद में इस सरसता, सहजता से च्युत हो जाते हैं । रमणीरूप वर्णन में कवि की विशेष आसक्ति दिखती है । फिर भी कुमारदास में गुणाधिक्य अन्य विचित्रमार्गी कवियों की अपेक्षा अधिक है । कुमारदास के गुणों से मुग्ध होकर राजशेखर ने कहा कि 'जानकीहरण' का साहस या तो कुमारदास कर सकते है या फिर रावण ।[2]

8. **शिशुपालवधम्** :-

महाकवि माघ प्रणीत इस महाकाव्य को 'माघकाव्य' नाम से भी जाना जाता है । यह ग्रन्थ वृहत्त्रयी का द्वितीय रत्न है । इसमें 20 सर्गों मे देवर्षिनारद द्वारा शिशुपाल के पूर्वजन्मों का विवरण देते हुए उसके अत्याचारों का उल्लेख, श्रीकृष्ण से उसके संहार की प्रार्थना, युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पहुँचना, शिशुपाल का अभद्र व्यवहार और क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध वर्णित है । भारवि ने जिस रीतिसम्प्रदाय का प्रवर्तन किया वह भट्टि से होते हुए माघ पर परिपूर्ण हुआ । भारवि के कलापक्ष को माघ ने ही पूर्णता प्रदान की । निदर्शना की एक उत्कृष्ट कल्पना से आह्लादित सुधीजनों ने इन्हें 'घण्टामाघ' की उपाधि दी ।[3] प्रभातवर्णन में माघ का कोई प्रतिस्पर्धी नहीं ।[4] सुधीजन आज भी सस्नेह गाते हैं ।

---

1. दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम् ।
   हस्तादर्श इवान्धानां भवद् व्याकरणादृते ।। भट्टिकाव्य - 22/33.
2. जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
   कविकुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः ।। राजशेखर
3. उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरूचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
   वहति गिरिरयं बिलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ।। शिशुपाल0 - 4/20.
4. कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोज षण्डं त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिवांश्चक्रवाकः ।
   उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः ।। शिशु0।।

9. **नैषधीयचरितम् :-**

मध्यकालीन इतिहास काल में लिखे गये महाकाव्यों में 'नैषधीय चरितम्' का नाम अगाध निष्ठा से लिया जाता है । यह बृहत्त्रयी का सर्वोत्कृष्ट रत्न है । इसके 22 सर्गों में नल के पावन चरित के साथ, नलदमयन्ती के प्रेम एवं विवाह की कथा को बड़े मनोरम ढंग से वर्णित किया गया है । माघ और भारवि नैषधीयचरित के आगे फीके पड़ गये :-

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः ।

श्रीहर्ष के पाण्डित्यपूर्ण काव्य ने पण्डितमण्डली को यह कहने के लिए बाध्य कर दिया कि 'नैषध विद्वानों के लिए टानिक है ।'[1] श्रीहर्ष ने ही द्वयर्थक, त्रयर्थक तथा पंचार्थक पद्यों की नवीन विधा को जन्म दिया । स्वयं श्रीहर्ष ने नैषध को 'श्रृङ्गाररूपी अमृत का शीतल चन्द्र'[2] कहा ।

10. **हरविजय :-**

रत्नाकर रीतिवादी कवि हैं । इन्होंने 50 सर्गों में हरविजय नामक महाकाव्य की रचना की । संस्कृत साहित्य का यह सर्वाधिक सर्गों वाला महाकाव्य है । 'क्रीडासक्त पार्वती ने भगवान शंकर के तीनों नेत्रों को अपने हाथों से बन्द कर लिया । इससे विश्व भर में अन्धकार व्याप्त हो गया, क्योंकि ये त्रिनेत्र सूर्य, चन्द्र तथा वैश्वानर रूप होते हैं । यह अन्धकार ही 'अन्धकासुर' के रूप में परिणत हो गया । यह संसार की सुरक्षा को चुनौती देने लगा । फलतः शिवजी ने मारकर संसार की रक्षा की ।' इसी का साङ्गोपाङ्ग तथा आलङ्कारिक वर्णन हरविजय के 50 सर्गों में है । माघ के 'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तमात्रचारू' का अनुकरण करके रत्नाकर ने अपने काव्य को 'चन्द्रार्धचूल-चरिताश्रयचारू' कहा । रत्नाकर की रचना से प्रसन्न राजशेखर का मत है कि ब्रह्मा चार रत्नाकरों (समुद्रों) से सन्तुष्ट नहीं हुए । इसीलिए उन्होंने पाँचवा रत्नाकर (कवि) उत्पन्न किया ।[3]

---

1. नैषधं विद्वदौषधम् ।
2. श्रृङ्गारामृतशीतांशुः । श्रीहर्ष .
3. मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे ।
   इतीव सत्कृतो धात्रा कवी रत्नाकरो परः ।। राजशेखर.

iv अनतिप्रसिद्ध संस्कृत महाकाव्यों एवं महाकवियों का नाम निरूपण

रामचरित	-	अभिनन्द.
बालभारत	-	अमरचन्द्रसूरि.
हयग्रीवबध	-	भर्तृमेण्ठ
कप्फिणाभ्युदय	-	शिवस्वामी.
पारिजातहरण	-	कविकर्णपूर.
रामायण-मंजरी	-	क्षेमेन्द्र.
भारत-मंजरी	-	क्षेमेन्द्र.
वृहत्कथामंजरी	-	क्षेमेन्द्र.
दशावतारचरित	-	क्षेमेन्द्र.
अवदानकल्पलता	-	क्षेमेन्द्र.
युधिष्ठिर-विजय	-	वासुदेव.
श्रीकण्ठचरित	-	मंखक.
नरनारायणानन्द	-	वस्तुपाल.
यादवाभ्युदय	-	वेदान्तदेशिक.
वराङ्गचरित	-	जटासिंह नन्दी.
चन्द्रप्रभचरित	-	वीरनन्दी.
वर्धमान चरित	-	कवि असङ्ग.
प्रद्युम्न चरितम्	-	महासेन कवि.
पार्श्वनाथ चरितम्	-	वादिराज.
शान्तिनाथचरितम्	-	मुनिभद्रसूरि.
धर्मशर्माभ्युदय	-	महाकवि हरिश्चन्द्र.
नेमिनिर्वाणकाव्य	-	वाग्भट प्रथम.
जयन्तविजय	-	अभयदेव सूरि
पद्मानन्दमहाकाव्य	-	अमरचन्द्र.
सन्तकुमारमहाकाव्य	-	जिनपाल उपाध्याय.

पार्श्वनाथचरित	-	माणिकचन्द्र तथा भवदेव.
मल्लिनाथचरित	-	विनयचन्द्र सूरि.
अभयकुमार चरित	-	चन्द्रतिलक.
श्रेणिक चरित	-	जिनप्रभसूरि।
मुनिसुव्रतमहाकाव्य	-	अर्हदास.
विजय प्रशस्तिकाव्य		हेम विजयगणि.
जम्बूस्वामिचरित	-	कविराजमल्ल.
जगडू चरित	-	सर्वानन्द,
राघव-पाण्डवीय	-	धनंजय.
राघव-पाण्डव-यादवीय	-	चिदम्बर कवि.
शत्रुंजय - महात्म्य	-	धनेश्वरसूरि.
सुदर्शन-चरित	-	सकलकीर्ति.
जैनकुमारसम्भवम्	-	शेखरसूरि.
कादम्बरी-कथासार	-	अभिनन्द.
हरिविलास	-	लोलिम्बराज.
गोविन्दाभिषेक	-	बिल्वमंगल.
वसवेश-विजय	-	शंकराराध्य.
पण्डिताराध्यचरित	-	सोमनाथ.
यमकभारत	-	माधवाचार्य.
उषाहरणकाव्य	-	त्रिविक्रम.
रूक्मिणीकल्याण	-	विद्याचक्रवर्ती.
सहृदयानन्द	-	कृष्णानन्द.
बालभारत	-	अगस्त्य.
उदार राघव	-	साकल्य मल्ल.
नरकासुर-विजय	-	माधव.
रघुनाथ-चरित	-	वामनभट्ट बाण.
नलाभ्युदय	-	वामनभट्ट बाण.
सालुवाभ्युदय	-	राजनाथ द्वितीय.

भरतचरित - कृष्णाचार्य.

भारतसंग्रह - रामवर्मा.

पाण्डवाभ्युदय - शिवसूर्य.

रामाभ्युदय - सालुव नरसिंह.

हरिचरितकाव्य - चतुर्भुज.

कृष्णविलास - स्वयंभूनाथ.

साहित्यसुधा - गोविन्द दीक्षित.

भिक्षाटन-काव्य - उत्प्रेक्षावल्लभ.

राष्ट्रौढ़वंश-महाकाव्यम् रूद्रकवि.

रघुनाथ-भूपविजय - यज्ञनारायण.

रूक्मिणी-कल्याण - राजचूड़ामणि दीक्षित.

प्रद्युम्नोत्तरचरित - मृत्युंजय दीक्षित.

जानकी-परिणय - चक्रकवि.

शिव-लीलार्णव - नीलकण्ठ.

रामचन्द्रोदय - वेंकटेश.

नाटेश-विजय - वेंकटकृष्ण यज्वा.

भूवराह-विजय - श्रीनिवास.

लक्ष्मीनारायणचरित - वरददेशिक.

रघुवरविजय - वरददेशिक.

मुकुन्द-विलास - भगवन्त.

पतंजलि-चरित - रामभद्रदीक्षित.

विष्णु-विलास - रामपाणिपाद.

राघवीय-काव्य - रामपाणिपाद.

रामचरित - रामवर्मा.

सौन्दरविजय - नारायण शास्त्री.

श्रीराममहाकाव्य - गुरूप्रसन्न भट्टाचार्य.

सीता–स्वयंवर	-	नागराज.
भारतीयदेशभक्तचरित –		नागराज.
भारतपारिजात	-	भगवदाचार्य.
पारिजातापहार	-	भगवदाचार्य.
पारिजात सौरभ	-	भगवदाचार्य.
सौलोचनीयम्	-	विष्णुदत्तशुक्लवियोगी.
गंगाकाव्य	-	विष्णुदत्तशुक्लवियोगी.
दयानन्द दिग्विजय –		-मेधाव्रतकविरत्न.
भारतानुवर्णन	-	रामावतार शर्मा.
दयानन्द-दिग्विजय -		-अखिलानन्दशर्मा.
राधापरिणयम्	-	बदरीनाथ शर्मा मैथिल.
प्रताप-विजयम्	-	मथुराप्रसाद शास्त्री.
भारत-विजयम्	-	मथुराप्रसाद शास्त्री.
आर्योदय	-	गंगाप्रसाद उपाध्याय.
पारिजातहरण	-	उमापतिशर्मा.
जानकी-चरितामृतम्		राम सनेहीदास.
स्वराज्य-विजयम् -		द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री.
बोधिसत्त्वचरित	-	डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री.
गुरूगोविन्दसिंह महाकाव्य -		डॉ0 सत्यव्रतशास्त्री.
सीताचरितम्	-	डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी.
जानकी–जीवनम्	-	डॉ0 राजेन्द्र मिश्र.[1] ।

---

1. संस्कृत–साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी पृष्ठ - 254.

ऐतिहासिक संस्कृत महाकाव्य - एक सामान्य चर्चा :-

इतिहास का आश्रय लेकर काव्य लिखने की परिपाटी संस्कृत साहित्य में नयी नहीं है । कवियों ने अपने आश्रयदाता की कीर्ति अक्षुण्ण बनाये रखने के विचार से उनका जीवन चरित रोचक भाषा में लिखने का उद्योग किया है, परन्तु उनका यह उद्योग शुद्ध रूप से साहित्य की कोटि में ही आता है, इतिहास कोटि में नहीं; क्योंकि वे अपने आश्रयदाता के विषय में अत्यावश्यक ऐतिहासिक सामग्री भी देने का प्रयत्न नहीं करते । गुप्तकाल के वत्सभट्टि ने कतिपय प्रशस्तियाँ ही प्रस्तुत की हैं । बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' लिखकर ऐतिहासिक काव्य के निर्माण का प्रथम अवतार किया, परन्तु महाकाव्य की दृष्टि से 'नवसाहसाङ्कचरित' को प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य कहा जा सकता है ।

नवसाहसाङ्कचरित :-

संस्कृत के सबसे पहले इस ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना पद्मगुप्त 'परिमल' ने की । 18 सर्गों के इस महाकाव्य में धारा के विश्रुतनरेश भोजराज के पिता सिन्धुराज का विवाह नागराज शंखपाल की शशिप्रभा नाम्नी राजकुमारी से वर्णित है । वाक्पति के मृत्यूपरान्त पद्मगुप्त काव्यलेखन से पराङ्गमुख हो गये किन्तु उनके अनुज सिन्धुराज की प्रेरणा तथा उत्साहदान से पुनः काव्य रचना में प्रवृत्त हुए ।[1] पद्मगुप्त उस वैदर्भ मार्ग के कवि हैं जिस पर चलना उनकी दृष्टि में 'तलवार' के धार पर धावनों है ।[2]

वैदर्भमार्ग के विश्वविश्रुत कवि कालिदास के बारे में पद्मगुप्त की धारणा बड़ी उच्च है ।[3] वस्तुतः कालिदासीय वैदर्भी का इतना सफल तथा आवर्जक उपासक दूसरा कवि खोजने पर भी न मिलेगा । अलङ्कारों की योजना बेतुकी न होकर सहज है । तथ्य यह है कि इनके अलङ्कार 'अपृथग्यत्न - निर्वर्त्य' हैं- बिना किसी प्रयास के अलङ्कार स्वयं उपस्थित हो जाते हैं । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पद्मगुप्त रचित नवसाहसाङ्कचरित में हृदयपक्ष तथा कलापक्ष - दोनों का मंजुल सामंजस्य सहृदयों के हृदयावर्जन में सर्वथा समर्थ है ।

विक्रमाङ्कदेवचरित :-

इस महाकाव्य की रचना बिल्हण ने 18 सर्गों में की । इसमें चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ठ के ऐतिहासिक चरित का वर्णन साहित्य की सरस शैली में निबद्ध किया गया है । बिल्हण कविगोष्ठी में अपनी कल्पना प्रौढ़ि के लिए नितान्त प्रसिद्ध है । ये कवियों का बहुत बड़े पक्षपाती हैं । राजाओं को बड़े सारगर्भितशब्दों में चेतावनी देते हैं ।[4]

---

1. दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रामदत्त यां वाक्पतिराजदेवः ।
   तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराजः ।। नवसाह0- 1/8.
2. निस्त्रिंशधारासदृश..............। तत्रैव - 1/5.
3. प्रसादहृद्यालङ्कारैस्तेन मूर्तिरभूष्यत ।
   अत्युज्जवलैः कवीन्द्रेण कालिदासेन वागिव । तत्रैव .
4. लङ्कापतेः सङ्कुचितं यशोयत् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।
   स सर्वएवादि कवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ।। बिल्हण .

राजतरङ्गिणी :-

आधुनिक ऐतिहासिक रीति से साधनों के पर्यालोचन के आधार पर निर्मित राजतरङ्गिणी प्राचीन काश्मीर का एक महनीय इतिहासग्रन्थ है और इसके रचयिता का नाम कल्हण है । यह ग्रन्थ काश्मीर के राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक विवरण, सामाजिक व्यवस्था, साहित्यिक समृद्धि तथा आर्थिक दशा को जानने के लिए सचमुच एक विश्वकोष है । राजतरङ्गिणी में आठ तरङ्ग हैं इसमें काश्मीर के राजाओं का प्रामाणिक इतिहास वर्णित है । आरम्भ के राजा पौराणिक-गाथा के आधार पर आश्रित कल्पना जगत् के जीव हैं । सर्वप्रथम निर्दिष्ट की गयी तिथि 813-14 ई0 है यहाँ से 1150 ई0 तक की घटनाएँ पूर्णतया प्रामाणिक हैं । कल्हण खरा, निरपेक्ष ऐतिहासिक था वह अपने आदर्श को इस प्रकार व्यक्त करता है - "प्रशंसा का पात्र वही कवि है जो रागद्वेष से परे होकर अपने काव्य की रचना करे ।[1]

इन ऐतिहासिक ग्रन्थों से प्रभावित होकर बाद में बहुत से कवियों ने ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना की जिनका नामोल्लेख इस प्रकार है :-

कुमारपालचरित	-	हेमचन्द्र.
पृथ्वीराजविजय	-	जयानक.
कीर्ति-कौमुदी	-	सोमेश्वर.
सुरथोत्सव	-	सोमेश्वर.
हम्मीरमहाकाव्य	-	नयचन्द्र सूरि.
सोमपालविजय	-	जल्हण.
सुरजनचरितमहाकाव्य	-	चन्द्रशेखर.
अच्युतरायाभ्युदय	-	राजनाथ डिंडम.
रामचरितमहाकाव्य	-	सन्ध्याकरनन्दी.
सुकृतसंकीर्तन	-	अरिसिंह.
बसन्तविलास	-	बालचन्द्र.
धर्माभ्युदय	-	उदयप्रभसूरि.
रामकथा	-	मधुरवाणी.
जयोदयमहाकाव्य	-	भूरामल ब्रह्मचारी.
मदुरा विजय	-	गङ्गादेवी.
सत्याग्रहगीता	-	पण्डिताक्षमाराव.
रघुनाथाभ्युदय	-	रामभद्राम्बा .
अभिनवरामाभ्युदय	-	अभिराम कामाक्षी[2]

---

1. श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेष बहिष्कृता ।
   भूतार्थ कथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ।। कल्हण.
2. संस्कृत-साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी .

निष्कर्षतः महाकाव्य के विकास पर दृष्टिपात करने से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि आद्ययुग में नैसर्गिकता, सहजता का ही काव्य में मूल्य था, भावपक्ष की प्रधानता थी और वही गुण आदर की दृष्टि से देखा जाता था । परन्तु आगे चलकर कलापक्ष की प्रधानता स्थापित हो गयी, भाव पक्ष गौण हो गया । पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने खूब जोर पकड़ा । न्याय तथा वेदान्त के अध्ययन ने इसे और संपुष्ट किया । फलतः काव्य-रसिकों द्वारा अपने प्रबन्धों में अक्षराडम्बर तथा अलङ्कारों का वर्णन खूब जोर-शोर से किया जाने लगा । यह हृदय को आप्यायित करने के स्थान पर मस्तिष्क को संपुष्ट करने लगा । भावपक्ष की गौणता ने ही इन विचित्रमार्गियों को निन्दास्पद बना दिया । इस बात का उद्घोष ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में इन शब्दों में किया है- 'दृश्यन्ते च कवयोऽलङ्कारनिबन्धनैकरसानपेक्षित रसाः प्रबन्धेषु ।' रस की उपेक्षा इन आचार्यों को मान्य पदवी से च्युत कर देता है । ऐसे ही महाकाव्यों की ललित परम्परा में सुकुमार मार्ग का स्थान विचित्र मार्ग ने ले लिया । इन्हीं मार्गों में प्रवृत्तहोकर अपने महाकाव्यों, प्रबन्धों का सृजन करने वाले महाकवियों की संस्कृत साहित्य में एक वृहद् एवं समृद्ध परम्परा है । इनमें से कुछ के नाम मात्र ज्ञात हैं, कुछ के ग्रन्थ लुप्तप्राय हैं, कुछ के ग्रन्थ प्रकाशित तथा कुछ के अप्रकाशित । कुछ का अन्य ग्रन्थों में नाम - निर्देश है । मुझ जैसे अल्पधी विद्यार्थी के लिए सम्पूर्ण महाकाव्यों का वर्णन असम्भव तो है ही साथ-साथ कठिन भी । फिर भी मैंने यथा-सम्भव विवेचन अपने शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में किया है । दोषादोष के लिए सुधीजन प्रमाण हैं ।

------------000-------------

द्वितीय अध्यायः पुराण-विचार

(1) पुराण का स्वरूप

पुराण भारतीय साहित्य के गौरव ग्रन्थ हैं। बिना पुराण के अध्ययन के कोई भी व्यक्ति विचक्षण नहीं माना जा सकता। प्राचीन मनीषियों का तो यह शंखनाद है कि कोई द्विज चारों वेदों को तथा उनके अंगों को जानता भले हो, यदि वह पुराण को नही जानता, तो वह विचक्षण-विदग्ध तथा शास्त्रकुशल नहीं माना जा सकता। वेद तो हमारे सनातन धर्म, सर्वप्रामाणिक तथा प्राचीन ग्रन्थ हैं ही- इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं हो सकता, परन्तु वेद का उपबृंहण करने वाला पुराण वेद का पूरक माना जाता है। व्यास जी का यह प्रख्यात श्लोक इसी तथ्य की ओर संकेत करता है-

> इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृहयेत् ।
> विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।[1]

पुराणार्थ की वेदार्थ से महनीयता मानने के तीन कारण है-[2]

(1) वैदिक साहित्य की दुष्पारता- अर्थात् वेद का साहित्य इतना विशाल है कि उसका पार पाना एकान्ततः कठिन है।

(2) वेदार्थ की दुरधिगमता- अर्थात् वेद की भाषा के सर्वाधिक प्राचीन होने के कारण उसके अर्थ को समझना नितान्त कठिन है।

(3) वेदार्थ के निर्णय में मुनियों का परस्पर विरोध। उदाहरणार्थ वैदिक 'वृत्त' के स्वरूप का निर्णय आज भी यथार्थरूपेण नही हो पाया।

1- महाभारत- आदि पर्व।

2- जीवगोस्वामी- तत्वसन्दर्भ की भूमिका में।

इसीलिए महर्षि यास्क ने अपने प्रथम भाषावैज्ञानिक ग्रन्थ 'निरूक्त' में नाना सम्प्रदायों का उल्लेख कर निर्णय के प्रश्न को खुला ही छोड़ दिया है। इन कारणों से उत्पन्न दुरूहता पुराण में कहीं भी नहीं है। पुराण न तो दुष्पार है, न उसका अर्थ दुरधिगम है, और न उसके अर्थ-निर्णय में 'मुनीनां च मतिभ्रमः' वाली बात है। पुराण तथा वेद की यह शैली तथा भाषागत वैभिन्य को मूलतः समझ लेना नितान्त आवश्यक है। वेद की भाषा प्राचीन तथा दुरूह है, शैली - रूपकमयी तथा प्रतीकात्मक है। इसके ठीक विपरीत पुराण की भाषा व्यावहारिक तथा सरल और शैली रोचक तथा आख्यानमयी है। इसीलिए जनता के हृदय तक धर्म के तत्त्व को सुबोध भाषा के द्वारा पहुँचा देने में पुराण का प्रतिस्पर्धी कोई साहित्य नहीं ।

स्मृतियाँ भी वेद प्रतिपादित धर्म का वर्णन करती हैं परन्तु वे उपदेशमयी होने के कारण आकर्षणविहीन है, लेकिन पुराण अपने उपदेशों को कथा-कहानी, आख्यान-उपाख्यान के रूप में प्रस्तुत करता है और इसीलिए उसका आकर्षण सर्वातिशायी है। जनता के हृदय को उतना न तो वेद का दुरूह मन्त्र आकृष्ट करता है और न स्मृति का शुष्क श्लोक, जितना पुराण का भक्ति संपुटित सरल श्लोक । इसी बात का प्रतिपादन निम्न श्लोक करता है -

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने ।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ।।[1]

---

1. नारदीय पुराण - 2 / 24 / 17

1. पुराण का अर्थ एवं लक्षण

पुराण का वास्तविक अर्थ प्राचीन या पुराना है। इसमें प्राचीन कथानक, वंशावली इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी प्राचीन तत्त्वों का समावेश है। अतः इसे पुराण नाम दिया गया है। पुराण के इसी भाव को लेकर अनेक व्युत्पत्तियाँ दी गई। 'पुराणम् आख्यानं पुराणम्' अर्थात् प्राचीन आख्यानों को पुराण कहते हैं। वायु पुराण[1] में लिखा है कि जो प्राचीन समय में सजीव था वही पुराण है। ऐतरेय ब्राह्मण की भाष्य-भूमिका में सायण[2] संसार की उत्पत्ति और विकास-क्रम के बोधक को पुराण कहते हैं। पद्मपुराण[3] ने पूर्व तत्त्व (पुरूष-प्रकृति) के चिन्तन में संलग्नता को पुराण कहा। वायु पुराण[4] प्राचीन परम्परा के प्रतिपादक ग्रन्थों को भी पुराण कहता है। मधुसूदन सरस्वती[5] ने अपने ग्रन्थ 'पुराणोत्पत्ति प्रसंग' में विश्वरचना के इतिहास को पुराण कहा है। पूरण करने के कारण भी इसे पुराण की संज्ञा दी जाती है - पूरणात् पुराणम् ।

---

1. यस्मात् हि पुरा अनति इदं पुराणम् ।। वायु पुराण 1-203 ।।
2. जगतः प्रागवस्थामनुक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम् ।। ऐ.ब्रा. की भूमिका ।।
3. पुरार्थेषु आनयतीति पुराणम् ।। पद्म पुराण ।।
4. पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम् ।। वायु पुराण - 1-2-53 ।।
5. विश्वसृष्टेरितिहासः पुराणम् ।। पुराणोत्पत्ति प्रकरण ।।

इन समस्त वाक्यों से निश्चित हुआ कि सृष्टि आदि का वर्णन अथवा कथन पुराणों का लक्षण है। विष्णु, ब्रह्माण्डादि पुराण में लक्षण इस प्रकार है -

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि ।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ।।

पुराण में ये पाँच बातें होनी चाहिए - (1) सर्ग - अर्थात् सृष्टि का वर्णन (2) प्रतिसर्ग - प्रलय एवं सृष्टि का पुनः प्रादुर्भाव (3) वंश - देवों और ऋषियों की वंशावली (4) मन्वन्तर - प्रत्येक मनु का काल और उस समय की प्रमुख घटनाएं (5) वंशानुचरित - सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं का जीवन चरित।

पुराण के ये पाँचों लक्षण केवल विष्णु पुराण पर ही घटित होते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि और सभी पुराण, पुराण नहीं। मूलतया यह लक्षण लक्ष्य ग्रन्थों को आधार बनाकर नहीं अपितु लक्षण-ग्रन्थों के आधार पर बनाया गया है। इसीलिए सभी पुराणों में इन पाँचों का घटित होना आवश्यक नहीं। अन्य पुराणों में इसके अतिरिक्त भी कुछ लक्षण जैसे - प्रार्थना, उपवास, व्रत, तीर्थ, ज्योतिष, भौगोलिक स्थान, आयुर्वेद, व्याकरण काव्यशास्त्र आदि वर्णित हैं। इस प्रकार यह लक्षण नहीं उपलक्षण मात्र है।

उपनिषद्-भाष्य में शंकराचार्य ने एक सृष्टि तत्त्व का ही मुख्य रूप से निरूपण किया था इससे यह नहीं समझना चाहिए कि चार अन्य लक्षण विद्यमान न थे, अवश्य थे। पुराण में सृष्टि तत्त्व को छोड़कर अन्य विषय भी वर्णित था। यह रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों से भी जाना जाता है। वाल्मीकि[1] के बालकाण्ड में सुमन्त राजा दशरथ से कहते हैं कि हे महाराज ! जो आपके विषय में पुराणों में सुन रखा है सो आप सुनिए इत्यादि किस प्रकार से आपको पुत्र होंगे, वह सब कथा पुराण में पहले ही वर्णित है। महाभारत[2] में शौनक कहते हैं कि पुराणों में दिव्यकथा तथा बुद्धिमान पुरूषो के आदि वंश का वर्णन है। पहले तुम्हारे पिताजी से सब कथा सुनी थी। अग्नि-पुराण[3] में उग्रश्रवा कहते हैं कि हे महामुनि ! यह उत्तम भार्गव वंश है। तुम्हारे निमित्त प्रथम इस भार्गव वंश की पुराणाश्रय संयुक्त कथा कहता हूँ।

---

1. एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् ।
   श्रूयतां यत्पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम् ।। रामायण - बालकाण्ड ।।

2. पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाच्च धीमताम् ।
   कथ्यन्ते ये पुरास्माभिः श्रुतपूर्वाः पितुस्तव ।। महाभारत - आदि पर्व 5/2 ।।

3. इमं वंशमहं पूर्व्वं भार्गवं ते महामुने ।
   निगदामि यथा युक्तं पुराणाश्रयसंयुतम् ।। अग्नि पुराण 5/6/7 ।।

2. पुराणों के रचयिता

पुराणेतिहास में मंगलकरनी महात्माओं की कथा लिखी है। किसने लिखा - इन महनीय ग्रन्थों को ? इनका प्रणेता कौन है ? तो वृहदारण्यक, शतपथ आदि तथा आश्वलायनगृहयसूत्र के अनुसरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिस प्रकार से ब्रह्मा आदि को लेकर महर्षियों के हृदय में वेदों का आविर्भाव हुआ उसी प्रकार उन्हीं महर्षियों के हृदय में ईश्वर की अनुग्रह से पुराणों का भी आविर्भाव हुआ। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की भाँति व्यास जी पुराणों के द्रष्टा हैं स्रष्टा नहीं। स्कन्द पुराण[1] के रेवाखण्ड में यह बात स्पष्ट है। पद्म-पुराण[2] के सृष्टि खण्ड में भी यही बात समर्थित हुई है कि पहले पुराणों से सब शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई और समयानुसार समस्त पुराण के ग्रहण में असमर्थ देखकर वह व्यासरूपी भगवान् ब्रहमा युग-युग में संग्रह के निमित्त चार लक्ष श्लोक परिमाण वाले पुराण प्रत्येक द्वापर युग में करते हैं वह अठारह प्रकार के करके इस भूलोक में प्रकाशित होते हैं।

---

1. अष्टादशपुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः ।। स्कन्द पुराण - रेवा खण्ड ।।

2. प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा ।
कलिना ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः ।।
व्यासरूपी तदा ब्रहमा संग्रहार्थं युगे-युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे-द्वापरे प्रभुः ।।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन्प्रकाशते ।। पद्म पुराण - सृष्टि खण्ड ।।

स्कन्द पुराण[1] में भी यही बात प्रतिपादित है कि पहले एक ही पुराण था और अर्थ, धर्म, काम का साधक वह सौ कोटि श्लोक परिमाण वाला था उसको स्मरण करके ब्रह्माजी ने मुनियों के प्रति कथन किया तब सब शास्त्रों और पुराणों की प्रवृत्ति हुई। जब समय पर पुराणों का अग्रहण देखकर कि, इतना बड़ा ग्रन्थ सब कैसे ग्रहण कर सकेंगे तब व्यासरूप धारण कर प्रभु प्रतिद्वापरयुग में उसको संक्षेप करते हैं, प्रतिद्वापरयुग में वह चार लाख श्लोक वाला पुराण बना करके उसके अठारह भेद करते हैं। देवलोक में अब भी सौ कोटि श्लोकों में इनका विस्तार है सो इसी निमित्त चार लक्ष श्लोक वाले 18 पुराण इस समय कहे जाते हैं। जिन कल्पों में जो 18 पुराण थे यदि कहीं पुराण नाम या संख्या में भेद पड़ता है तो वह दूसरे कल्प का जानना चाहिए। मत्स्य पुराण[2] में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि इस लोक के हित के निमित्त ही व्यास जी ने इनको संक्षिप्त किया।

---

1. पुराणमेकमेवासीदस्मिन् कल्पान्तरे नृप ।
   त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।।
   स्मृत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवश्चतुर्मुखः ।
   प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ।।
   कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ।
   व्यासरूपं विभुं कृत्वा संहरेत् स युगे-युगे ।।
   चतुर्लक्ष प्रमाणेन द्वापरे-द्वापरे सदा ।
   तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोके स्मिन्प्रभाषते ।।
   अद्यापि देवलोके तच्छतकोटि प्रविस्तरम् ।
   तदर्थोत्र चतुर्लक्षः संक्षेपेण निवेशितः ।।
   पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ।। स्कन्द पुराण-रेवामाहात्म्य - 1 / 23 / 30 ।।
2. इहलोकहितार्थाय संक्षिप्तं परमर्षिणा ।। मत्स्य पुराण - 53 / 58 ।।

इन प्रमाणों से बोध होता है कि व्यास जी ही अठारह पुराणों के कर्त्ता वक्ता हैं परन्तु बहुत से आधुनिक पाश्चात्य मनीषी इस बात से सहमत नहीं। वे कहते हैं कि पुराणों की रचना परस्पर इतनी भिन्न है कि ये एक कवि के बनाये कभी नहीं हो सकते। विष्णु, भागवत, ब्रह्मवैवर्त - इनकी रचना परस्पर इतनी भिन्न है कि इसे एक लेखनी से निर्गत नहीं माना जा सकता।

सब पुराण जो इस समय पाये जाते हैं यह सब इसी द्वापर-युग के हों ऐसा नहीं कह सकते। प्रतिद्वापर में भिन्न-भिन्न व्यास होते हैं, उनकी रचना भी व्यास जी ने जब ग्रहण की तब तक 28 व्यास इस कल्प के हो चुके हैं। सबने ही यही कार्य किया है। द्वैपायन व्यास जी ने वह सब रचना रहने दी तब रचना में भेद होना कोई आश्चर्य नहीं है और न यह पाश्चात्य मनीषियों की शंका ही ठहरती है। इसकी सविस्तार चर्चा विष्णु पुराण[1] में है।

---

1. आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।।
प्रख्यातो व्यासशिष्यो भूतसूतो वे शेमहर्षणः ।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः ।।
सुमतिश्चाग्निवर्चश्च मित्रायुः शांशपायनः ।
अकृतवर्णोथ सावर्णिः षट्शिष्यास्तस्य चाभवन् ।।
काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिः शांशपायनः ।
रोमहर्षणिकाश्चान्यास्तिसृणां मूलसंहिताः ।।
चतुष्टयेनाप्येतेन संचितानामिदं मुने ।
आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राहममुच्यते ।।
अष्टादशपुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते ।। विष्णु पुराण - 3-6-16-31 ।।

मत्स्य पुराण[1] में इस बात की साफ उद्घोषणा की गयी है कि पहले एक ही पुराण था जो त्रिवर्गसाधन और पुण्यस्वरूप शतकोटि श्लोकों वाला था। जब सब लोक दग्ध हो गये तब मैंने वाजिरूप से अंगों सहित चारों वेद, पुराण, न्याय विस्तर, मीमांसा और धर्मशास्त्र का ग्रहण किया और कल्प के आदि में मत्स्य रूप से जल के अन्तर्गत यह सब वर्णन किया और इस पुराण को सुनकर ब्रहमाजी ने दूसरे मुनियों के प्रति वर्णन किया। इसीलिए कहा जाता है कि ब्रहमाजी ने सब शास्त्रों से प्रथम पुराण प्रकट किए पीछे उनके मुख से वेद प्रकट हुए। इस प्रकार यह बात पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाती है कि पुराणों के संग्रहकर्ता व्यासजी एक हैं किन्तु ये अनेक युगों में उद्भूत व्यास है न कि केवल कृष्णद्वैपायन।

---

1. पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरे नघ ।
   त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।।
   निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया ।
   अङ्गानि चतुरो वेदाः पुराणं न्यायविस्तरम् ।।
   मीमांसा धर्मशास्त्रं च परिगृहय मया कृतम् ।
   मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ।।
   अशेषमेतत्कथितमुदकान्तर्गतेन च ।
   श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवान् चतुर्मुखः ।।
   पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रहमणा स्मृतम् ।
   अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।। मत्स्य पुराण अध्याय 53 ।।

3. **पुराणों का रचना काल :**

पुराणों की रचना एक काल में हुई या क्रमिक विकास का परिणाम है पुराण। इस सन्दर्भ में भारतीय मनीषी यह मानते है कि पुराणों की रचना कालैक विशेष में न होकर अनेक काल के श्रम का प्रतिफल है। विवाद का विषय यह है कि पुराण प्राचीन है या अर्वाचीन। इसके लिए हमें निम्नलिखित प्रमाणों पर ध्यान देना चाहिए -

1. वर्तमान महाभारत और पुराणों का सम्बन्ध विवेचनीय है। महाभारत को यह वर्तमान रूप प्राप्त होने से भी पहले पुराणों का अस्तित्व था। महाभारत कथा के वक्ता उग्रश्रवा लोमहर्षण के पुत्र थे। वे पुराणों में पूर्ण रूप से निष्णात बताये गये हैं। लोमहर्षण भी पुराणों के विशेष ज्ञाता के रूप में प्रसिद्ध थे। हरिवंश पुराण में वायु पुराण के निर्देश ही नहीं मिलते, प्रत्युत् वह वर्तमान वायु पुराण के साथ-साथ अनेक अंशों में भी साम्य रखता है। बहुत से आख्यान तथा उपदेशात्मक श्लोक पुराणों एवं महाभारत में समान रूप से उपलब्ध होते हैं। डॉ0 ल्यूडर्स ने इस बात को प्रमाणतः सिद्ध किया है कि ऋष्यश्रृंग का जो आख्यान पद्मपुराण में मिलता है वह महाभारत में उपलब्ध आख्यान की अपेक्षा प्राचीन है। इस परीक्षा से इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि महाभारत के वर्तमान संस्करण उपलब्ध होने से बहुत ही पहले पुराण वर्तमान थे, और जो पुराण इस समय उपलब्ध हो रहे हैं उनमें भी बहुत सी सामग्री महाभारत की अपेक्षा कहीं अधिक पुरानी है।

2. कौटिल्य का अर्थशास्त्र पुराणों से अच्छी तरह परिचित है। चाणक्य का मानना है कि उन्मार्ग पर चलने वाले राजकुमारों को पुराणों का उपदेश देकर सन्मार्ग पर लाना चाहिए। इतना ही नहीं कौटिल्य (चाणक्य) ने पौराणिक को राज्य के अधिकारियों में अन्यतम स्थान दिया है। अतः पुराणों को कौटिल्य से प्राचीन मानना उचित जान पड़ता है।

3. ब्राहमण ग्रन्थों में शतपथ, गोपथ आदि पुराण की प्राचीनता प्रतिपादित करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि पुराण वेद है यह वही वेद है इस प्रकार कहकर अध्वर्यु पुराण कीर्तन करते हैं।[1] इसी ब्राहमण में इतिहास पुराण के स्वाध्याय की भी बात की गयी है।[2] गोपथ ब्राह्मण में भी पुराण का उल्लेख साड्.गोपाड्.ग है। यहाँ कहा गया कि इस प्रकार सम्पूर्ण वेद कल्प रहस्य, ब्राह्मण उपनिषद् इतिहास वंश पुराण सहित प्रकट हुए, इसमें ब्राह्मण भाग से पुराण पृथक् ग्रहण किया है।[3]

---

1. पुराणं वेदः सो यमिति किन्चित् पुराणमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति न प्रक्रमान् जुहोति ।। शतपथ - 13/4/3/13 ।।

2. एवं विद्वान् वाकोवाक्यमितिहासपुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते त एनन्तृप्तास्तर्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वैःभोगैः ।। वही - 11/5/7/9 ।।

3. एवमिमे सर्वे वेदाः निर्मितास्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वयाख्याताः सपुराणाः सस्वराः इत्यादि ।। गोपथ ब्राहमण - भाग - 2 प्रथम अध्याय ।।

4. आरण्यक काल में भी पुराणों की चर्चा मिलती है। इसमें कहा गया है कि गीले काण्ठ से उत्पन्न अग्नि से जिस प्रकार पृथक्-पृथक् धुआँ निकलता है ऐसे ही इस महाभूत के निःश्वास से ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्वाङ्गिरसवेद, इतिहास, पुराण विद्या उपनिषदादि प्रकट हुए। यह सब ही निःश्वासभूत हैं।[2] शंकराचार्य बृहदारण्यक भाष्य में लिखते हैं कि 'निःश्वासमकामतः निःश्वासवत्' अर्थात् श्वास बिना यत्न ही पुरूष से जैसे प्रकट होता है वैसे बिना यत्न वेदादि उसे प्रकट हुए।

5. उपनिषद् काल में भी पुराणों का उल्लेख हमें मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् में इतिहास पुराण को पंचम वेद कहा गया है।[2]

6. इससे भी महत्वपूर्ण उल्लेख स्वयं अथर्वसंहिता का है।[3] अथर्ववेद के इस मन्त्र के अनुसार उच्छिष्ट नाम से अभिहित परम पुरूष से चारों वेदों के अनन्तर पुराण की उत्पत्ति का निर्देश किया गया है। प्रसंगतः प्रतीत होता है कि यहाँ पुराण शब्द से केवल पुराने आख्यान का अर्थ नहीं, प्रत्युत् विद्या विशेष से है।

---

1. एवं वा अरेऽस्य महतोभूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः इत्यादिः ।। बृहदा0 - 2/4/।। ।।

2. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदम् ।। छान्दोग्य - 7/1/2 ।।

3. ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।। अथर्ववेद - 11/7/24 ।।

7. सूत्र ग्रन्थों के अवलोकन से पुराणों के अस्तित्व का कुछ परिचय मिलता है। उस समय पुराण ग्रन्थ रूप में निबद्ध हो चुके थे और उनका स्वरूप वही था जिस रूप में आजकल वे हमें उपलब्ध होते हैं। गौतम धर्मसूत्र (11/19) में लिखा है कि राजा को अपनी शासन व्यवस्था के लिए वेद, धर्मशास्त्र वेदांग और पुराण को प्रमाण बनाना चाहिए। वेद के समकक्ष रखे जाने से यहाँ पुराण से आख्यान विशेष अर्थ नहीं निकाला जा सकता। आपस्तम्ब धर्म सूत्र के उपलब्ध निर्देश इससे भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसमें पुराणो के दो उद्धरण उद्धृत हैं कि अटठासी (88) हजार ऋषि जो प्रजा की कामना करते थे। अर्यमा के दक्षिणपथ में जाकर श्मशान को प्राप्त हुए और जिन ऋषियों ने प्रजा की कामना नहीं की उन्होंने अर्यमा के उत्तर में जाकर अमरत्व लाभ किया।[1] पद्म पुराण[2] और ब्रहमाण्ड पुराण में ऐसे ही वचन पाये जाते हैं। बहुत सम्भव है कि उस समय विरचित पुराणों का पुनः संस्कारण पीछे किया गया हो। जो कुछ हो सूत्र काल में पुराणों की ग्रन्थ रूप में सत्ता निःसन्दिग्ध है। मनुस्मृति[3] भी पुराणों का उल्लेख करती है।

---

1. अष्टाशीति सहस्राणि ये प्रजा भीषिरर्षयः ।
दक्षिणेनार्यम्णः पन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे ।।
अष्टाशीतिसहस्राणि ये प्रजेनोषिरर्षयः ।
उत्तरेणार्यम्णः पन्थानं तेऽमृतत्त्वं हि कल्प्यते ।। आप0 2/26/35 ।।

2. अष्टाशीति सहस्राणां यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं येषां तु तत्स्थानं तदेव गुरूवासिनाम् ।। पद्म पुराण - सृष्टि खण्ड ।।

3. स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्रे धर्मशास्त्राणि चैवेहि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च ।। मनुस्मृति अध्याय - 3/232 ।।

8. पुराणों में कलियुग के राजाओं का जो वर्णन किया गया है उसकी परीक्षा भी समय-निरूपण में विशेष सहायक है। विष्णु पुराण में मौर्यवंश की प्रमाणिक वंशावली दी गयी है। मत्स्य पुराण दक्षिण के आन्ध्र राजाओं का (लगभग 225 ई0) सांगोपांग इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। वायु पुराण गुप्त राजाओं के प्रारम्भिक साम्राज्य से परिचित है। अतः पुराणों की रचना का काल गुप्तकाल के अनन्तर कथमपि नहीं हो सकता।

9. वेद जिनको पुराण कहता है पुरातन काल में वेद ही के समान उनका आदर था इसी से पुराण पंचमवेद स्वरूप में गिना गया। ब्रह्मसूत्रभाष्य में मीमांसा के मुखपूर्वपक्ष में शंकराचार्य लिखते हैं कि यदि पुराण को पौरूषेय माना गया तो इसे गौण प्रमाण के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा - "इतिहासपुराणमपि पौरूषेयत्वात्प्रमाणान्तरमूलतामाकांक्षते।"[1]

10. डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल ने पुराणों की रचना का समाप्ति काल 499 ई0 माना है जो कांचनका (राजस्थान) के अन्तिम राजाओं - पुष्यमित्र और पतुमित्र का समय था।[2]

---

1. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य - मीमांसा खण्ड ।।
2. जायसवाल - जर्नल आफ द बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, खण्ड - 3, पृष्ठ 247 ।।

पुराणों के रचनाकाल के विषय में पाश्चात्यविद्वान् क्या धारणा रखते हैं इसका भी उल्लेख जरूरी हो गया है क्योंकि भारतीय ग्रन्थों की उन्नति तथा प्रचार-प्रसार में इन विद्वानों का अप्रतिम योगदान है। लेकिन इसके बावजूद भी पाश्चात्य समीक्षकों की दृष्टि छिन्द्रान्वेषी ही रही। विष्णु पुराण के टीकाकार बिल्सन साहब ने अठारह पुराणों के विषय में कुछ अंशों का अनुशीलन करके ही लिख दिया कि ये सभी आधुनिक काल के हैं। इसी का अन्धानुकरण उनके शिष्य दक्ष ने भी किया। लगभग ऐसा ही मत आर्यसमाजी भी रखते है।

यहाँ इस बात का विचार किया जाना आवश्यक है कि क्या इन विद्वानों का कथन सत्य है ? वास्तव में क्या पुराण आधुनिक है ? वैदिक ग्रन्थ एवं प्राचीन स्मार्तग्रन्थों में जो पुराण प्रसंग हैं वह सब पुराण क्या लुप्त ही हो गये। इस समय जो पुराण पाये जाते हैं वह क्या सब ऐसे ही आधुनिक है। ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र, धर्मशास्त्र और महाभारत आदि के समय जो पुराण प्रचलित थे, श्राद्ध आदि धर्म-कार्य में उनका आयोजन होता था। शतपथ[1] में उल्लेख है कि दशवें दिन किंचित् पुराण श्रवण करे और देव व्यासजी पुराणों के विभागकर्ता सब पुराणों में इतिहासों में प्रसिद्ध हैं तब आखिर बिल्सन, दक्ष तथा आर्यसमाजियों द्वारा इन्हें आधुनिक समझा जाना कहाँ तक उचित है। यदि किसी पुराण में आधुनिक अंश प्रक्षिप्त हो तो क्या पूर्वकाल से भारत में अठारह पुराण प्रचलित नहीं थे ऐसा कहा जा सकता है? कभी नहीं ।

---

1. अथ दशमहन् .... । शतपथ ब्राहमण - 13/4/3/13 ।।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र को अँग्रेज विद्वान् डॉ0 बुलर तीसरी ई0 से पूर्व की ही रचना मानते हैं। जबकि आपस्तम्ब से बहुत पूर्व यही पुराण विद्यमान थे। सर्ग-प्रतिसर्ग का वर्णन करना उस समय भी पुराणों का मुख्य उद्देश्य था, तब बिल्सन और उनके अनुयायियों की सारी बात कट जाती है। आचार्य शंकर ने लिखा है कि सब पुराणों में आर्षप्रयोगों की छेड़ाछेड़ी है। ये पुराण लौकिक और वैदिक भाषा मिश्रित रचे गये हैं।[1]

पाश्चात्य विद्यासम्पन्न पुरूषों का मत है कि पाँचवीं ईसवी में जब भारतीय हिन्दूगणों ने यवद्वीप में पर्दापण किया तब वह ब्रह्माण्ड-पुराण, रामायण, महाभारत आदि संस्कृत-ग्रन्थ अपने साथ लाये थे। यवद्वीप से बालीद्वीप में यह सब ग्रन्थ प्रचलित हुए।

फ्रेडरिक साहब ने ब्रह्माण्ड पुराण के सृष्टिवर्णनप्रसंग, जगत् की उत्पत्ति, ब्रह्मा की तपस्या से सनक सनन्दनादि मानसी प्रजा की सृष्टि, माहेश्वर प्रादुर्भाव, कल्पवर्णन, देवासुरों की उत्पत्ति, मन्वन्तर युगादि निर्णय, सप्तद्वीप का विवरण इत्यादि जो कथा लिखी है, वह सब ब्रह्माण्ड पुराण में मिलती है। इससे दोनों समय के ब्रह्माण्ड पुराणों की अभिन्नता परिलक्षित होती है। अध्यापक बिल्सन ने इस ग्रन्थ को जिस प्रकार आधुनिक कहा वह बात ऐतिहासिक निरीक्षण से भी ठीक नहीं बैठती। दो हजार वर्ष से अधिक कुछ हुआ जब यह ग्रन्थ यवद्वीप में गया था तब इससे भी पहले यह पुराण विद्यमान था।

---

1. ये प्रजामीषिरे धीरास्ते श्मशानानि भेजिरे ।
ये प्रजां नेषिरे धीरास्तेऽमृतत्त्वं हि भेजिरे ।। शंकर - छान्दोग्योपनिषद्भाष्य ।। 3/9 ।।

इसमें सन्देह नहीं, और विष्णु पुराणादि के मत से ब्रह्माण्ड-पुराण अठारहवाँ है तो जब अठारहवाँ ही कई सहस्रवर्ष का विदेशीय मत से भी विदित होता है तब शेष सत्तरह की आधुनिकता कैसे हो सकती है ?

इसके अतिरिक्त शंकरस्वामी ने मार्कण्डेय पुराण से तथा सन् सातवीं शताब्दी में बाण[1] ने भी मार्कण्डेय पुराण के देवीमाहात्म्य से विषय संग्रह किया है तथा पवनप्रोक्त पुराण का उल्लेख किया है। बाण के समसामयिक मयूरभट्ट द्वारा सौर पुराण से सूर्य शतक का विषय संग्रह तथा ब्रहमगुप्त द्वारा विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अवलम्ब से ब्रहमसिद्धान्त की रचना, हेम्राद्रि में समस्त पुराणों के वचन संग्रहीत हुए हैं। इन प्रमाणों से अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि विल्सन, दक्ष यादत्त, अक्षय कुमार तथा दयानन्दी लोगों का मत ग्राहय नहीं है। जबकि अष्टादश पुराण शंकराचार्य के समय में विद्यमान थे तथा बाणभट्ट के पूर्व के हैं। विष्णु पुराण में अठारह पुराणों का नाम विद्यमान है तब पुराणों को आधुनिक समझना सर्वथा भ्रम की बात है। जगन्नाथ-माहात्म्य होने से क्या थोड़े दिनों का पुराण गिना जायेगा कभी नहीं, यह मन्दिर चाहे अर्वाचीन हो यह दूसरी बात है परन्तु क्या वहाँ भगवत्पूजन आधुनिक है? नहीं, ऋक्परिशिष्ट में जगन्नाथजी का वर्णन आता है - "यत्र देवो जगन्नाथः परं पारं महोदधेः । बलभद्रः सुभद्रा च तत्र माममृतं कृधि ।। और "आयावाचो म्लेच्छवाचः : मनुः" का वर्णन होने से यह ग्रन्थ आधुनिक नहीं हो सकते।

---

1. पुराणेषु वायु प्रलपितम् - कादम्बरी ।।

रहा तंत्रशास्त्र का उल्लेख सो मारण मोहनादि का मूल अथर्ववेद में विद्यमान है। जैन-बौद्धादि का निरूपण जहाँ कहीं किसी पुराण में आया है वहाँ इस प्रकार से नहीं लिखा है कि, इसके उपरान्त इस प्रकार जैन धर्म चला किन्तु लक्षणपरक जैन धर्म, बौद्ध धर्म कलि में प्रवृत्त होगा इस प्रकार का उल्लेख है।

संस्कृत आलोचक मुइर साहब कहते हैं कि इतिहास पुराण की गणना प्राचीनतम संस्कृत पुस्तक में नहीं की जा सकती। इससे पहले भी अनेक गाथाएं विद्यमान थी। पूर्व में उद्धृत अनेक प्रमाणों से यह बात भी खण्डित हो जाती है। कुमारिलभट्ट ने पुराणों की प्रामाणिकता स्वीकार की है। भगवान् शंकराचार्य ने इस सम्बन्ध में इस प्रकार आलोचना की है -

"इतिहास पुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेण सम्भवन्मंत्रार्थवादमूलत्वात् प्रभवति देवताविग्रहादि साधयितुं प्रत्यक्षामूलमपि सम्भवति भवति हि अस्माकं अप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षं तथा च व्यासादयो देवताभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते। योगोप्यणिमाद्यैश्वर्यप्राप्तिफलकःस्मर्यमाणो न शक्यते साहसमात्रेण प्रत्याख्यातुं श्रुतिश्च योगमाहात्म्यं प्रत्याख्यापयति पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरमिति ऋषीणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनां सामर्थ्यं नास्मदीयेन सामर्थ्येनोपमातुं युक्तं तस्मात् समूलमितिहासपुराणमिति ।"[1]

यह भाष्यकार शंकर 700 ई0 से बाद के नहीं हो सकते। प्रसिद्ध विद्वान् सेष्टसाहब का कथन है - "Shankaracharya appear 'in india about sixty year' after Gotam Budh death."[2]

---

1. शारीरक भाष्य - 913 / 33
2. ईंशूटेडिक हेनरम् - पृष्ठ 149

जब शंकरस्वामी पुराणों के प्रमाण की बात करते हैं तो अँग्रेज विद्वान् विल्सन, मुद्दरसाब, उनके अनुयायीदत्त महाशय तथा दयानन्दी आर्यसमाजी लेखराम आदि का पुराणों को आधुनिक कहना किसी भी दृष्टि से समीचीन नहीं जान पड़ता है।

इस प्रकार अनेक प्रमाणों के अनुशीलन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पुराण का अस्तित्व विशेष विद्या के रूप में वैदिक काल में भी था। ईसवी से छः सौ वर्ष पूर्व वर्तमान काल में उपलब्ध होने वाले पुराणों के समान ही पुराण ग्रन्थों का निर्माण हो चुका था किन्तु उनकी मूल प्रति या पाण्डुलिपि अब उपलब्ध नहीं। पुराण किसी एक समय या शताब्दी की रचना नहीं। समय-समय पर उसमें नये-नये अध्याय जोड़े गये थे। गुप्तकाल तक वे अपने वर्तमान रूप को प्राप्त कर चुके थे।

4. पुराण-भेद :

पुराणों की संख्या के विषय में मतभेद नही है। उनकी संख्या अठारह है[1] महापुराण 18 है तथा उपपुराण भी 18 ही माने जाते हैं। इन उपपुराणों के नाम गरूड़ पुराण के आधार पर हैं।

मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, वराह, वामन, विष्णु, वायु, अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरूड़, कूर्म तथा स्कन्द - पुराण। पद्म - पुराण में विष्णु विषयक पुराण सत्त्व, ब्रह्मा विषयक राजस् तथा शिव विषयक तामस् रूप में विभाजित हैं।

---

1. मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्ट्यम 7
अनापलिंगकूस्कानि, पुराणानि प्रचक्षते ।।

1. महापुराण - सामान्य परिचय

1. मत्स्य-पुराण :

जिस पुराण में कल्प के आदि में जनार्दन भगवान ने मत्स्य रूप से श्रुत्यर्थ और नरसिंह वर्णनप्रसंग में सातकल्प का विषय वर्णन किया गया है, वही 14000 श्लोकों वाला मत्स्य पुराण है।[1] यह ऐतिहासिक महत्व का पुराण है। इसमें मुख्यतया भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार की कथा वर्णित है, साथ ही पुराणानुक्रम कथन, ययाति और शर्मिष्ठा संगम, आन्ध्र राजाओं की प्रामाणिक वंशावली, दक्षिण भारतीय मूर्तिकला, वास्तुकला, स्थापत्य कला, पर्वों, तीर्थों, वैष्णव और शैव विधियों का सुन्दर विवेचन किया गया है।

2. मार्कण्डेय-पुराण :

जो ग्रन्थ धर्माधर्म विचारज्ञ पक्षियों के प्रसंग में आरम्भ होकर धार्मिक मुनिगण द्वारा कहा गया है और सब विषय मुनि के प्रश्नानुसार मार्कण्डेय द्वारा कहे गये हैं वही 9000 श्लोक युक्त मार्कण्डेय पुराण है।[2] इसमें इन्द्र, ब्रहमा, अग्नि और सूर्य को मुख्य देव माना गया है। देवी दुर्गा की स्तुति में वर्णित देवी माहात्म्य (दुर्गा सप्तशती) अतिप्रसिद्ध है। इसमें द्रौपदी के पाँच पति होने का कारण, हरिश्चन्द्र की कथा, मदालसा का वियोग, महाभारत की अनेक शंकाओं का समाधान, ब्रहमविद्या, ईश्वर भक्ति, पतिव्रत धर्म, स्त्रियों के सुधार के उपाय आदि विषय वर्णित हैं।

---

1. श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्यर्थं जनार्दनः ।
   मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहस्य वर्णनम् ।।
   अधिकृत्याब्रवीत्. सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः ।
   तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश ।। मत्स्य पुराण - अ0 53/50 ।।

2. यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्म्मान् धर्मविचारणा ।
   व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्म्मचारिभिः ।।
   मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।
   पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ।। मत्स्यपुराण - अ0 53/26 ।।

3. **भविष्य-पुराण :**

जिस ग्रन्थ में चतुर्मुख ब्रह्मा ने सूर्य का माहात्म्य वर्णन करके अघोरकल्पवृतान्त प्रसंग में जगत की स्थिति और भूतग्राम के लक्षण वर्णन किए हैं जिसमें अधिकांश ही भविष्य चरित वर्णित और 14500 श्लोक युक्त है वह भविष्य-पुराण के नाम से विख्यात है।[1] भविष्योक्ति वर्णित होने से भविष्य-पुराण नाम हुआ।[2] इसमें चरित्र के आधार पर वर्ण व्यवस्था, देवता का लक्षण, भारत का मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास की झलक, सावित्री माहात्म्य, कृष्ण-साम्ब संवाद, विवाह विधि वर्णित है।

4. **भागवत-पुराण :**

जिस ग्रन्थ में गायत्री का अवलम्बन करके विस्तार से धर्म तत्त्व वर्णित हुआ है और जो वृत्रासुर वध वृतान्तपूर्ण है वही भागवत नाम से प्रसिद्ध है। सारस्वत कल्प मे जिन समस्त मनुष्य देवों की कथा है, उस वृतान्त से युक्त ग्रन्थ ही मानव समाज में भागवत नाम से विख्यात है। इसकी श्लोक संख्या 18000 है।[3] 12 स्कन्धों वाला यह ग्रन्थ वैष्णवों को सबसे प्रिय है। यह समस्त श्रुतियों का सार, महाभारत का तात्पर्य निर्णायक तथा ब्रह्मसूत्रों का भाष्य है। इसकी अनेक टीकायें - चित्सुखाचार्य कृत चित्सुखी, श्रीधरकृत श्रीधरी, सुदर्शनसूरि की शुकपक्षीया, जीवगोस्वामी की क्रमसन्दर्भ, विश्वनाथ चक्रवर्ती की सारार्थदर्शिनी है।

---

1. यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः ।
   अघोरकल्पवृतान्तप्रसंगेन जगत् स्थितम् ।।
   मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम् ।
   चतुर्दशसहस्राणि तथा पंचशतानि च ।।
   भविष्य चरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते ।। मत्स्य-पुराण - अ0 53/31 ।।

2. भविष्योक्ते भविष्यकम् ।। शिव-पुराण - उत्तरखण्ड ।।

3. यत्राधिकृत्य गायत्री वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
   वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ।।
   सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामराः ।
   तद्वृतान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ।।
   अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ।। मत्स्य-पुराण - अध्याय 53 ।।

भागवत की यह विशाल व्याख्या सम्पत्ति भक्तिशास्त्र के सिद्धान्तों को समझने के लिए एक भव्य ग्रन्थ राशि प्रस्तुत करती है।[1] इसमें कृष्ण के अवतार माना गया है। इनकी रासलीला तथा क्रीड़ाओं का मनोरम वर्णन है। भागवत का सबसे अधिक सुन्दर अंश वह है जहाँ गोपियों की कृष्ण के प्रति ललित प्रेमलीला का रुचिर चित्रण है। वेणुगीत[2], गोपीगीत[3], युगलगीत[4], महिषीगीत[5] आदि भागवत के कुछ ऐसे ही सुललित प्रसंग हैं जिसे आलोचक 'भागवत-रस' के महनीय नाम से पुकारते हैं। कृष्ण के विरह में व्याकुल महिषीजनों का यह उपालम्भ कितना मीठा और तलस्पर्शी है - "हे कुररि! संसार में सब ओर सन्नाटा छाया हुआ है। इस समय स्वयं भगवान् अपना अखण्ड बोध छिपाकर सो रहे हैं, परन्तु तुझे नींद नहीं? सखी, कहीं कमलनयन भगवान् के मधुरहास्य और लीलाभरी चितवन से तेरा हृदय भी हमारी ही तरह विंध तो नहीं गया है?[6]

इसी शब्द माधुरी और भावोत्कर्ष के कारण यह ग्रन्थ शताब्दियों से भक्ति प्रवण भक्तों तथा कवियों को समभावेन उत्साह, स्फूर्ति तथा प्रेरणा देता चला आ रहा है और आज भी इसकी उपजीव्यता किसी अंश में कम नहीं इसे विद्वानों की योग्यता का निकष भी माना गया है - 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'।

---

1. बलदेव उपाध्याय - भागवत सम्प्रदाय ।
2. भागवत - 10/2।
3. वही - 10/3।
4. वही - 10/35
5. वही - 10/90
6. कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
   स्वपिति जगति राञ्यामीश्वरो गुप्तबोधः ।
   वयमिव सखि कच्चिद् गाढ़निर्भिन्नचेता
   नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ।। भागवत - 10/90/15 ।।

5. **ब्रह्म-पुराण :**

पूर्व काल में ब्रह्माजी ने मारीचि से यह पुराण कहा था वहीं यह ब्राह्म नाम से प्रसिद्ध है।[1] इसकी श्लोक संख्या 13000 है। वेद-व्यास ने सर्वप्रथम इसी पुराण की रचना की है। धर्मसूत्र आदि से भी इसका समय बहुत प्राचीन है। इसी से इसमें बहुत से प्राचीन वैदिक आख्यान और बहुत से आर्ष प्रयोग प्राचीन संस्कृत के हैं। इसीलिए इसे आदि पुराण भी कहते हैं। इसमें दक्ष जन्म और दक्ष की सृष्टि, धन्वन्तरि-जन्म, सूर्यपूजामाहात्म्य, शिवपार्वती संवाद, शिव-पार्वती विवाह, सूर्य-शिव की एकरूपता, तारकासुर, वामनावतार, पुरूरवा,- उर्वशी संवाद शुनःशेप का आख्यान, उर्वशी का मूर्ख ब्राह्मण से संवाद आदि प्रसंग वर्णित हैं।

6. **ब्रह्माण्ड-पुराण :**

ब्रह्माण्ड के चरित अर्थात् ब्रह्माण्ड के भूगोल विवरण से वर्णित होने के कारण यह ब्रह्माण्ड पुराण नाम से प्रसिद्ध है - ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद् ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् ।।[2]

मत्स्य-पुराण[3] के मत में ब्रह्माण्ड का माहात्म्य अवलम्बन करके जो पुराण कहा गया है, वही 12200 श्लोक युक्त ब्रह्माण्ड है। जिस पुराण में ब्रह्माकर्तृक भविष्यकल्प वृतान्त विस्तृत रूप से विवृत हुआ है वही ब्रह्माण्ड पुराण है।

---

1. ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्र मरीचये ।
   ब्राह्मं त्रिदश साहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते ।। मत्स्य पुराण - 53/13 ।।
2. शिव-पुराण - उत्तरखण्ड
3. ब्रह्माब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः ।
   तच्च द्वादश साहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम् ।।
   भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः ।
   तद्ब्रह्माण्डपुराणंच ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।। मत्स्य-पुराण - 53-54-55 ।।

ब्रह्माण्ड पुराण में द्वादश वार्षिक यज्ञ निरूपण, कुमारोत्पत्ति, कैलासवर्णन, गंगावतरण, कलियुग - वर्णन है। विशेषकर तीर्थ - माहात्म्य और उपाख्यानों का संग्रह है। इसके सात खण्डों में अध्यात्म-रामायण दी गयी है।

7. **ब्रह्मवैवर्त-पुराण :**

यहाँ सृष्टि को ब्रह्म का विवर्त माना है। अतः इसका नाम ब्रह्मवैवर्त है। शिव पुराण के उत्तरखण्ड में लिखा है कि ब्रहमा के विवर्त प्रसंग के कारण इस पुराण को ब्रहमवैवर्त पुराण कहते है - विवर्तनाद्ब्रह्मवास्तु - ब्रह्मवैवर्तमुच्यते। मत्स्य - पुराण में कुछ भिन्न वृत्त मिलता है - रथन्तरकल्प के वृतान्त प्रसंग में जिस ग्रन्थ में सावर्णि ने नारद को कृष्णमाहात्म्य और नारद का चरित विस्तृत भाव से वर्णन किया है वही अठारह हजार श्लोकों वाला ब्रह्मवैवर्त पुराण है।[1] इसमें चार खण्ड हैं - ब्रह्म-खण्ड, प्रकृति- खण्ड, गणेश- खण्ड और कृष्ण - जन्मखण्ड। इसमें श्रीकृष्ण का शंकर को वरदान, ब्रह्म-नारद सम्वाद, भगीरथ का गंगा को लाना, शापग्रस्त परीक्षित के परलोक गमन के पीछे जनमेजय द्वारा नागयज्ञ, हर-पार्वती सम्भोग भंग, शंकर के समीप में पार्वती का खेद, श्रीकृष्ण के प्रति राधा का अभिशाप, मदन भस्म वृतान्त, महादेव की विवाह यात्रा, दुर्वासा का दर्पभंग, नहुष को सर्पत्व की प्राप्ति, राधा और उद्धव का सम्वाद, राधा और यशोदा का सम्वाद आदि विषय वर्णित हैं।

---

1. रथन्तरस्य कल्पस्य कृत्तान्तमधिकृत्य च ।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ।।
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः ।
तदष्यदश साहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ।। मत्स्य पुराण - 53/10/11 ।।

8. **वराह-पुराण :**

जिस ग्रन्थ में मानव-कल्प प्रसंग में विष्णु द्वारा पृथ्वी के समक्ष में महावाराह का माहात्म्य विवृत हुआ है। वह 24000 श्लोक युक्त पुराण वाराह नाम से ख्यात है।[1] इसमे मुख्य रूप से विष्णु के वराहावतार का उल्लेख है, साथ-साथ हर-पार्वती विवाह, गणेश के प्रति महादेव का शाप, कार्तिकेय- जन्म, अन्धकासुर-वध, वृत्रासुर-वध, महिषासुर-वध, नचिकेता का उपाख्यान तथा मथुरा-माहात्म्य वर्णित है।

9. **वामन-पुराण :**

जिस पुराण में चतुर्मुख ब्रह्माजी ने त्रिविक्रम वामन का माहात्म्य अवलम्बन करके त्रिवर्ग-धर्म, अर्थ, काम का कीर्तन किया था और बाद में शिव कल्प वर्णित हुआ है, वही दस हजार श्लोक युक्त वामन पुराण है।[2] इसमें मुख्यतया विष्णु के वामनावतार का वर्णन है, साथ-साथ शिव का कालरूप वर्णन, प्रह्लाद वर, देवासुर संग्राम, महिषासुर-वध, चण्डमुण्ड-वध, शुंभ-निशुंभ वध, कार्तिकेय-जन्म, अन्धक-पराजय, प्रह्लाद का राजा बलि को शिक्षा देना, पुरूरवा का उपाख्यान भी वर्णित है।

---

1. महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।
   विष्णुनाभिहितं क्षोण्यैतद्वराहमिहोच्यते ।।
   मानवस्य प्रसंगेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः ।
   चतुर्विंशत् सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ।। मत्स्य पुराण - 53/17 ।।

2. त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः ।
   त्रिवर्गमभ्यधात्तच्च वामनं परिकीर्तितम् ।
   पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम् ।। मत्स्य पुराण - 53/14 ।।

10. विष्णु-पुराण :

जिस पुराण में पराशर ने वाराहकल्पवृक्षवृतान्त आरम्भ करके सम्पूर्ण धर्मकथा प्रकाशित की वही 23000 श्लोकों वाला विष्णु या वैष्णव - पुराण है।[1] यह वैष्णवों का प्रिय पुराण है। यही एक पुराण है जिसमें पुराणों के पंचलक्षण घटित होते है। शंकराचार्य ने केवल इसी पुराण से उद्धरण दिए हैं। प्रामाणिकता एवं प्राचीनता की द्रृष्टि से यह सबसे प्रमुख पुराण है। इसमें विष्णु को अवतार मानकर उनकी उपासना का वर्णन है, साथ-साथ प्रह्लाद के प्रति हिरण्यकशिपु की उक्ति और प्रह्लाद का विष्णुस्तव, भगवान का आविर्भाव, हिरण्यकशिपु वध, विष्णु की चार प्रकार की विभूतियों का वर्णन तथा मौर्य राजाओं की प्रामाणिक वंशावली भी दी गयी है। इसका साहित्यिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक सभी द्रृष्टि से महत्व है।

11. वायु-पुराण :

जिसमें श्वेतकल्प प्रसंग में वायु ने धर्म्मकथा और रूद्रमाहात्म्य का वर्णन किया है, वही 24000 श्लोकों वाला वायु पुराण है।[2] प्रायः विद्वान् इसे शिव पुराण कहते हैं किन्तु कुछ मनीषी दोनों को पृथक् मानते हैं। इसकी छः संहितायें - ज्ञान, विधेश्वर, कैलास, सनत्कुमार, वायवीय, धम्म मिलती हैं। इसमें शिव का तप, मदन-भस्म पार्वती-तपस्या, काशी-माहात्म्य का वर्णन है।

---

1. वराहकल्पवृतान्तमधिकृत्य पराशरः ।
   यत्प्राह धर्म्मानखिलांस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः ।।
   त्रयोविंशति साहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ।। मत्स्य पुराण - 53/17 ।।

2. श्वेतकल्पप्रसंगेन धर्म्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
   यत्र तद्वायवीयं स्याद् रूद्रमाहात्म्यसंयुतम् ।।
   चतुर्विंशतिसहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।। मत्स्य पुराण - 53/18 ।।

12. **अग्नि-पुराण :**

ईशानकल्प के वृतान्त प्रसंग में अग्नि ने वशिष्ठ के निकट जो पुराण प्रकाशित किया वही 16000 श्लोक युक्त और सर्वयज्ञफलदाता अग्नि-पुराण है।[1] उपयोगिता की दृष्टि से अतिमहत्वपूर्ण होने के कारण इसे विश्व कोश कहा जाता है। यह महाभारत के तुल्य संकलन ग्रन्थ है। इसमें उस समय की प्रचलित सभी विद्याओं का संकलन है। इसके लेखक का प्रयत्न रहा कि इसमें सभी विषयों का समावेश हो जाये इसीलिए काव्यशास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष, कोषग्रन्थ, धनुर्वेद गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, स्थापत्यकला, नाट्यकला, वैदिक कर्मकाण्ड आदि विषय सांगोपांग वर्णित है।

13. **नारद-पुराण :**

शिव पुराण के उत्तरखण्ड में कहा गया है - नारदोक्तं पुराणन्तु नारदीयं प्रचक्षते - अर्थात् नारद द्वारा कहा गया पुराण ही नारदीय पुराण है। मत्स्य पुराण[2] में उस ग्रन्थ को नारद पुराण कहा गया जिसमें नारद ने वृहत्कल्पप्रसंग में अनेक धर्मकथा कही है तथा जो 25000 श्लोकों वाला है। इसमें अनेक पुराणों की अनुक्रमणिका, हरिभक्ति, भगीरथ का गंगानयन-वृतान्त, काशी-गया-प्रयाग माहात्म्य, लोक मोहनार्थ ब्रहमा द्वारा मोहिनी स्त्री की उत्पत्ति, समाधि एवं ईश्वर भक्ति से मोक्ष, उत्सव, पर्व आदि का वर्णन है।

---

1. यत्तदीशानकं कल्पं वृतान्तमधिकृत्य च ।
   वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत् प्रचक्षते ।।
   तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ।। मत्स्य पुराण - अध्याय 53।।

2. यत्राह नारदो धर्म्मान् बृहत्कल्पाश्रयानिह ।
   पञ्चविंशत् सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।। मत्स्य पुराण - अध्याय 53 ।।

14. **पद्म-पुराण :**

जिस ग्रन्थ में हिरण्यमय पद्म से जगत की उत्पत्ति का वृतान्त वर्णित है और जो 55000 श्लोकों वाला है, वही पद्म पुराण है।[1] इसमें पाँच खण्ड: सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, पाताल और उत्तरखण्ड हैं। केवल इसी पुराण में राधा को कृष्ण की पत्नी के रूप में वर्णित किया गया है। इसमें माता-पिता की सेवा, नहुष-वृतान्त, समुद्र-मन्थन, राम का राज्याभिषेक, आचार्य शंकर का प्रच्छन्न बौद्ध होना वर्णित है।

15. **लिंग-पुराण :**

जिस ग्रन्थ में देवमहेश्वर ने अग्निलिंगमध्यस्थ होकर अग्निकल्पान्त में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षार्थ कथा प्रकाश की थी। एकादश सहस्रयुक्त वह पुराण ही ब्रहमा द्वारा लिंग नाम से वर्णित हुआ।[2] इसमें शिव के 28 अवतारों, लिंगार्चन विधि कथन, वशिष्ठ का पुत्र शोक, कृष्णावतार, त्रिपुरवृतान्त, लिंग-पूजा माहात्म्य विशेषत: वर्णित है।

16. **गरूड़-पुराण :**

विष्णु ने गरूड़ कल्प में गरूड़ के उद्भव प्रसंग में विश्वाण्ड से आरम्भ करके जो पुराण वर्णन किया है उसका नाम गारूड़ है। यह 18000 श्लोकों वाला है।[3] इसमें मृत्युंजय की पूजा, श्राद्ध-तर्पण विधि, पातिव्रत-माहात्म्य, नाना रोगों की औषध, नरक-वर्णन, मृत के निमित्त अनुताप और उसकी मुक्ति का उपाय वर्णित है।

---

1. एतदेव यदा पद्मं ह्यभूत् हैरण्यमयं जगत् ।
   तद् वृतान्ता अयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।।
   पाद्मं तत्पंचपंचाशत् सहस्राणीह पठ्यते ।। मत्स्य पुराण - अध्याय 53 ।।
2. यत्राग्निलिंगमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः ।
   धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च ।।
   कल्पान्तं लिंगमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम् ।
   तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति ।। मत्स्य पुराण - अध्याय 53 ।।
3. यदा च गारूड़े कल्पे विश्वाण्डाद् गरूड़ोद्भवम् ।
   अधिकृत्या ब्रवीत् विष्णुर्गारूड़ं तदिहोच्यते ।।
   तदष्टादशकं चैव सहस्राणीह पठ्यते ।। मत्स्य पुराण - अध्याय 53/56 ।।

17. **कूर्म-पुराण :**

जिस पुराण में कूर्म-रूपी जनार्दन ने रसातल में धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष का माहात्म्य इन्द्र धुनष के प्रसंग में इन्द्र के निकट और ऋषियों के निकट वर्णन किया था और जिसमें लक्ष्मीकल्प का विषय वर्णित हुआ है वही अठारह सहस्र श्लोक युक्त कूर्म पुराण है।[1] इसमें विष्णु के कूर्मावतार, ब्रह्मचारी का धर्म, श्रीकृष्ण को रूद्र दर्शन, माघमास में प्रयाग का फल, ज्ञान प्राप्ति के लिए कर्तव्य-पालन और समाधि को साधन बताना आदि वर्णित है। इसमें दो गीता - ईश्वर, व्यास भी है।

18. **स्कन्द-पुराण :**

जिस पुराण में षडानन (स्कन्द) ने तत्पुरूष कल्प प्रसंग में अनेक चरित, उपाख्यान तथा माहेश्वर निर्दिष्ट धर्म प्रकाश किए है। वही मर्त्यलोक में 81100 श्लोकों वाला स्कन्द पुराण नाम से विख्यात हुआ।[2] यह सबसे विशालकाय पुराण है। इसकी छः संहितायें - सनत्कुमार, सूत, शंकर, वैष्णव, ब्राह्म, सौर तथा सात खण्ड - माहेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, काशी, अवन्ती, नागर, प्रभास है। इसमें मुख्यतया शिवभक्ति का वर्णन है। साथ-साथ भारत के सभी तीर्थो, स्त्री लक्षण, सत्यनारायण की कथा, विन्ध्यपर्वत का पतन, शिव-समागम वर्णन, इन्द्र-बृहस्पति विरोध, कालनेमिवध, पार्वती-शिव की घूतक्रीड़ा, शिव की पराजय, ऊँ का वर्णन है।

---

1. यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले ।
   माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः ।।
   इन्द्रधुम्नप्रसंगेन ऋषिश्यः शक्रसन्निधौ ।
   अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषगिकम् ।। मत्स्य पुराण - अध्याय 53 ।।

2. यत्र माहेश्वरान् धर्म्मानधिकृत्य च षणमुखः ।
   कल्पेतत्पुरूषेवृत्तं चरितैरूपबृंहितम् ।।
   स्कान्दं नाम पुराणं तदेकाशीति निगद्यते ।
   सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ।। मत्स्य पुराण - अध्याय 53 ।।

2. उप पुराण - नाम निर्देश[1]

1. सनत्कुमार पुराण
2. नारसिंह पुराण
3. स्कान्द पुराण
4. शिव-धर्म पुराण
5. आश्चर्य पुराण
6. नारदीम-पुराण
7. कापिल पुराण
8. वामन पुराण
9. औशनस्-पुराण
10. ब्रह्माण्ड-पुराण
11. वारूण पुराण
12. कालिका पुराण
13. माहेश्वर पुराण
14. साम्ब पुराण
15. सौर पुराण
16. पाराशर पुराण
17. मारीच पुराण
18. भार्गव पुराण

यद्यपि इनके नाम संख्या महापुराण एवं उपपुराण में गणना के विषय में सभी विद्वान् एकमत नहीं किन्तु प्रायः सुधीवर्ग इसी वर्गीकरण को स्वीकार करता है। शायद इसीलिए देवीभागवत में स्कान्द, वामन, ब्रह्माण्ड, मारीच और भार्गव के स्थान पर क्रमशः शिव, मानव, आदित्य, भागवत और वाशिष्ठ नाम दिए गए हैं।

---

1. गरूड़ पुराण

तृतीय अध्याय पुराणों का प्रतिपाद्य विषय :

यद्यपि पुराणों में सृष्टि से लेकर प्रलय तक, लोक से लेकर परलोक तक भौतिक आध्यात्मिक सभी विषय वर्णित हैं किन्तु कुछ विषय मुख्य हैं जो प्रायः सभी पुराणों के वर्ण्य विषय हैं, उनकी सूची निम्नलिखित है[1] -

1. किसी देवी या देवता की उपासना। उसी को सबसे बड़ी शक्ति मानना तथा अन्य देवताओं से भी बड़ा बताना।
2. ब्रह्मा, विष्णु, महेश - इन तीनों देव समूहों में किसी एक देव को इष्ट देव मानना और उसी का सांगोपांग वर्णन करना।
3. सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, पुनः सृष्टि, वंश, मन्वन्तर का वर्णन।
4. देवों, ऋषियों और महर्षियों की वंशावली तथा उनका जीवनवृत्त।
5. प्रत्येक मनु का नाम, समय तथा उसके समय की प्रमुख घटनायें।
6. नन्द, मौर्य, शुंग, आन्ध्र और गुप्त आदि सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन ।
7. उत्सवों, तीर्थो, तीर्थयात्राओं तथा भौगोलिक स्थानों का मनोरम निरूपण एवं माहात्म्य वर्णन ।
8. व्रत, जप, उपवास, प्रार्थना, उपासना एवं विविध इष्टियों का अनुष्ठान सहित वर्णन ।
9. अवतारवाद, मूर्ति पूजा, साम्प्रदायिकता एवं देवी-देवताओं में अतिशय श्रद्धा की स्थापना ।
10. सगुणोपासना एवं भक्ति मार्ग की प्रमुखता का वर्णन ।
11. दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आचारशास्त्रीय महत्त्वपूर्ण विषयों का विश्लेषण ।
12. व्याकरण, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, शरीर विज्ञान, आयुर्वेद आदि शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विषयों से सम्बद्ध तथ्यों का संकलन ।

---

1. पुराण - विमर्श - बलदेव उपाध्याय ।।
   अष्टादश पुराणदर्पण - पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ।।

त्रिदेव की पुनर्प्रतिष्ठा

पुराणों में अनेक देवी देवताओं का उल्लेख है किन्तु उनमें पंचदेवताओं - विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश तथा सूर्य सम्मिलित हैं, की आराधना प्रधान है। इस युग में लक्ष्मी, दुर्गा आदि विभिन्न देवियों की प्रतिष्ठा हो गयी थी। इन देवताओं का वैदिक युग में महत्त्व कम था। इनकी पूर्ण प्रतिष्ठा और सम्मान पुराणकाल में जाकर ही हुआ। इन देवताओं से सम्बन्धित पृथक्-पृथक् वर्ग भी हो गये, जो हिन्दू धर्म के अन्तर्गत स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुए और बाद में इनमें उपसम्प्रदाय भी बन गये। विष्णु से वैष्णव धर्म, शिव से शैव धर्म, शक्ति से शाक्त धर्म और सूर्य से सौर धर्म का विकास हुआ। पुराणों में अन्य देवताओं का भी उल्लेख है, जिनमें इन्द्र वरूण मरूत, सोम, अग्नि, बृहस्पति, ब्रह्मा, प्रजापति आदि विशेष प्रख्यात हैं। इनमें अधिकांश ऐसे वैदिक देवता थे जिनका इस काल में महत्त्व कम हो चुका था। महत्त्व गिरने का यह क्रम महाकारणों के युग से ही प्रारम्भ हो चुका था जो कालान्तर में और क्षीण होने लगा। पंच देवों में तीन देवों का मान अधिक बढ़ा। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी त्रिदेवों मे विष्णु को सर्वश्रेष्ठ माना गया तथा पुराणों में यह कहा गया है कि ईश्वर ब्रह्मा के रूप में सृष्टि की सर्जना करता है, विष्णु के रूप में पालन करता है तथा शिव के रूप में संहार करता है। इस प्रकार त्रिदेवों के पारस्परिक सम्बन्ध को व्यक्त किया गया। वायु पुराण से विदित होता है कि ब्रह्मा एवं विष्णु एक दूसरे में विद्यमान होकर प्रतिष्ठित हो गये तथा सृष्टि के विभिन्न कार्यो में सम्मिलित हो गये। कालान्तर में शिव के आने से उन दोनों देवों ने उनका सत्कार किया।

विष्णु ने यह कहा मैं सनातन योनि हूँ ब्रह्मा बीज हैं तथा शिव बीजी। विष्णु तथा ब्रह्मा ने शिव की श्रेष्ठता स्वीकार की और इसी कारण शिव देवाधिदेव महादेव हो गये। इस प्रकार पृथक्-पृथक् महत्त्वशाली ब्रह्मा, विष्णु, महेश पुराणों में त्रिदेव रूप में सुस्थापित हो गये। बाणासुर संग्राम प्रसंग में भगवान् कृष्ण ने शिव से अपनी अभिन्न प्रकट की है।[1]

---

1. त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमखिलं मया ।
   मत्तो विभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर ।।

   यो हं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
   मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्त्वं ज्ञातुमिहार्हसि ।।

   अविद्यामोहितात्मानः पुरूषा भिन्नदर्शिनः ।
   वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर ।।

   विष्णु पुराण, पंचम अंश, अध्याय-33, श्लोक 47-49 ।।

व्रत एवं वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपादन

पौराणिक धर्म या साहित्य में व्रत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उपवास, दान, ब्राह्मण भोजन, भगवान की पूजा आदि अनेक प्रकार के विधान व्रत के अन्तर्गत आते हैं। कभी-कभी व्रती एकान्तवासी होकर ध्यानस्थ रहा करता है और इसकी समाप्ति पर ब्राह्मण को भोजन, दक्षिणा आदि को देकर स्वयं सन्तुष्ट होता था। "विष्णु, शिव, पार्वती, लक्ष्मी, राम, कृष्ण आदि विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्धित अनेक व्रत प्रचलित थे,"[1] जिसका अनुपालन साधक भली-भाँति करता था। पुराणों के काल में ये व्रत अधिकाधिक हो गये जो एकपक्ष में एक बार पड़ने लगे। ऐसा विश्वास था कि व्रतों के अनुपालन से शरीर और आत्मा को शुचिता की प्राप्ति होती है जिससे प्राणी को ब्रह्मलाभ होता है। कालान्तर में व्रतों के साथ याज्ञिक क्रियायें और कर्मकाण्ड जुड़ गये जिसके कारण कुछ जटिलता बढ़ गयी। किन्तु इन जटिलताओं के होते हुए भी व्रती व्यक्ति अहिंसा, सत्य, दया, दान, अनुग्रह तथा सदाचार का पालन तो करता ही था शायद यही उसके नैतिक उत्थान का मूलभूत कारण था।

पुराणों में वर्णाश्रम धर्म के निष्ठापूर्वक पालन करने की बात कही गयी। जो व्यक्ति अपने वर्ण और आश्रम सम्बन्धी कर्तव्यों का निर्वहन भली प्रकार करता है। वही प्रभु की पूजा का अधिकारी है।

---

1. ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ।
इन्द्रमिन्द्रियामाय प्रजाकामः प्रजापतीन् ।। — भाग पु0 2/3/2 ।।

देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ।
वसुकामो वसून् रूद्रान् वीर्यकामो य वीर्यवान् ।। — वही 2/3/3 ।।

अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ।
विश्वान्देवान् राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ।। वही0 2/3/4 ।।

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ।
प्रतिष्ठाकामः पुरूषो रोदसी लोकमातरौ ।। वही0 2/3/5 ।।

रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सरउर्वशीम् ।
आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत् परमेष्ठिनम् ।। वही0 2/3/6 ।।

यज्ञं यजेद् यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ।
विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थमुमां सतीम् ।। वही0 2/3/7 ।।

धर्मार्थमुत्तमश्लोकं तन्तुकामः पितॄन् यजेत् ।
रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरूद्गणान् ।। वही0 2/3/8 ।।

राज्यकामो मनून देवान् निऋतिं त्वभिचरन् नरः ।
कामकामो यजेत् सोममकामः पुरूषं पुमान् ।। वही0 2/3/9 ।।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकामो उदारधी ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरूषं परम् ।। वही0 2/3/10

कूर्मपुराण[1], विष्णु पुराण[2] तथा श्रीमद्भागवतपुराण[3] में वर्णाश्रम धर्म का भलीभाँति प्रतिपादन है। मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्म ज्ञान के साथ वेदविहित, स्मृतिप्रोक्त पुराणसम्मत वर्णाश्रमधर्म का पालन करना चाहिए जो व्यक्ति इसका पालन नहीं करता उसे यमलोक की यातना सहनी पड़ती है।

---

1. यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः ।।
   अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्माणि द्विजोत्तमाः ।
   दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः ।।
   दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते ।
   शुश्रूषा वैइति द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम् ।।

   कूर्म पुराण0 द्वितीय अध्याय - 38-40 ।।

2. दानं दद्याद्यजेद्देवान्यज्ञैस्स्वाध्यायतत्परः ।
   नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ।।
   वृत्यर्थं याजयेच्चान्यानन्यानध्यापयेद् तथा ।
   कुर्यात्प्रतिग्रहादानं शुक्लार्थान्न्यायतो द्विजः ।।
   सर्वभूतहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विजः ।
   मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ।।
   ग्राव्णि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद् द्विजः ।
   ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यतेचास्य पार्थिव ।।
   दानादि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि वा ।
   यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीता च पार्थिव : ।।
   शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका ।
   तत्रापि प्रथमः कल्पः पृथिवी परिपालनम् ।।

   विष्णु-पुराण, तृतीय अंश, अध्याय आठ, 22-25, 26-27 ।।

पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर ।
वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः ।।
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते ।
नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च कर्मणाम् ।।
द्विजाति संश्रितं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम् ।
क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारूद्‌भवेन वा ।।
शूद्रस्य सन्नतिशशौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो हयस्तेयं सत्संगो विप्ररक्षणम् ।।

विष्णु पुराण0 तृतीय अंश, अध्याय आठ, 30-33 ।।

3. संस्कारा यद्विच्छिन्नाः स द्विजोऽजोजगादयम् ।
इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ।
जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ।।
विप्रस्याध्ययनादीनि तथा शिष्टपरिग्रहः ।
राज्ञोवृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वा करादिभिः ।।
वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ।
शूद्रस्यद्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ।।

श्रीमद्भाग0 7/11/13-15 ।।

विष्णु पुराण में आपद्धर्म की भी चर्चा की गयी है। जिसमें ब्राह्मण को क्षत्रिय तथा वैश्य की वृत्ति का अवलम्बन करना चाहिए तथा क्षत्रिय को केवल वैश्यवृत्ति का। लेकिन शूद्रवृत्ति का आश्रय न लेने की सलाह दोनों वर्णो को दी गयी।

क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यं कर्म तथा पदि ।
राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्मन चैतयोः ।।

विष्णु पुराण0 3/8/39 ।।

आश्रम-व्यवस्था व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व के उत्थान का महत्त्वपूर्ण आधार थी। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन इसी के माध्यम से समग्रता एवं गतिशीलता प्राप्त करता था। मानव जीवन की चार अवस्थायें अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से निर्मित की गयी थी। मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय चिन्तन से सन्नद्ध होकर व्यवस्थाकारों ने जीवन को व्यवहारिकता के धरातल पर चार भागों में विभाजित किया - बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था। इन्हीं अवस्थाओं की अभिव्यंजना आश्रमों में ध्वनित होती है, बाल्यावस्था ब्रह्मचर्य के लिए, युवावस्था गृहस्थ के लिए, प्रौढ़ावस्था वानप्रस्थ के लिए तथा वृद्धावस्था सन्यास के लिए। पुरूषार्थ - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, की अवधारणा भी इन्हीं आश्रमों के माध्यम से स्थापित की गयी। मूलतः हिन्दू चिन्तकों ने मानव जीवन को 100 वर्ष का माना और उसे 25-25 वर्षो के चार बराबर भागों में बॉटकर आश्रम की व्यवस्था की। ये चारों भाग ही चार आश्रम थे - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, जो क्रमशः ज्ञान प्राप्ति, सांसारिक जीवन का उपभोग, संसार त्यागकर ईश्वर की आराधना तथा अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हेतु तपश्चर्या की ओर इंगित करते हैं। इस आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत जीवन यात्रा करता हुआ पथिक परम सत्य तक पहुँचने का प्रयास करता है। उसका अन्तिम उद्देश्य विशुद्ध सत्य की प्राप्ति था यही विशुद्ध सत्य परम ब्रह्म था और यही व्यक्ति का मोक्ष भी। प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ0 के0एम0 कपाड़िया ने स्वीकारा है कि "पुरूषार्थ के सिद्धान्त की वास्तविक अभिव्यक्ति आश्रमों की हिन्दू योजना में विवृत्त है।"[1]

---

1. के0एम0 कपाड़िया, मैरेज एण्ड फैमिली इन इण्डिया, पृष्ठ 27

यद्यपि आश्रम व्यवस्था का उद्भव उत्तरवैदिक युग में हो चुका था लेकिन पूर्ण प्रतिष्ठा तो सूत्रकाल में मानी जाती है। स्मृति युग तक आकर आश्रम व्यवस्था का पूर्ण विकास हो गया। महाभारत[1] और पुराणों[2] में आश्रम व्यवस्था का उद्भव ब्रह्मा से मानकर इसे देवी अभिव्यक्ति दी गयी ताकि लोगों की रुचि इसे स्वीकार करने में हो अस्वीकार करने में न हो। विष्णु पुराण[3] में इन आश्रमों का पालन करने से विशिष्ट लोक की प्राप्ति बतायी गयी है। इसका पालन न करने वाले यातना के भागी होते हैं।[4] वायु पुराण में तो कहा गया कि उन्हें नरक की प्राप्ति होती है।[5] विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानपप्रस्थी तथा परिव्राट् चार आश्रमी थे, पाँचवाँ कोई नहीं।[6]

---

1. ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् ।
   गृहस्थो ब्रह्मचारित्वं सभिक्षुकम् ।। — महाभा0 शा0 प0 191/8 ।।

2. कुतः कर्माक्षितिं प्राहुराश्रमस्थानवासिनः ।
   ब्रह्मा तान् स्थापयामास आश्रमान्नामनामतः ।। — ब्रह्माण्ड पु0 2/7/169-71 ।।

3. वर्णानामाश्रमाणां च धर्मन्धर्मभृतां वरम् ।
   लोकांश्च सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम् ।। — विष्णु पुराण 1/6/33 ।।

4. भ्रष्टश्चाश्रमधर्मेषु ..... यातनास्थानमागताः ।। — मत्स्य पुराण 141/66-67 ।।

5. वेदाश्रमान्मुक्तचित्तः कुम्भीकानधिगच्छति ।। — वायु पुराण 83/60 ।।

6. ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वान्प्रस्थस्तथाश्रमी ।
   परिवाड् वा चतुर्थोऽत्र पंचमो नोत्पद्यते ।। — विष्णु पुराण 3/18/36 ।।

   मत्स्य पुराण में भी ब्रह्माजी से चारों आश्रमों की उत्पत्ति मानी गयी है -

   चरन्गृहस्थः कथमेति देवान् कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा ।
   वान्प्रस्थः सत्पथे सन्निविष्टो ..... ।।
   — मत्स्य पुराण - 40/1 ।।

हिन्दु समाज में मनुष्य के बौद्विक और शिक्षित जीवन के निमित्त ब्रह्मचर्य आश्रम की व्यवस्था की गयी थी। विद्या और शिक्षा की प्राप्ति इसी के पालन से होती है जिससे मनुष्य की ज्ञान गरिमा बढ़ती है। ब्रह्मचर्य से तात्पर्य केवल इन्द्रिय निग्रह ही नहीं, अपितु वेदाध्ययन भी है। विद्यार्थी के ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि प्राय: बारह वर्ष की होती थी तब तक उसकी आयु पच्चीस वर्ष की हो जाती थी। शिक्षा समाप्ति (समावर्तन) के पश्चात वह गुरू की आज्ञा प्राप्त कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। मनु ने गृहस्थाश्रम की बड़ी प्रशंसा की है। उनके मत में जैसे वायु के सहारे सभी जन्तु रहते हैं उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ के सहारे रहते है।[1] जिस प्रकार नदी नद सागर में संस्थित हो जाते थे उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ में समाहित हैं।[2] पुराणों[3] की भी मान्यता है कि सभी आश्रमों का मूल गृहस्थाश्रम है। गृहस्थ के लिए साधक की भाँति आचरण करना अनिवार्य था।[4] वस्तुत: साधक के रूप में ही क्रिया योग से ज्ञान योग की सम्भावना थी।[5] इस प्रकार इस आश्रम में कर्मयोग के ज्ञानयोग की अपेक्षा ज्यादा महत्त्व मिला।[6] धर्म के आधार पर धनोपार्जन करना चाहिए।[7]

---

1. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव: ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा: ।। — मनुस्मृति0 3/77
2. यथा नदी नदा: सर्वे सागरे यान्ति संस्थितम् ।
तथैवाश्रमिण: सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितम् ।। — मनुस्मृति 6/90
3. ब्रह्माण्ड पुराण 2/7/172-73 ।।
तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठन्ते गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ।। — विष्णु पुराण 3/9/11
पूर्व गृहस्थाश्रम: स्मृत: त्रयाणामाश्रमाणां प्रतिष्ठायोनिरेव च ।। — वायु पुराण 8/172
4. ब्रह्माण्ड पुराण 2/32/24
वायु पुराण - क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थ: साधुरूच्यते ।।
5. अयमेंव क्रियायोग: ज्ञानयोगश्च साधक: ।। — मत्स्य पुराण 52/11 ।।
6. क्रियायोग: कथं सिद्धेद् गृहस्थादिषु सर्वदा ।
ज्ञानयोग सहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ।। — वही0 258/1 ।।
7. धर्मागतं प्राप्तधनं यजेत् ... ।। — वही0 80/3 ।।

विष्णु पुराण की मान्यता है कि अगर कोई गृहस्थ किसी अतिथि को असन्तुष्ट कर लौटा देता है तो उसके सारे पुण्य समाप्त हो जाते हैं।[1] संस्कारों की निष्पन्नता में गृहस्थाश्रम का अभूतपूर्व योगदान रहा है। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सभी संस्कार गृहस्थ जीवन में ही सम्पन्न किए जाते हैं। गृहस्थाश्रम में अनेक नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक कर्त्तव्य इसी उपादेयता को सिद्ध करते हैं। वस्तुतः निष्कामकर्मयोग की साधना गृहस्थाश्रम में ही सम्भव है।

पूर्ववर्ती समस्त स्थितियों का परित्याग कर वन की ओर जाना वानप्रस्थ है। आरण्यक साहित्य की रचना वानप्रस्थियों ने की थी, उपनिषद् युग में वानप्रस्थ जीवन का प्रसार हुआ। इस आश्रम में लोगों ने अपने ज्ञान एवं विचारों का परिमार्जन किया। विष्णु पुराण की मान्यता है कि गृहस्थ जीवन के बाद जो भी व्यक्ति वानप्रस्थ नहीं अपनाता वही पापी माना जाता है।[2] इसका प्रधान उद्देश्य आध्यात्मिक उत्कर्ष तथा समस्त भौतिक स्पृहाओं से मुक्ति पाना रहा है। वानप्रस्थी शीत और ऊष्ण के सहते हुए तपश्यर्चा करता था।[3] जीवन का अन्तिम भाग संन्यास आश्रम में रखा गया यह 75 वर्ष के बाद प्रारम्भ होता था। वानप्रस्थी व्यक्ति समस्त सांसारिक मोहमाया से विरक्त हो जाता था। मोक्ष की प्राप्ति संन्यास द्वारा ही सम्भव थी। संन्यासी को पुराणों में भिक्षु[4] यति[5] तथा परिव्राट्[6] कहा गया है।

---

1. तेषां स्वागतदानादि वक्तव्यं मधुरं नृप ।
   अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
   स तत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ।। विष्णु पुराण 3/9/15 ।।
2. यस्तु संत्यज्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थो न जायते .... पापकृन्नरः।वही0 3/18/37 ।।
3. तपश्च तस्य राजेन्द्र शीतोष्णादिसहिष्णुता ।। वही0 3/9/22 ।।
4. गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथभिक्षुकः ।। वायु पुराण 59/25 ।।
5. रागिणां च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।। वही0 104/12 ।।
6. यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थो न जायते ।। विष्णु पुराण 3/18/87 ।।

पौराणिक धर्म

महाकाव्यकालीन धर्म के अनन्तर पौराणिक धर्म ही हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार में सहायक रहा है। पौराणिक धर्म में पुराणों का अद्वितीय योगदान है। वस्तुतः हिन्दू धर्म का व्यापक विकास, देश के विभिन्न भागों में उसका विस्तृत प्रसार तथा जनजीवन में उसके प्रति अनुपय आस्था पुराणों के ही योग से सम्भव हो सकी है। सरल और सुन्दर शैली में हिन्दू धर्म का जितना सर्वांगीण विवेचन पुराणों में हुआ है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। पुराण साहित्य की परम्परा अतिप्राचीन है। इसका उत्स वेदों से माना गया है। वैदिक अश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर सुनाये जाने वाले पारिप्लव-आख्यान से पुराण का उद्भव हुआ, इसलिए पुराण का उद्गम स्थान यज्ञ है। आर्य एवं आर्येतर धार्मिक मान्यतायें महाकाव्यकालीन धर्म में अभिव्यंजित होती हैं, जो पौराणिक धर्म में आकर और अधिक समन्वित हुई। इस प्रकार पुराण धर्म-आख्यान और दर्शन-वर्णन के अतिरिक्त विविध ज्ञान विचार और इतिहास के ज्ञान कोष भी हैं। पुराणों में वर्णित इतिहास की भारतीय कल्पना पश्चिमी जगत् के राजनीतिक और घटना वर्णनपरक इतिवृत्त से पूर्णतः अलग और स्वच्छन्द है। उनमें पुरूषार्थ-चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) से संवलित पूर्ववर्ती आख्यानों का रूपांकन ही नहीं बल्कि राजाओं के चरित्र-चित्रण के साथ महान् विद्वान् ऋषियों-मनीषियों के चरित्र, आख्यान तथा भविष्य में घटन वाली अद्भुत बातों का भी सन्निवेश है। इन विषयों के साथ-साथ धर्म का भी अभिरामतापूर्वक वर्णन किया गया है।

सृष्टि से लेकर प्रलय तक की घटनाओं, कथाओं एवं विवरणों को पुराणकारों ने लिपिबद्ध किया है, जिसमें धार्मिक पृष्ठभूमि पर राजवंशों के उत्थान, पतन और प्रसार का मार्मिक चित्रण है किन्तु पुराणों की अतिशयोक्ति एवं अतिरंचनापूर्ण वर्णन शैली ही इसके महत्त्व को कम करती है। मूलतः वस्तु-कथन के सम्बन्ध में भारतीय शास्त्रकारों की तीन मान्यतायें हैं - स्वभाव कथन, रूप कथन तथा अतिशयोक्ति कथन। वैज्ञानिक वर्णन तथा विश्लेषण स्वभाव कथन के अन्तर्गत आते हैं। वैदिक उक्तियाँ रूप-कथन में आती हैं जो रूपक के रूप में व्यक्त की जाती हैं। जैसे - सूर्य की सप्तरंगी किरणों की अश्व के रूप में परिकल्पना है। अतिशयोक्ति कथन पुराणों का आधार है जिसमें वस्तुओं को बढ़ा-चढ़ाकर अतिरंजनापूर्ण भाषा में वर्णित किया गया है। जैसे - इन्द्र और वृत्र के युद्ध, मेघ और अवर्षण के परस्पर संघर्ष को रूपक शैली में प्रतीक आधार पर ऋग्वेद में अनेक बार वर्णित किया है।[1] जो पुराणों में एक विशाल भूमिपाल के निजी शत्रु के विकट युद्ध के रूप में अतिशयोक्ति शैली में वर्णित है।[2] वस्तुतः घटना एवं तात्पर्य में कोई भेद नहीं है, अन्तर मात्र उक्तिकथन एवं आख्यान का है।

---

1. ऋग्वेद - 2/12/11-12
2. श्रीमद्भागवत पुराण - षष्ठ स्कन्ध, बारहवाँ अध्याय श्लोक 1-35

अवतारवाद की अवधारणा

हिन्दू धर्म में ज्ञान की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत अवतारवाद का अति विशिष्ट स्थान है। इसका मूल प्रयोजन धर्म की स्थापना तथा अधर्म का नाश है। वैदिल काल से ही अवतारवाद की अवधारणा जन्म ले चुकी थी। अवतार स्वयं विष्णु ही हैं जिनक अवतारों की कथा तो वैदिक युगीन ग्रन्थों में बहुशः प्राप्त है। वैसे मस्त्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम (तथा कृष्ण), बुद्ध और कल्कि ये दस अवतार अतिप्रसिद्ध हैं। शतपथ ब्राह्मण में जलप्लावन की कथा के साथ-साथ मस्त्यावतार का उल्लेख है।[1] प्रजापति के द्वारा जल के ऊपर कूर्म रूप में अवतार लेना ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित है।[2] विष्णु के वराह रूप का संकेत ऋग्वेद में मिलता है।[3] तैत्तिरीय संहिता एवं शतपथ ब्राह्मण में भी वराहावतार का वर्णन है।[4] वामनावतार की कथा ऋग्वेद में वर्णित है[5] जो तैत्तिरीय संहिता में बड़े विस्तार से कही गयी है।[6] रामायण में भी वर्णित है कि जब देवताओं ने अपना कष्ट भगवान् विष्णु से सुनाया तो विष्णु रामावतार लिए।[7]

---

1. शतपथ ब्राह्मण - 2/8/1/1 ।।
2. वही0 7/5/1/5, स यत् कूर्म नाम। एतद् वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रज्ञाः आसृजेत् ।। जैमिनीय ब्राह्मण - 3/272 ।।
3. ऋग्वेदं - 8/7/10 ।।
4. तैत्तिरीय संहिता - 7/1/5/1, शतपथ ब्राह्मण 14/1/2/11 ।।
5. ऋग्वेद - 1/154/1 ।।
6. तैत्तिरीय संहिता - 2/1/3/1 ।।
7. एतस्मिन्नंतरे विष्णु रूप यातो महाद्युतिः। शंख चक्रगदा पाणिः पीतवासा जगत्पतिः । वैनतेयं समारूह्य ...... ।। रामायण, बालकाण्ड, 15/15/16 ।।

श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने अवतार की कथा श्रीमद्भागवत् में कही है।[1] कालान्तर में अवतारवाद और उसका ज्ञानतत्त्व पौराणिक धर्म की प्रधान पीठिका बन गया वस्तुतः अवतार की पृष्ठभूमि से देवतत्त्व का प्रतिष्ठापन और दर्शनतत्त्व का प्रतिपादन हुआ। संसार में जब नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का विनाश हो जाता है। अनैतिकता एवं अधार्मिकता पनपती है, प्रकाश के स्थान पर अन्धकार का वातावरण हो जाता है। ऋत के स्थान पर अनृत और धर्म के स्थान पर अधर्म छा जाता है, तब सत्पुरूषों की रक्षा के लिए, भक्तों का कष्ट दूर करने के लिए, धर्म की स्थापना के लिए भगवान् पृथ्वी पर अवतरित होते हैं अधर्म एवं अनीति का समूल नाश कर देते हैं।[2] इस प्रकार जगत् में पुनः धर्म, सदाचार, नैतिकता और शान्ति का स्थान होता है तथा मानवता का भगवत्तत्त्व में ऊर्ध्वगमन होता है। भागवत् पुराण में कहा गया है कि यदि परमात्मा अपने पूर्ण वैभव और विलास के साथ इस पृथ्वी पर अवतीर्ण नहीं हुए होते तो अल्पज्ञ जीव उनके विलक्षण सौन्दर्य, माधुर्य, गाम्भीर्य, औदार्य, कारूण्य आदि विभिन्न दिव्य गुणों का कैसे ज्ञान प्राप्त करता? अतः भगवान् की अभिव्यक्ति प्राणियों (स्थावर-जंगम) के कल्याण अथवा लीलानन्द के निमित्त होती है। कृष्ण का अवतार होने पर ही जीव को ईश्वर की सम्पूर्ण लोकातिशायिनी शक्ति का परिचय प्राप्त हुआ था।[3] वह नाना रूप धारी, स्थूल और सूक्ष्म अव्यक्त और व्यक्त तथा युक्ति का हेतु था।[4]

---

1. स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
   चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ।।

   भाग0 पुराण, प्रथम स्कन्ध 3/6 ।।

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतांमहीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ।।
तृतीयं ऋषिसर्गं च देवर्षिमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ।।
तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।
भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद् दुश्चरं तपः ।।
पंचमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ।।
षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिश्य ऊचिवान् ।।
ततः सप्तम आकूत्यां रूचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम् ।।
अष्टमे मेरूदेव्यां तु नाभेर्जात उरूक्रमः ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रम नमस्कृतम् ।।
ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।
दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशन्तमः ।।
रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधि सम्पलवे ।
नात्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ।।
सुरासुराणां उदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ।।
धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ।।
चतुर्दशं नारसिंह विभद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैवक्षस्येरकां कटकृद्यथा ।।

वही० प्रथम स्कन्ध 3/7-18 ।।

पंचदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः ।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टयम् ।।
अवतारे षोडशमे पश्चन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिसपतकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ।।
ततः सप्तदशेजातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे देवतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसो ल्पमेधसः ।।
नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम ।।
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भवम् ।।
ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकतेषु भविष्यति ।।
अथासौ युग सन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिताविष्णु यशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ।।

वही0, प्रथम स्कन्ध 3/19-25 ।।

2. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाम साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ।।

वही0 4/7/8

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ।।

वही0 4/6

कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रशासनम् ।। मत्स्य पुराण 43/12

3. नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिभगवतो नृप ।
अव्ययएनाप्रमेयस्य निर्गुणास्य गुणात्मनः ।। भाग0 पुराण 10/29/14 ।।

4. एकानेक स्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे ।।

भक्ति का स्वरूप

पौराणिक धर्म में भक्ति का स्वरूप सर्वोपरि था। भक्ति के माध्यम से भगवान् तक पहुँचने की पुष्टि की गयी है। भक्ति के मूलतः तीन रूप प्रदर्शित हैं - मानसिक, वाचिक तथा कायिक। मन में बुद्धि के आधार पर ध्यान करना मानसिक भक्ति थी। जप, मन्त्र पाठ करना आदि को वाचिक भक्ति कहा गया। शरीर, मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण लगाने वाले उपवास, व्रत, नियम आदि कयिक भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। विष्णु पुराण[1] में भक्ति की विशद व्याख्या की गयी है। वहाँ भी तीन प्रकार की ही भक्ति मानी गयी है - लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक। विविध प्रकार की नैवेद्य सामग्री अर्पित करते हुए आराध्य देव की पूजा लौकिक भक्ति है। वैदिक मन्त्रों का उच्चारण, मनन, जप तथा संहिताओं का अध्ययन, अनुशीलन आदि वैदिकी भक्ति है। सांख्यदर्शन तथा योग के आधार पर की जाने वाली भक्ति आध्यात्मिक भक्ति कही जाती है। यही नहीं, पुराणों में भक्ति के तीन अन्य रूप भी वर्णित हैं - सात्विकी, राजसी और तामसी। सत्मार्ग का सहरा लेते हुए, सभी इच्छाओं को प्रभु में विलीन करके भक्ति करना सात्विकी भक्ति है। विषय में अवस्थित होकर यश एवं ऐश्वर्य की कामना से की जाने वाली भक्ति राजसी है तथा अहंकार, मान, ईर्ष्या द्वेष से की जाने वाली भक्ति तामसी है। पुराणों में भक्ति के विषय पर समीक्षात्मक निरूपण भी किया गया है।

---

1. कलिकलूषमलेन यस्य नात्मा विमलमतेर्मलिनीकुतस्तमेनम् ।
मनसि तं जनार्दनं मनुष्यं सततमहमवेहि हरेरतीवभक्तम् ।।
कनकमपि रहस्येवेक्षय बुद्धमा तृणमिव यम्मवैति वे परस्वम् ।
भवति च भगवत्यनग्यचेताः पुरूषवयं तमवेहि विष्णुभक्तम् ।।
विष्णु पुराण - तृतीय अंश, अध्याय सात - 21, 22

पुराण और राष्ट्रीयता :

आर्यो की राष्ट्रीय भावना पुराणों में आकर और मुखरित हो जाती है। इसमें राष्ट्रीय एकता तथा देश भक्ति का सुन्दर संगीत सुनाई पड़ने लगता है। प्रत्येक पुराण भारतवर्ष को एक इकाई के रूप में मानता है। यही कारण है कि इस देश के पर्वतों, नदियों, झीलों, तीर्थो, आश्रमों आदि का सांगोपांग एवं सत्य वर्णन करने में सदा सचेत रहा। इसीलिए सभी पुराणों में "भुवनकोश" नामक प्रसंग अवश्य शामिल है। भारतीय अखण्डता, एकता एवं देशभक्ति का राग विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण अलापते रहते हैं। "देवगण भारतीयों को धन्य मानकर गीत गाते रहते हैं क्योंकि भारतवर्ष स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्ति का सहज स्थान है। देवता होने के बाद भी यहाॅं जन्म लेकर मनुष्य अपने परम निःश्रेयस को सुसम्पन्न करता है।[1]

भागवत पुराण का इस विषय में और उत्कृष्ट मत है कि "स्वर्ग में कल्प की आयु की अपेक्षा भारत में क्षण भर का जीवन श्रेष्ठ है, क्योंकि कर्म-भूमि में कर्मसंन्यास मनुष्य को विष्णु पद की प्राप्ति करा देता है।[2]

---

1. गायन्ति देवाः खलु गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात् ।।

विष्णु पुराण - 2/3/25

2. कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्ति अभयपदं हरेः ।।

भाग० पुराण 5/19/23

देवता लोग भारत में जन्म लेने के लिए तरसते हैं और भारतीयों के सुकर्मों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इसी आयावर्त में जन्म लेकर मनुष्य को अच्युतयोगीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा का अवसर प्राप्त होता है, जिससे व्यक्ति को परम पद की प्राप्ति होती है। इसी कारण देवता भी मोक्ष पद की प्राप्ति हेतु भारत में जन्म की अभिलाषा रखते हैं।[1]

भक्ति, पूजा, उपासना और शरणागति ही पुराणों का प्रमुख विषय है। इस अवसर में धार्मिक कर्मकाण्डों में भी राष्ट्रीय भावना की झलक मिलती है। संकल्प के अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति द्वारा यह कहा जाना - जम्बूद्वीपे भारतेखण्डे आर्यावर्तैकदेशे .....।, उसकी राष्ट्रभक्ति राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का सूचक है। स्नान के अवसर पर स्नान करने वाला व्यक्ति भारत की जिन सात नदियों का स्मरण करके मन्त्र का उच्चारण करता है उसमें भी अखण्ड भारत या बृहत्तर भारत की ही झलक मिलती है।[2]

---

1. अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
   यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहाहिनः ।।
   श्रीमद् भागवत पुराण 5/19/21

2. गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
   नर्मदे सिन्धु कावेरि जले स्मिन् सन्निधिं कुरू ।।

पूजा के अवसर पर पहने जाने वाले वस्त्र के लिए विहित शास्त्रीय विधान में भी राष्ट्रीयता, स्वदेशी की झलक मिलती है। इस अवसर पर उपयुक्त वस्त्र कौन सा है? इसके लिए शास्त्रीय विधान यह था कि वस्त्र ऐसा हो जो न जला हो, न फटा हो, न सिला हो, न पुराना हो, इसके अतिरिक्त वह वस्त्र स्वदेश में निर्मित हो। धर्मशास्त्रकारों की विशेष अनुशंसाथी कि यज्ञादि धार्मिक कार्यो के अवसर पर विदेशी वस्त्रों का प्रयोग कदापि न हो। यह भी स्वदेशी भावना को पल्लवित करता है।[1] विहित शास्त्रीय एवं पौराणिक विधानों में पीपल, तुलसी, वट, अशोक, नीम आदि पौधों, नदियों, पर्वतों आदि की पूजा का विधान मानवीय दृष्टिकोण के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला है। शुक्लयजुर्वेद[2] के एक मन्त्र में राष्ट्र के सभी अंगों की वृद्धि के लिए की गयी प्रार्थना नितान्त रम्य है। वस्तुतः यह पौराणिक मान्यता की एक प्रकार से पुर्नस्थापना है।

---

1. न स्यूतेन न दग्धेन न पारक्येण विशेषतः ।
   मूषकोत्कीर्ण जीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षणः ।।

2. आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो तिव्याधी महारथो जायताम् । दोग्ध्री धेनुर्वोढ़ाऽनड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णूरथेष्ठा, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् । योगक्षेमो न कल्पताम् ।।

पुराणों में इतिहास

पुराणों की दृष्टि ही सच्चे इतिहास की पोषिका है ऐसी भारतीय विद्वानों की अवधारणा है। पुराणों के जो पाँच लक्षण[1] सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित प्राप्त होते हैं वे मानव की कहानी के आद्योपान्त कहते हैं। मानव समाज का इतिहास तभी पूर्ण समझा जा सकता है जब उसकी कथा का अनादि काल से लेकर आज तक वर्णन किया जाय। पुराण का आरम्भ सृष्टि से तथा अन्त प्रलय से हो। इन दोनों छोरों के बीच में आने वाले विशाल कालखण्डों, राजवंशों का विवरण देना ही पुराण का पुराणत्व है। कलिवंशीय राजाओं का वर्णन हमें पुराणों में मिलता है जिसकी पुष्टि आधुनिक इतिहास सामग्री - शिलालेख, ताम्रलेख तथा मुद्रालेख आदि से हो रही है।[2] सम्राट अशोक के पूर्व के शिलालेख तो अंगुलिगण्यमात्र हैं। राजा परीक्षित से लेकर पद्मनन्द तक का इतिहास पुराण के ही आधार पर इतिहासज्ञों ने रचा है। पार्टिजर[3] नामक विद्वान के शोध से भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री की ओर आया। उसके प्रकाशित होने से भारतीय इतिहास के अन्धकारपूर्ण काल को प्रकाशित करने में काफी सहायता मिली। पुराण का यह दोष नहीं कि उसके द्वारा वर्णित राजा को आज प्रमाणित नहीं किया जा सका बल्कि तथ्य यह है कि नूतन खोज के सर्वांगीण होने से पुराण का प्रत्येक ऐतिहासिक विवरण प्रस्फुटिक हो जायेगा।

---

1. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
   वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ।।
2. डॉ0 वी.वी. मिराशी का लेख - पुराणम् भाग 1, पृष्ठ 31-38
   (काशीराज ट्रस्ट रामनगर वाराणसी)
3. पार्टिजर - एनसियेण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडेशन ।

सच्चाई यह है कि पौराणिक अनुश्रुतियों को सूतों ने बड़ी सावधानी से सुरक्षित कर रखा है। यही नहीं, उन्होंने राजवंशावली का विनष्ट होने से बचाया। इनमें एक ही नाम वाले अनेक राजा हुए हैं। अशुद्धि-बचाव हेतु पुराणों ने ऐसे नामों का स्पष्ट निर्देश कर दिया है। जैसे नल नाम के दो राजा हुए - एक तो नैषध देश के राजा वीरसेन के पुत्र जो नलोपाख्यान तथा नैषधीयचरित के नायक भी हैं दूसरे इच्छ्वाकु वंश में उत्पन्न। मरूत्त नामक दो राजा हुए एक करन्धम के पुत्र दूसरे अविक्षित[1] के पुत्र जो प्राचीन भारत के महान् मूर्धाभिषिक्त राजा थे। इसी प्रकार सोमवंश में दो परीक्षित दो जनमेजय तथा तीन भीमसेन हुए।[2] इतनी सावधानी रखने वाले पुराण सच्चे रूप में ऐतिहासिक हैं। वस्तुतः राजवंशों में भी उन्हीं का चित्रण है जिनके चरित्र उपदेश प्रद हैं। जिनका चरित्र किसी आदर्श को अग्रसर करने हेतु प्रस्तुत किया गया है। भागवत पुराण में इस बात विशद वर्णन है कि पुराणों में उन्हीं राजवंशों का वर्णन है जो स्वयं में आदर्श, सदाचारी तथा यशस्वी थे।[3] परन्तु कष्ट की बात यह है कि आज के अन्वेषक विद्वज्जन पुराणों के इस रहस्य को बिना ठीक ढंग से समझे ही आपाततः दिखाई पड़ने वाले विरोध तथा घटना की विषमता के कारण उन्हें निराधार एवं प्रामाणिक बताते हैं जो एक प्रकार की दुराग्रहपूर्ण धृष्टता के सिवाय और कुछ नहीं है।

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण - अष्टम पंचिका ।
2. पुराण-विमर्श, बलदेव उपाध्याय, पृ0 355 चौखम्भा काशी 1965
3. कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ।
   विज्ञान वैराग्य विवक्षया विभो क्चो विभूतिर्न तु पारमार्थ्यम् ।।

   श्रीमद् भागवत पुराण - 12/3/14

पुराणों में भूगोल

पुराणों में भूगोल (प्राचीन) का एक बृहद् अंश वर्णित है, जिसे 'भुवनकोश' की संज्ञा दी जाती है। पुराणों की इस विषय में दो प्रकार की अवधारणा है - चतुर्द्वीपा वसुमती तथा सप्तद्वीपा वसुमती। यह भौगोलिक प्रसंग पुराणों की अपनी विशेषता है। कल्पना यही है कि वसुमती द्वीपों वाली है और समुद्रों से आवृत्त है। इन समुद्रों में क्षीरसागर, मधुसागर, इक्षुसागर की गणना की जाती है। इसके लिए अन्य देशों की जन जागरूकता तथा इनका साहित्य इसका अकाट्य प्रमाण है। जम्बूद्वीप से तात्पर्य भारतवर्ष से ही है जहाँ ईसा पूर्व तीसरी सदी में महान मौर्यो का शासन था। इसके पूर्व जम्बूद्वीप का नाम अजनाभ था जिसका अर्थ है अज की नाभि से पैदा होने वाला। यह नाम आर्यो के भारतवासी होने का स्पष्ट संकेत है। इसी प्रकार शकद्वीप में शकों का निवास था यह जिस क्षीरसागर द्वारा सर्वतः आवृत्त था वह तो आज का कैस्पियन सागर है जिसे फारसवासी भी अपनी भाषा में शीरवाँ कहते हैं। कुशद्वीप के निवासी कुसाइट्स के नाम से महान् ईरानी सम्राट डैरियस (दारयब हुम दारा) के शिलालेखों में अनेक स्थानों पर उल्लेख प्राय हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि पुराणों में वर्णित भूगोल मात्र कपोल कल्पना ही नहीं अपितु यथार्थता के ठोस धरातल पर अवस्थित है। उसकी मीमांसा आवश्यक है। यही नहीं, पुराणों में जिन पातालों का वर्णन है वही आज का मैक्सिको तथा दक्षिणी अमेरिका है। आज भी मैक्सिको तथा पेरू में प्राचीन मयसभ्यता के जो अवशेष हैं वे भारत से विशेष रूप से मिलते हैं।

पुराणों में भी इन मय नामक असुरों का उल्लेख है जो पाताल लोकवासी हैं तथा महलों एवं भव्य प्रासादों के निर्माता हैं। ये मय नामक असुर कोई कपोल कल्पित न होकर जीते जागते प्राणी हैं जो वास्तुशास्त्र या शिल्पशास्त्र के महनीय प्रतिष्ठापक माने जाते हैं। सम्प्रति इस विषय में विशेष अन्वेषण की अवश्यकता है जो अन्य महत्त्वपूर्ण भौगोलिक विषय को यथार्थ सिद्ध कर देगी।

पुराणों में चिकित्सा

अग्नि पुराण में पशु से सम्बन्धित चिकित्सा का विशेष वर्णन हुआ है, जिसमें गज चिकित्सा[1], अश्व चिकित्सा[2] तथा गौ चिकित्सा[3] प्रमुख हैं। सिद्धौषध[4] तथा सर्वरोगहारिणी[5] औषध का वर्णन पूरे एक अध्याय में है। दिल्ली के प्रख्यात सर्जन डॉ0 बी.जी. मातापुरकार ने अपने शोध से पुराणों के चिकित्सीय महत्त्व को और बढ़ा दिया है। डॉ0 मातापुरकर नें मार्कण्डेय पुराण[6] से प्रेरित होकर अपरिपक्व कोशिकाओं से सम्पूर्ण अंग का पुनर्सृजन करके नवीन क्रान्ति की शुरूआत की है। इस पुराणाश्रित शोध के परिणाम स्वरूप भविष्य में प्रत्यारोपण और क्लोनिंग की तकनीक पुरानी साबित होगी और यह नवीन तकनीक चिकित्सा क्षेत्र में भारत की पौराणिक विजय साबित होगी।

---

1. अग्नि पुराण अध्याय 124 पृ0 112
2. वही0 अध्याय 126 पृ0 127
3. वही0 अध्याय 129 पृ0 140
4. वही0 अध्याय 116 पृ0 60
5. वही0 अध्याय 117, 120, पृ0 70, 85
6. मार्क0पु0 अध्याय 11 श्लोक 1-12

वेद से अधिक पुराणों की महनीयता

वैदिक साहित्य की दुष्पारता, वेदार्थ की दुरधिगमता तथा वेदार्थ के निर्णय में मुनियों का परस्पर विरोध ऐसा तत्त्व है जिसके कारण पुराणों की महनीयता सिद्ध होती है। यद्यपि धर्मशास्त्र भी उपदेशमयी है लेकिन यह भी वेदप्रतिपादित धर्म का क्लिष्ट भाषा में उपदेश देते हैं। जो सामान्य जन द्वारा ग्राह्य नहीं। लेकिन पुराण अपनी शिक्षा एवं अपना आदेश रोचक कथा एवं आख्यान के रूप में प्रस्तुत करता है जो सामान्य जन द्वारा भी अतिग्राह्य है। इसे इसी कारण जन काव्य कहा जाता है। प्रसिद्ध विद्वान जीवगोस्वामी ने अपने ग्रन्थ 'तत्त्वसन्दर्भ' में पुराणों की महनीयता के तीन कारण बतायें हैं - (1) पुराण न तो दुष्पार है (2) न दुर्बोधगम्य (3) न ही उनके अर्थ निर्णय में विरोध है। बल्कि पुराण की भाषा सरल सहज तथा प्रसादमयी है +, शैली रोचक है इसीलिए जनता का हृदय आसानी से पुराणार्थ को ग्रहण करता है। पुराणों का भक्ति सम्पुटित उपदेश जनता के हृदय तक पहुँचता है जिससे श्रोताजन आनन्द के सागर में डूब जाते है। प्राचीन भारत का सारा ज्ञान विज्ञा नों एकत्र कर पुराणों में भर दिया गया है। इसीलिए यह विश्वविद्या का कोश बन गया। पुराण तो साधारण मनुष्यों का ग्रन्थ है। इसका मूल उद्देश्य ही रहा ज्ञान को सरल एवं सुबोध बनाकर जनता तक पहुँचाना। आज का Popular Education मूलतः पौराणिक दृष्टि का ही अनुकरण मात्र है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि पुराण ने ज्ञान एवं मानव दूरी को खत्म कर दिया।

पुराणों में वैदिक विचारों का समन्वय

वैदिक विचारों और धारणाओं की पुराणों में स्पष्ट झलक प्राप्त होती है। पुराणों में वैदिक आख्यानों, उपाख्यानों तथा मान्यताओं को नवीन रूप में वर्णित किया गया है। वैदिक चिन्तन एवं दर्शन का भी आकलन किसी न किसी रूप में प्राप्त हो जाता है। वेद के अव्यय, अक्षर और क्षर पुरूष ब्रह्मा, विष्णु और महेश बन गये और त्रिधाम और सप्तधाम विद्या विष्णु के वामनावतार के आख्यान में परिवर्तित हो गयी। यही नहीं वेद की 'दक्ष-अदिति विद्या' पुराणों में 'दक्ष-यज्ञ के विध्वंस की कथा'[1] में परिणत हो गयी तथा 'अग्नि चयन विद्या' 'कुमार-जन्य आख्यान बन गयी। 'चित्रशिशु विद्या' 'अष्टमूर्ति विद्या' के रूप में प्रचलित हुई। देवासुर विद्या, सोम विद्या, सावित्री विद्या, विराजधेनु विद्या, भृगु-अंगिरा-उभय-अग्नि-सोमविद्या, पितृ विद्या तथा पशु विद्या आदि वैदिक सन्दर्भ ही पुराण साहित्य में आकर इन्द्रवृत्तोपाख्यान,[2] समुद्र-मन्थन,[3] सावित्री सत्यावान कथा, पृव्यु पृथिवी दोहन,[4] श्राद्धकल्प,[5] सुकन्या-च्यवन विवाह[6] आदि रूपों में दर्शित होती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि पौराणिक धर्म या पौराणिक साहित्य में वैदिक तत्त्वों का निवेशन त्वरित गति से हुआ साथ ही वैदिक चिन्तनधारा का नये आयाम में विस्तार हुआ।

---

1. श्रीमद्भाग0 पुराण, चतुर्थ स्कन्ध, पंचम अध्याय पृ0 338 ।।
   कूर्म पुराण पूर्वार्द्ध अध्याय 15 पृ0 168-83
2. वही0, षष्ठ स्कन्ध, अध्याय 9 से 12 तक ।।
3. विष्णु पुराण, प्रथम अंश, अध्याय 9 ।। भाग0पु0, अष्टम स्कन्ध, अध्याय 7 ।।
4. श्रीमद्भाग0पु0, चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय 18 पृष्ठ 398
5. कूर्म पुराण - उत्तरार्द्ध अध्याय 20, 23 । वि0पु0, तृतीय अंश, अध्याय 14,15,16
   अग्नि पुराण, अ0 66 पृ0 304
6. भाग0पु0, नवम स्कन्ध, अध्याय 3 पृ0 9

वेद-पुराण की एकता

वैदिक तत्त्वों का ज्ञान कालान्तर में दुरूह व्यवहार मात्र रह गया था, जो साधारण पढ़े-लिखे लोगों की बुद्धि के परे था। मूलतः उसका कारण यह था कि वैदिक भाषा, दर्शन, मन्त्र और रहस्य को समझने के लिए जिन विशिष्ट संस्कारों एवं आचरणों की अपेक्षा थी वह बाद में कम हो गयी। फलस्वरूप समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग वैदिक ज्ञान और उसकी अभिव्यंजना से वंचित हो गया था। बौद्ध युग और मौर्य साम्राज्य के काल में वैदिक तत्त्वों के प्रसार में और अधिक बाधा पड़ी तथा साधारण मानव वेदों की दुरूहता और उसके कर्मकाण्डीय व्यवहारों से विमुख होकर सरल और सहज बोधगम्य धर्म की ओर अग्रसर होने लगा। अतः वंचित समाज को ज्ञानार्जन कराने के निमित्त महर्षि कृष्णद्वैपायन[1] तथा उनके शिष्यों प्रशिष्यों ने पुराणों की रचना की। सरल एवं सुबोध आधार पर प्रणीत पुराणों के वर्ण्यविषयों ने साधारण जनत को ज्ञान और बु का नवीन मार्गदर्शन कराया तथा अपनी सरल एवं सहज बोधगम्य शैली में सनातन वैदिक विचारधारा, क्रियाधारा, कर्मधारा और भाव धारा का प्रसार एवं प्रचार किया। वैदिक परम तत्त्व को, जो ऋषियों-मुनियों तक के लिए अगम्य था, उसे पुराणों ने जनमानस के निकट करके बुद्धिमन तथा इन्द्रियगम्य बनाया। फलतः साधारण वर्ग भी परम तत्त्व को समझने में समर्थ हुआ।

---

1. अष्टादशपुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः ।। स्कन्दपुराण, रेवा खण्ड, अध्याय 8।

वेदों के **'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'**[1] को पुराणों में पतितपावन परमपिता परमेश्वर का स्थान मिला। वेद विवृत ब्रह्म, जो नामों, रूपों तथा भावों से परे था, वह पुराणों में सर्वनामी, सर्वरूपी, सर्वव्यापक और सर्वभावयुक्त भगवान् हो गया। 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'[2] यह वेदोक्ति पुराण में 'एकं सत् प्रेम्णा बहुधा भवति' हो गयी। वेदों का दुरूह ज्ञान और दर्शन पुराणों में सरल और सुबोध हो गया। पुराणों में परम प्रभु ईश्वर को नाना प्रकार की अद्भुत शक्तियों से युक्त दिखाकर विभिन्न रूपों और नामों के साथ चित्रित किया गया है। भगवान् की मोहक लीलाओं को सर्वसाधारण के बीच प्रदर्शित करके मानव के मानस में देवत्व-बोध और भगवत्ता की अनुभूति जगायी गयी है, जिससे लोकवृत्ति धर्म-संवलित हो गयी। वेद की जटिल ज्ञानपद्वति, सुबोध ज्ञानपद्धति बन गयी तथा सभी मनुष्यों के हृदय स्थल को अपनी दीपशिखा से पुराणों ने आलोकित किया। अतः वेद और पुराण में मौलिक और साधारण एकता है तथा दोनों के वर्ण्यविषय भी एक हैं अन्तर तो केवल नाम, रूप और काल का है।

---

1. तैत्तिरीय - उपनिषद् - 2/1
2. ऋग्वेद - 9/108, 1/105/15

   इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान् ।

   एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।

ईश्वर के प्रति अगाध आस्था, अनुपम प्रेम तथा अव्यभिचारिणी भक्ति की पुराणों में सर्वत्र सांगोपांग चर्चा है। वेदों में ज्ञान के साथ-साथ कर्म, रहस्य एवं भक्ति का भी वर्णन है। ऋग्वेद के मन्त्रों और उपनिषदों में भक्ति के सामान्य रूप का संकेत न होकर उसके नवीन प्रकार की भी विवेचना है।[1] ऋग्वेद के एक अन्य स्थल पर दीर्घतमा नामक ऋषि ने भगवान् विष्णु का स्तवन एवं नामस्मरण किया है, साथ ही दूसरे मन्त्र में भगवान के गुणों का श्रवण, मनन, कीर्तन और समर्पण को भक्त के जीवन का परम उद्देश्य माना है।[2] यह कथन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि पूर्व वैदिक युग में भी भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना थी जिसका साधक प्रभु का पूजन, कीर्तन तथा आराधना करता था। कालान्तर में पुराणों ने भी इस प्रणाली को विभिन्न रूपों में विकसित किया। उपनिषदों के ज्ञान-तत्त्व को भी पुराणों ने नये परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया। प्रसाद, कृपा या अनुग्रह तत्त्व के बारे में कठोपनिषद् का कथन है, 'यह आत्मा न तो वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त करने योग्य है, न धारणा शक्ति से, न श्रवण से ही, बल्कि साधक जिस आत्मा का वरण करता है, उसी से उसकी प्राप्ति हो जाती है। उसी के प्रति आत्मा अपना स्वरूप अभिव्यक्त करती है।[3]

---

1. शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, 1/29, भक्तिः प्रमेया श्रुतिभ्यः ।
2. ऋग्वेद - 1/156/3, 1/156/2 ।
3. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
   यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।।

   कठोपनिषद्, 1/2/23

कठोपनिषद् में एक अन्य स्थल पर कहा गया है, "आत्मा अणु से अणुतर, महान् से महत्तर तथा जीव की हृदय रूपी गुहा में स्थित है। निष्काम पुरूष विधाता की कृपा से उस आत्मा की महिमा को देखता है और शोक-रहित हो जाता है।[1] यही प्रसाद और अनुग्रह तत्त्व ही वैष्णव धर्म का प्रधान आधार है।[2] हर साधक की यह आकांक्षा होती है कि वह परमात्मा की शरण में पहुँचे लेकिन यह मनोरथ उसकी भक्ति एवं साधना से ही पूरा होता है। इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति श्वेताश्वतर-उपनिषद् में हुई है, " जो सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा को उत्पन्न करता है, तथा जो वेदों को प्रवृत्त करता है, अपनी बुद्धि को प्रकाशित करने वाले उस देव की मैं मोक्षार्थ शरण ग्रहण करता हूँ।"[3] भक्ति के क्षेत्र में गुरू के निर्देशन का बहुत बड़ा महत्त्व है। बिना गुरू के ज्ञान की प्राप्ति यदि असम्भव नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है। यथार्थतः ज्ञान-प्राप्ति का सबसे उत्कृष्ट साधन गुरू कृपा ही है।

---

1. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
   तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।।

   कठोपनिषद् - 1/2/20

2. स्थितिर्वैकुण्ठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ।
   मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ।।

   श्रीमदभागवत0 2/10/4

3. यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
   तं हि देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षै शरणमहं प्रपद्ये ।।

   श्वेताश्वतरोपनिषद् - 6/18

वेदों और उपनिषदों से विदित होता है कि ज्ञानार्जन के लिए लोग ऋषियों एवं मुनियों के यहाँ जाते थे। ज्ञान की प्राप्ति हेतु किसी न किसी रूप में गुरू की आवश्यकता अवश्य थी। उपनिषदों में ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जब बिना गुरू के सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका था। केकय नरेश अश्वपति ने उद्दालक आरूणि तथा प्राचीनशाल आदि अनेक विद्वानों को वैश्वानर विद्या का ज्ञान कराया था।[1] यमराज ने नचिकेता को अध्यात्म-तत्त्व की शिक्षा दी थी।[2] प्रवाहणजाबालि ने आरूणि को पंचाग्नि विद्या का ज्ञान कराया था।[3] भागवत पुराण में भी उल्लिखित है कि गुरू कृपा के अभाव में भक्त उसी प्रकार संसार-सागर में पड़कर नाना कष्टों को सहता है जैसे जहाज से व्यापार करने वाला बनिया बिना नाविक के अनेक कष्टों को सहता है।[4] इस प्रकार वैदिक-साहित्य से मार्गदर्शन प्राप्त होने पर विविध पुराणों का ज्ञान और कर्मतत्त्व विकसित हुआ, जिसमें अनुरागात्मिका भक्ति, शरणागति भगवन्नाम का स्मरण, कीर्तन, मनन, पूजा आदि का विस्तृत विवेचन है।

---

1. छान्दोग्य - उपनिषद् 5/11/5
2. कठोपनिषद् 1/2/9
3. बृहदारण्यक-उपनिषद 6/2/4
4. विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः ।
   व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ।।
   श्रीमद्भागवत पुराण - दशम स्कन्ध के 87वें अध्याय का 33वाँ श्लोक

प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का समन्वय

कर्म एवं मोक्ष के साथ ही पुराणों में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का भी अभिराम समन्वय दृष्टिगोचर होता है। जगत में रहकर मानव-प्राणी वृत्तियों के वशीभूत हो जाता है और वह अपने प्रारम्भिक जीवन से लेकर अन्तिम समय तक अपने कार्यों को सुसम्पन्न करता है। ये कर्म उत्तम, मध्यम, अधम किसी प्रकार के भी हो सकते हैं। जो व्यक्ति इहलोक से सम्बद्ध कार्य करता है उसके मूल में सुखप्राप्ति ही है। वह साधारण धर्म और स्वधर्म दोनों को करता है। साधारण धर्म सावभौम और सार्वजनीन है जिसमें दान, दया, शौच, सन्तोष, तप, ज्ञान, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह अहिंसा आदि शामिल है। इसमें अहिंसा का स्थान सबसे ऊपर है। साथ ही सत्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके साथ ही व्यक्ति स्वधर्म का कार्य करता है जो उसका वर्णधर्म या वर्णाश्रम है। व्रतदान[1] और प्रायश्चित[2] जैसे कर्म स्वधर्म के ही अन्तर्गत आते हैं। श्रीमद्‌भागवत् में तीस प्रकार के मानव धर्म बताये गये हैं - सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचित, का विचार मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओं की सेवा, धीरे-धीरे सांसारिक भागों की चेष्टा से निवृत्ति, अभिमान को त्यागकर कर्म करना, मौन, आत्म चिन्तन, प्राणियों को अन्न आदि का यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्यों में अपने आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, संतों के परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण के नाम-गुण-लीला आदि का श्रवण।

---

1. अग्नि पुराण - अध्याय 70-78 पृष्ठ 326-52
2. वही0 - अध्याय 70 पृष्ठ 326

   कूर्म पुराण - अध्याय 30, 32, 33, 34 पृष्ठ 750-803

कीर्तन, स्मरण, प्रभु के चरणों की सेवा, पूजा, नमन्, उनके प्रति दास्य, सख्य, आत्म समर्पण या प्रवत्ति। इन मानव धर्मो, व्रतों, महात्म्यों एवं प्रायश्चितों के द्वारा श्री पुराणों में प्रवृत्ति-निवृत्ति का अदभुत निदर्शन प्राप्त होता है। ये तीस प्रकार[1] के आचरण सभी मनुष्यों के परम धर्म है। इनके पालन में अच्युतयोगीश्वरभगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं।

---

1. सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम ।।

सन्तोषः समदृक सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम ।।

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ।।

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गते ।
सेवेज्यावनतर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम ।।

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवानराजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ।।

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे-युगे ।
वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत् ।।

वृत्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ।
हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ।।

श्रीमद्भाग० पुराण, सप्तम स्कन्ध, अध्याय ।।/8-12, 31, 32

लोककल्याण - पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक सन्दर्भ

पुराणों[1] में लोककल्याण से सम्बन्धित पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक सन्दर्भ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, जिनमें व्यक्ति के लिए यह निर्देश दिया गया है कि वह अपने सद्व्यवहार और सदाचार से परिवार एवं समाज को प्रसन्न रखे। कभी-कभी परिवार अथवा समाज द्वारा किसी प्रकार का दुर्व्यवहार किये जाने पर भी शान्त रहने की सलाह दी गयी है। परिवार में हमेशा शान्ति एवं मित्रता का वातावरण बनाये रखने की सलाह दी गयी है। कुटुम्ब के उन सदस्यों की निन्दा की गई है जो गृहस्थ जीवन में पवित्रता नहीं रखते। माता-पिता तथा गुरूजनों के प्रति आदर भावना नहीं प्रदर्शित नहीं करते, दूसरों के प्रति ईर्ष्या द्वेष रखते हैं, सभी जीवों के प्रति दया नहीं करते, निर्धन तथा जरूरत मन्द लोगों को दान नहीं देते, शत्रु-मित्र के प्रति समान भाव नहीं रखते। पुराणों में सत्कर्मी एवं सच्चरित्र व्यक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। माता, पिता तथा गुरू की पूजा, सबके प्रति समान व्यवहार, मित्रों से सद्भाव तथा भगवान् विष्णु की पूजा करने वाला प्रशंसनीय होता है। दाम्पत्य जीवन की महत्ता का भी प्रतिपादन किया गया है। कुटुम्ब में पति (पुरूष) की श्रेष्ठता थी, पत्नी का स्थान देवी के रूप में था। समस्त धार्मिक कार्य में पत्नी की उपस्थिति एवं सहभागिता अनिवार्य थी। कुटुम्ब में होने वाले कलह एवं झगड़े से परिवार की शान्ति एवं प्रतिष्ठा भंग होती थी, इसलिए पुराणों में इसकी निन्दा की गयी है। गृहस्थों को शान्ति मार्ग अपनाने का उपदेश दिया गया है।

---

1. श्रीमद्भा0 पुराण, सप्तम स्कन्ध, अध्याय - 14, श्लोक 2-27

सत्यभाषण, स्वच्छ हृदय, मंगल भावना और स्नेहिल व्यवहार से परिवार का उत्कर्ष होता था। जो व्यक्ति इन मार्गों का अनुगमन न करके असत्य, अनादर, निर्दय तथा कठोर व्यवहार करता है उसकी मरने के बाद बड़ी दुर्गति होती थी। इसीलिए पुराणों में सद्वृत्तियों और सद्गुणों का पालन करने का निर्देश दिया गया ताकि लोकसंग्रह या लोककल्याण सतत सम्भव रहे।

समाज के कल्याण हेतु धार्मिक वृत्तियाँ भी अति आवश्यक है क्योंकि धर्म की राह पर चलकर ही समाज का कल्याण, उत्थान तथा विकास किया जा सकता है। पुराणों में वर्णित पूर्तधर्म[1] इसी धर्माचरण का एक रूप था। पुराणकारों की मान्यता थी कि जो यज्ञादि का विधान नहीं कर सकता उसे जलाशय, कूप, वापी, उपवन तथा धर्मशाला आदि बनवाना चाहिए। ऐसा करने वाला लोक तथा परलोक दोनों में समादृत होता है। जिस जलाशय में बसन्त और ग्रीष्म तक जल बराबर बना रहे उसका निर्माता अश्वमेघ या राजसूय यज्ञ का भागी होता है। यही नहीं, वह व्यक्ति ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है। जो व्यक्ति वृक्षारोपण करता है उसे पुत्र की प्राप्ति होती है। व्यक्ति चाहे धनी हो या निर्धन, ऊँच हो या नीच। कामना त्यागकर धर्मानुसार लोक कल्याण करने वाला व्यक्ति परमपद को प्राप्त करता है। धर्म-मार्ग का अनुसरण व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन का उन्नायक तो है ही साथ में वह समष्टिगत या सामाजक जीवन में भी उपयोगी है। धर्मचारी इह लोक तथा परलोक दोनों में सुख पाता है।

---

1. अग्नि पुराण - अध्याय 27-28

चतुर्थ अध्याय : संस्कृत के प्रमुख महाकाव्यों का स्वरूप एवं उनमें उपलब्ध पौराणिक सन्दर्भ - सामान्य परिचय

कुमार सम्भवम्

कुमार सम्भवम् 17 सर्गों में विभक्त महाकाव्य है। इसमें शंकर और पार्वती के विवाह, कार्तिकेय–जन्म तथा उन्हीं के सेनापतित्व में देवताओं और तारकासुर का युद्ध एवं उसके वध का वर्णन है। कार्तिकेय (कुमार या स्कन्द या षडानन) के जन्म की घटना के आधार पर इसका नाम कुमार–सम्भवम् रखा गया। सर्गानुसार इसकी कथा निम्नलिखित है -

1. हिमालय वर्णन, हिमालय और मैना से पार्वती का जन्म, नारद द्वारा शिव के साथ पार्वती के विवाह की भविष्यवाणी, शिव तथा पार्वती द्वारा हिमालय पर तपश्चर्या, पार्वती द्वारा शिव की शुश्रूषा।

2. तारकासुर से पीड़ित होकर सभी देवताओं का ब्रह्माजी के पास आना, पार्वती के द्वारा शंकर के मन को आकर्षित करने की सलाह, इन्द्र द्वारा सहायता के लिए कामदेव को अपने पास बुलाना।

3. इन्द्र की आज्ञा से कामदेव का रति तथा वसन्त को लेकर समाधिस्थ शिव के मन में कामवासना जगाने के लिए प्रहरी नन्दी से आँख बचाकर भीतर चला जाना, पार्वती द्वारा शिव को माला समर्पित करते समय कामदेव द्वारा सम्मोहन बाण चलाया जाना, शिव की चित्तवृत्ति का चंचल होना, शिव द्वारा चंचल चित्तवृत्ति का दमन, शिव द्वारा क्रोध के कारण तृतीय नेत्र का खोला जाना और कामदेव का भस्म होना।

4. कामदेव की पत्नी का विलाप, रति की बारम्बार प्रार्थना, आकाशवाणी कि शिव-पार्वती के विवाह के अवसर पर कामदेव को पुनः प्राणदान मिलेगा।

5. शिव को वर रूप में प्राप्त करने हेतु पार्वती द्वारा घोर तपश्चर्या, ब्रह्मचारी वेश में शिव द्वारा पार्वती के प्रेम की परीक्षा, पार्वती के निश्चल एवं असामान्य प्रेम द्वारा शिव की तुष्टि।

6. विवाहेच्छुक शिव का पार्वती के याचनार्थ सप्तर्षियों को हिमालय के पास भेजना, शिव-पार्वती विवाह का पिता हिमालय द्वारा अनुमोदन।
7. शिव की वरयात्रा, शिव-पार्वती विवाह ।
8. शिव-पार्वती का दाम्पत्य जीवन, रतिक्रीड़ा, केलि-विहार वर्णन ।
9. दाम्पत्य-सुख का अनुभव करते हुए विविध पर्वतों आदि पर घूमकर कैलास पर्वत पर वापस आना, देवताओं द्वारा प्रेषित कपोत रूपधारी अग्नि में शिव का वीर्यस्थापन, असहनीय होने के कारण अग्नि द्वारा उसे गंगा में डालना।
10. गंगा द्वारा उस असहय वीर्य को 6 कृत्तिकाओं में और कृत्तिकाओं द्वारा उसे वेतसवन में डालकर प्रस्थान कर जाना, कार्तिकेय का गर्भ में आना।
11. विमान द्वारा जाते हुए शिव-पार्वती द्वारा बालक को देखना, 6 दिन में ही कुमार का सर्वशास्त्र पारंगत हो जाना, कुमार का बाल्यवर्णन।
12. कुमार का देव सेना का सेनापति बनना ।
13. कार्तिकेय का शिव-पार्वती के आदेश से प्रस्थान, कुमार द्वारा सैन्य संचालन, तारकासुर पर चढ़ाई करना।
14-17. तारकासुर के साथ रोमांचकारी युद्ध, तारकासुर का वध, स्वर्ग से कुमार पर पुष्प-वृष्टि एवं इन्द्र की निश्चिन्तता का वर्णन है।

कतिपय विद्वानों का मत है कि कुमार सम्भवम् के पूर्व के आठ सर्ग ही कालिदास द्वारा रचे गये। आगे के नव सर्ग किसी अन्य कवि की रचना है। पठन-पाठन में प्रायः प्रथम सात सर्ग ही आते है इसलिए कुछ विद्वान अष्टम् सर्ग को भी कालिदास की कृति नहीं मानते है। डॉ0 कीथ[1] का मत है कि अष्टम् सर्ग कालिदास का बनाया हुआ है।

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 कीथ

पूज्यवाद पं0 बलदेव उपाध्याय जी[1] का भी यही मत है, क्योंकि मल्लिनाथ की टीका इन्हीं आठ सर्गो पर मिलती है। अलंकार ग्रन्थों के उदाहरण रूप में इन्हीं सर्गो से श्लोक उद्धृत किए गये है। भाषा तथा कल्पना - सौन्दर्य की दृष्टि से भी अष्टम सर्ग कालिदास का रचा हुआ प्रतीत होता है। डॉ0 जैकोबी का भी मत है कि नवें से सत्तरहवें सर्ग तक की रचना महाराष्ट्र देश के किसी कवि ने की है।

वस्तुतः ये मन्तव्य अपुष्ट एवं अस्पष्ट आधारों पर निर्भर है। प्रथमतः मल्लिनाथी टीका कालिदास की प्रामाणिकता का आधार नहीं हो सकती, यदि इसे ही आधार माना जायेगा तो अभिज्ञान-शाकुन्तल जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थों को कालिदासकृत मानने में कठिनाई होगी। रही बात कुमार सम्भवम् की टीका पर तो इन्होंने केवल सात सर्गों पर ही टीका लिखी है, आठवें सर्ग की टीका अत्यन्त दोषपूर्ण है अतः मल्लिनाथ की कृति नहीं मानी जाती है।[2]

2. टीकाकार सीताराम कवि का भी यही मत है। "टीका सप्तसु मल्लिनाथकृतिना संजीवनी संज्ञिका, या सर्गेषु कुमारसंभवमहाकाव्यस्य चक्रे पुरा।[3] टीकाकार सीताराम कवि ने 8 से 17 सर्गो को कालिदास की कृति मानकर उनकी टीका भी की है।

3. वामन ने आक्षेपास्पद अष्टम सर्ग से ही उद्धरण दिया है।

4. कुमार या स्कन्द का जन्म-वर्णन 11वें सर्ग में है इससे पूर्व ग्रन्थ की समाप्ति का कोई कारण भी नहीं दीखता। आखिर कवि का उद्देश्य कुमार ग्रन्थ और तारकासुर वध ही तो है।

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय ।
2. कुमारसंभवम्, निर्णयसागर प्रेस - पृष्ठ 177 तथा 374 पर सम्पादक की टिप्पणी।
3. वही पर पृष्ठ 177 पर सीताराम कवि कृत प्रारम्भिक श्लोक ।

5. अन्तिम 9 सर्गो के बिना कुमार संभवम् का महाकाव्यत्व अपूर्ण रहता है।

6. भाव, भाषा, शैली आदि की हीनता के दोष सर्वथा अस्पष्ट और अपुष्ट है।

7. अन्तिम नौ सर्गो में भी भाव और भाषा की पुष्टि, प्रौढ़ता और आलंकारिकता, चमत्कार पदे-2 परिलक्षित होता है।

8. यदि भाषा और अलंकार आदि को ही इसका आधार माना जाये तो रघुवंश के अन्तिम सर्गो में भी ये न्यूनताएं सर्वथा सुलभ हैं।

9. कालिदास की मृत्यु भी इसका कारण नहीं क्योंकि यदि ऐसा होता तो रघुवंश जो कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है वह न रचा जाता। विद्वान् रघुवंश को कुमार सम्भव के बाद की रचना मानते हैं।

अतः पूरे सत्तरह सर्गो को कालिदास की रचना मानना सर्वथा न्याय संगत तथा युक्तियुक्त है।

कुमार-सम्भवम् का काव्य-सौन्दर्य

कला एवं भाव दोनों की दृष्टि से 'कुमार सम्भवम्' उत्तम महाकाव्य है। चाहे प्रकृतिवर्णन हो अथवा मानवीय हृदय का वर्णन, चाहे शिव-पार्वती की श्रृंगार चेष्टाओं का वर्णन हो अथवा रति के विलाप का, प्रत्येक वर्णन में महाकवि के शब्दों में चमत्कार है, जादू है, मनोहारिता है, रमणीयता है, जिससे प्रत्येक सहृदय सहजभावेन इसे पढ़कर अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है। वस्तु वर्णन तो इसका अनोखा है जिसकी तुलना में अन्य महाकाव्य न्यूनता को प्राप्त हो जाते हैं।[1]

---

1. संस्कृत के महाकवि एवं काव्य - डॉ0 रामजी उपाध्याय ।

कुमारसम्भवम् का आरम्भ हिमालय वर्णन से होता है। हिमालय का जैसा चित्रण कालिदास ने किया है, वैसा सम्भवतः अन्य किसी कवि ने नहीं किया है। उसे पढ़कर बरबस यह कहना पड़ता है कि कवि ने हिमालय को अवश्य देखा होगा। हिम, धातुमत्ता, निरन्तर होने वाली वृष्टि और पवन से शब्दायमान बाँस तो मोटी बातें हैं, सरल (देवदारू) वृक्षों के रस की सुगन्धि भी उनकी दृष्टि से नहीं बच पायी है। इस सबका वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि हाथी अपनी खुजली मिटाने के लिए सरल वृक्षों पर शरीर रगड़ता है। इससे वृक्षों की खाल उखड़ जाती है। उसमें से एक प्रकार का रस निकलता है जिससे हिमालय के शिखर सुगन्धित हो जाते हैं।[1] हिमालय पर रात के समय जब वनेचर अपनी प्रियाओं के साथ विहार करते हैं उस समय वहाँ गुफाओं में चमकने वाली औषधियाँ बिना तेल के ही सुरतप्रदीपों का काम करती हैं।[2] ये वनेचर रतिक्रीड़ा के समय जब अपनी प्रियतमा का वस्त्रापहार करते हैं तो किन्नरियाँ लजा जाती है। सहज रूप से गुफाओं के द्वार पर लटकने वाले मेघ परदे का काम करते हैं।[3]

---

1. कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
   यत्रस्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनिगन्धः सुरभी करोति ।। कुमार0 1/9 ।।

2. वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः ।।
   भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ।। कुमार0 1/10 ।।

3. यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किम्पुरूषाङ्गनानाम् ।
   दरीगृहद्वारबिलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ।। कुमार0 1/14 ।।

बल के घमण्ड में चूर नन्दी खुरों से बर्फ की चट्टानें पीट रहा है। भयभीत गवय सशंक दृष्टि से उसको देख रहे हैं। सिंह की गर्जना सुनकर भी वह डकार रहा है। कैसा स्वाभाविक वर्णन किया है कवि ने। इसे पढ़कर काशी की सड़कों पर घूमने वाले मस्त साड़ों का चित्र आँखों के सामने आ जाता है।[1] जिस पुण्य रूपी पात्र में भ्रमरी रस पीने लगी, भ्रमर भी उसी के साथ उसी पात्र में रस पान करने लगा। कृष्णसार मृग जब अपनी प्रियतमा को सींग से खुजलाने लगा तो प्रिय के स्पर्श से भावविहवला मृगी के नेत्र एकदम बन्द हो गये। सच ही कहा गया है कि प्रियतम द्वारा प्रेम पूर्वक किया गया स्पर्श अपार आनन्द देने वाला होता है।[2] सौन्दर्य में अपूर्व आकर्षण होता है। विश्व सुन्दरी गौरी के सुन्दर मुख को जब वीतराग व्रती शंकर देखते हैं तो चन्द्रदर्शन से समुद्र की भाँति उनका भी धैर्य कुछ डिगने लगा।[3]

---

1. तुषारसङ्घातशिताः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः ककुद्मान् ।
   दृष्टः कथञ्चिद् गवयैर्विविग्नैरसोढ़सिंहध्वनिरून्ननाद ।। कुमार0 1/56 ।।

2. मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौप्रियाम् स्वामनुवर्तमानः ।
   श्रृंगेण च स्पर्श निमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ।। कुमार0 3/36 ।।

3. हरस्तु किंचित् परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
   उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ।।

कामदेव को भस्म करने के निमित्त महादेव के तृतीय नेत्र से निकली हुई ज्वाला को देख डरी कामपत्नी रति मूर्च्छित हो गयी। अतः उसने काम को भस्म होते नहीं देखा। मूर्च्छा के दूर होते ही उसने देखा कि पुरूष के आकार की राख का ढेर पड़ा है दुःख से पगलाई रति बिलख-बिलख कर रोने लगी - हे प्रियतम। तुम जो कहते थे कि रति मेरे हृदय में रहती है, बिल्कुल झूठ है क्योंकि जब तुम्हारा समग्र शरीर जल गया तो मैं क्यों नहीं जली।[1] पानी की बूँदें क्षण भर बिरौनियों पर रूकती हैं। वहाँ से ओष्ठ पर टकराकर उन्हें घायल कर देती हैं। फिर उन्नत पयोधरों पर गिरकर चूर-चूर हो जाती है। वहां से खिसककर त्रिवली में लड़खड़ाती हुई बहुत देर में नाभि में पहुँचती हैं।[2] कुमार सम्भवम् में मनः स्थिति के भी कई सुन्दर चित्र मिलते हैं। जब शंकर पार्वती के सामने प्रकट होते हैं तो पार्वती लज्जा से काँपने लगती है। वहां से जाने के लिए उठाया गया पैर ऊपर ही रह गया। मार्ग में आये पर्वत के कारण आकुलिता नदी की भाँति पार्वती न आगे बढ़ सकीं, न ठहर सकीं।[3]

---

1. हृदये वसतीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम् ।
   उपचारपदं न चेदिदं त्वमनंगःकथमक्षता रतिः ।। कुमार0 4/9 ।।

2. स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताड़िताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः ।
   वलीषु तस्याः स्खलिता प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ।। कुमार0 5/24 ।।

3. तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टिर्निक्षेपणायपद्मुद्धृतमुद्वहन्ती ।
   मार्गाचलव्यतिकरा कुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।। वही 5/85 ।।

मनोरथपूर्ण होने पर व्यक्ति की मनः स्थिति कैसी हो जाती है। जब शंकर जी ने कहा कि हे अवनताङ्गि! आज से मैं तुम्हारा क्रीतदास हूँ। इतना सुनते ही गौरी का तपोजन्य सन्ताप दूर हो गया। सच है कि फलसिद्धि से मनुष्य सारा कष्ट भूल जाता है और उसका उत्साह ताजा हो जाता है।[1] कालिदास ललित भावों के कवि हैं। उनमें कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव सौन्दर्य पग-पग पर परिलक्षित होता है। पार्वती के वरचयन प्रसंग में कन्या सुलभ शालीनता एवं संकोच का क्या ही सुन्दर वर्णन है।[2] भावुक हृदय का मार्मिक एवं यथार्थ चित्र पाँचवें सर्ग में है। अभी रात्रि का चतुर्थांश ही व्यतीत हुआ है। शंकर के चिन्तन में निमग्न पार्वती की पलभर के लिए आँख लगी ही थी कि सहसा चौंक पड़ी। यद्यपि वहाँ शंकर विद्यमान नहीं थे फिर भी पार्वती को ऐसा लगा कि शंकर वहाँ हैं और 'नीलकण्ठ कहाँ जा रहे हो? कहकर शंकर के अस्तित्वहीन गले में बाहें डाल दीं।[3]

---

1. अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मिदासः
   क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
   अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
   क्लेशःफलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ।। कुमार0 5/86 ।।

2. एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
   लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ।। वही - 6/84।।

3. त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं
   निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत ।
   क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पित बाहुबन्धना ।। वही - 5/57 ।।

अपनी प्रिया पास हो, उसके साथ किसी प्रकार की रतिक्रीड़ा न हो फिर भी वह अपूर्व आनन्ददायिनी होती है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि लिखता है कि शंकर ने जब कुछ कहा तो पार्वती ने उत्तर नहीं दिया, आँचल पकड़ा तो जाने की इच्छा की, यद्यपि सेज पर करवट बदल कर सोती है फिर भी सरस चेष्टाओं के मर्मज्ञ शंकर के आनन्द का कारण है।[1]

कुमारसम्भवम् वैदर्भी रीति का महाकाव्य है। इसमें प्रसादगुण है। अर्थालङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अर्थान्तरन्यास विशेष रूप से सुलभ है। अनुप्रासादि शब्दालंकारों को लाने के लिए कवि ने यत्न नहीं किया है। महाकाव्य की भाषा परिष्कृत तथा मुहावरेदार है। अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करके पाण्डित्य-प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की गयी है। छन्दों का चयन अर्थानुरूप है। अङ्गीरस के रूप में श्रृंगार का प्रौढ़ वर्णन है। धर्म, अर्थ तथा काम में कवि ने धर्म को श्रेष्ठ माना है और मदनन्दाह के द्वारा काम पर धर्म की विजय को भी प्रदर्शित किया है। विश्व कल्याण मदन की उपासना में नहीं प्रत्युत उसके धर्मविरोधी रूप को दबाने में है और बिना तप के यह भावना जाग्रत नहीं होती। कालिदास ने काम का जलना दिखाकर यही चिरन्तन सत्य प्रकट किया है। तपस्या द्वारा पार्वती की मनोरथ सिद्धि का वर्णन करके कवि ने तपोवन और तपस्या में अपना विश्वास प्रकट किया है। संसार को कष्ट देने वाले तारकासुर का नाश करने के लिए देवताओं का प्रयास करना तथा कार्तिकेय का जन्म विश्व मंगल की कामना व्यक्त करते हैं।

---

1. व्याहृता प्रतिवचो न सन्दधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।
सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतमे पिनाकिनः ।। कुमार0 8/2 ।।

रघुवंश महाकाव्यम्

रघुवंश कालिदास की काव्यात्मक प्रतिभा का सर्वोत्तम निदर्शन है। कवि की असाधारण प्रतिभा का सहज प्रस्फुरण पदे-पदे परिलक्षित होता है। एक ओर भावसौन्दर्य है तो दूसरी ओर कला का चमत्कार। एक ओर भाषा में प्रसाद और माधुर्य है तो दूसरी ओर व्यंग्यार्थ का अपूर्व संयोजन। एक ओर संभोग-श्रृंगार का सुखद रसास्वाद है तो दूसरी ओर विप्रलम्भ श्रृंगार की मार्मिक अनुभूति। एक ओर वाह्य प्रकृति का विशद वर्णन है तो दूसरी ओर अन्तः प्रकृति का तात्विक विश्लेषण। एक ओर अजइन्दुमती के प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण है तो दूसरी ओर सीता-परित्याग का मार्मिक दृश्य। एक ओर दिलीप आदि का तपोमय जीवन है तो दूसरी ओर अग्निवर्ण की घोर विषयासक्ति। एक ओर राजा का आदर्श और उसकी प्रजावत्सलता है तो दूसरी ओर प्रजा की राजभक्ति। एक ओर राजतन्त्र का महत्त्व है तो दूसरी ओर प्रजा में विचार स्वातन्त्र्य। इस प्रकार रघुवंश में विविध विरोधी गुणों का समन्वय है। कहीं दार्शनिक पाण्डित्य प्रदर्शन है तो कहीं काव्यशास्त्रीय वैदुष्य, कहीं उपमा का मनोहर प्रयोग है तो कहीं अर्थान्तरन्यास की छटा, कहीं श्रमसाध्य यमक है तो कहीं सहज उत्प्रेक्षाएँ, कहीं वर्णन वैविध्य है तो कहीं कल्पना की ऊँची उड़ान। इस प्रकार कविताकामिनीकान्त कालिदास सभी दृष्टि से कवियों के लिए आदर्श बन गये। कालिदास के इसी वैशिष्ट्य के कारण ही कवियों तथा आलोचकों को कहना पड़ा - 'क इह रघुकारे न रमते'।[1]

---

1. सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम् ।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुराभारविगिर
स्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ।। सदुक्तिकर्णामृत - श्रीधरदास ।।

रघुवंश में कुल 19 सर्ग हैं जिनमें राम एवं उनके वंशजों का सर्वगुण समन्वित चरित्र का वर्णन किया गया है। इसका नामकरण दशरथ के पितामह रघु के नाम पर किया गया है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है -

1. राजा दिलीप की सन्तानहीनता और सन्तान प्राप्त्यर्थ कुलगुरू वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा का व्रत लेना।
2. नन्दिनी की सेवा, राजा की नन्दिनी द्वारा परीक्षा, प्रसन्न नन्दिनी द्वारा सन्तान लाभ का वरदान ।
3. रघु का जन्म, विद्याध्ययन, इन्द्र से युद्ध में विजयश्री की प्राप्ति, तथा रघु का राज्याभिषेक ।
4. रघु के दिग्विजय का वर्णन ।
5. रघु द्वारा विश्वजित् नामक यज्ञ का सफल सम्पादन, गुरू वरतन्तु के शिष्य ब्रह्मचारी कौत्स का गुरू दक्षिणा हेतु 14 करोड़ स्वर्ण मुद्रायें माँगना, तदर्थ रघु का कुबेर पर आक्रमण, धनवृष्टि, प्रसन्न कौत्स द्वारा रघु को पुत्र लाभ का आशीर्वाद, फलस्वरूप पुत्र अज का जन्म, इन्दुमती स्वयंवर हेतु अज का प्रस्थान ।
6. अज का इन्दुमती के गृह नगर पहुँचना, इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन।
7. अज – इन्दुमती का विवाह, प्रतिस्पर्धी राजाओं से युद्ध और अज की विजय ।
8. अज का राज्याभिषेक, दशरथ जन्म, इन्दुमती वियोग और अज-विलाप ।
9. दशरथ का मृगया वर्णन, श्रवण कुमार की हत्या और दशरथ को शाप ।
10. दशरथ द्वारा अयोध्या में पुत्रेष्टि यज्ञ, राम आदि चार पुत्रों का जन्म।
11. जनकपुत्री वैदेही का जनकपुर में स्वयंवर और राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न का विवाह।
12. राम का वन गमन, सीता हरण, राम का लंका पर आक्रमण, राम-रावण युद्ध तथा रावण वध।

13. राम का पुष्पक विमान से अयोध्या प्रत्यागमन तथा मार्गस्थ स्थलों का विशद वर्णन ।
14. राम राज्याभिषेक, सीता परित्याग, सीता का वाल्मीकि आश्रम में पहुँचना, वाल्मीकि द्वारा गर्भवती सीता की देखभाल अयोध्या में अश्वमेध यज्ञ।
15. लव कुश का जन्म, शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर वध, लवकुश का परिचय, राम लक्ष्मण आदि का सरयू के जल में प्रवेश, पृथिवी देवी में सीता का समा जाना।
16. कुश का राज्याभिषेक, कुश का कुमुद्वती से विवाह ।
17. कुश का स्वर्गवास, कुश पुत्र अतिथि का राज्याभिषेक ।
18. अतिथि तथा उसके वंशज राजाओं का संक्षिप्त वर्णन ।
19. अग्निवर्ण का राज्याभिषेक, उसकी अत्यधिक विषयासक्ति, राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर उसका स्वर्गवास, उसकी रानी का राज्याभिषेक, गर्भस्थ बालक के उत्तराधिकारी होने का अमात्यों द्वारा निर्णय। कुल मिलाकर रघुवंश में मनु से लेकर अग्निवर्ण तक 31 सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन है। प्रकृतिरंजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृति हिंसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है - यह उपदेश बड़े ही सुन्दर ढंग से रघुवंश के अनुशीलन से प्रकट हो रहा है।

रघुवंश का काव्य-सौन्दर्य

वाक् और अर्थ का - काव्य की अन्तर्निहित भाववस्तु एवं उसके अभिव्यंजक शब्द का परस्पर नित्य सम्बन्ध है, जैसे विश्वसृष्टि के आदि माता-पिता पार्वती परमेश्वर का। साहित्य के क्षेत्र में भी भावरूप महेश्वर और शब्दरूपा पार्वती दोनों एक दूसरे के आश्रित हैं। इसी कारण कवि इस ग्रन्थ की शुरूआत इसी बिन्दु से करता है।[1]

---

1. वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
   जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।। रघुवंश - मंगलाचरण ।।

रघु के वंश में उत्पन्न राजाओं के चरित का जैसा चित्रण महाकवि की लेखनी से हुआ वैसा उदान्त, आदर्श, महनीय एवं समाकर्षक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। ये राजा धन का संचय त्याग के लिए करते थे, मितभाषण सत्य बोलने के लिए करते थे, विजय की चाहत यशः प्राप्ति के लिए थी, पाणिग्रहण सन्तति लाभ के निमित्त करते थे।[1] राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के बीच कामधेनु-पुत्री नन्दिनी की स्थिति वैसे ही है जैसे दिन और रात के बीच सन्ध्या। सुन्दर कल्पनामूलक उपमा का उदाहरण है।[2]

विद्वान् गुरूओं और उनके शिष्यों का उस समय समाज में क्या स्थान था? इसका निदर्शन पाँचवे सर्ग में मिलता है। आदर्श गुरू वरतन्तु जो शिष्य द्वारा बार-बार आग्रह किए जाने पर भी एक फूटी कौड़ी नहीं चाहते किन्तु हठ करने पर क्रुद्ध होकर चौदह करोड़ मांग बैठते हैं। शिष्य कौत्स रघु के समीप धनपाचना हेतु जाता है किन्तु विश्वजित यज्ञ में सर्वस्व दान करने वाले रघु के पास अब मृत्तिकापात्र ही अवशिष्ट हैं तथापि वे कौत्स को धन देने हेतु कुबेर पर आक्रमण करके सम्पूर्ण धन कौत्स को देना चाहते हैं और कौत्स चौदह करोड़ से एक सिक्का भी ज्यादा नहीं लेना चाहता। साकेत निवासी रघु की अपूर्वदानशीलता तथा कौत्स की निर्लोभिता दोनों की प्रशंसा करते हैं।[3]

---

1. त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
   यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ।। रघुवंश 1/7 ।।
2. पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
   तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेवसन्ध्या ।। रघु0 2/20 ।।
3. जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ।
   गुरूप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ।। वही 5/31 ।।

कालिदास ने इन्दुमती की उपमा दीपशिखा से दी। यह उपमा विद्वानों को इतनी सुन्दर लगी कि उन्हें 'दीपशिखा कालिदास' कहा जाने लगा। वस्तुतः उपमा साधर्म्य नहीं अपितु सौन्दर्याभिव्यक्ति है। उपमा के प्रयोग से यदि चारूता, मनोहारिता न आयी तो वह उपमा नहीं वाचोयुक्ति मात्र है। 'इन्दुमती का स्वयंवर है। वह वरान्वेषण हेतु जिस राजा के सामने से गुजर जाती थी वह राजा विषादाकुल हो जाता था वह वैसे ही जैसे दीपशिखा के गुजर जाने से राजमहल अन्धकारावृत्त हो जाता है।[1] सचमुच सौन्दर्य की स्फुट अभिव्यक्ति तो विवर्णभाव में ही होती है। मानव के युवा मन की प्रकृति का बड़ा सुन्दर निदर्शन कालिदास ने इस उपमा द्वारा किया है। 'दम्पति के सुन्दर सम्बन्धों एवं समन्वयात्मक सम्पर्क की अभिव्यक्ति अज विलाप में परिलक्षित होती है। अज के लिए इन्दुमती न केवल गृहिणी थी अपितु मित्र, सचिव तथा ललितकलाविद् शिष्या थी। उसका वियोग अज का सर्वस्व हरण है। ऐसादाम्पत्य प्रेम अन्यत्र दुर्लभ है।'[2] पुष्पकविमान से लौटते हुए राम ने सीता से कहा था कि सीते! यह वही स्थल है जहाँ तुम्हारा एक नूपुर गिरा था बिल्कुल शान्त, चुप। लगता था कि तुम्हारे चरणों के वियोग से दुःखी होने के कारण उसका बोल न फूट रहा हो - सचमुच अतिशय दुःख में बकार बन्द हो जाती है।[3]

---

1. संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
   नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।। रघु0 6/67 ।।

2. गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
   करूणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किंन मे हृतम् ।। वही 8/67 ।।

3. सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
   अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ।। वही0 13/23 ।।

गंगा-यमुना के संगम-वर्णन में उत्प्रेक्षा अनुपम छटा प्रस्तुत करती है। यमुना की तरंगों से संश्लिष्ट गंगा ऐसी शोभित हो रही है, मानो साक्षात शिव की मूर्ति हो, जो एक ओर कृष्णसर्पो से वेष्टित हो और दूसरी ओर भस्मलेप से अलंकृत।[1] राम सरयू नदी को देखकर भावविभोर हैं और उसे माता कहकर सम्बोधित करते हैं। यह प्रकृति के मानवीकरण तथा उसके साथ तादात्म्य का अनूठा निदर्शन है।[2]

हमारे लिए कालिदास का एक महान् सन्देश है जो तीन तकारादि शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है - तपोवन, त्याग, तपस्या। तपोवन में पल्नी सभ्यता ही मानवों का सच्चा मंगल कर सकती है। क्षुद्र स्वार्थ का निवारण त्याग से होता है और सच्ची उन्नति तपस्या के बल पर हो सकती है। मानव जीवन का उद्देश्य संसार में आकर विषयों का दास बनना नहीं, प्रत्युत् भगवान् की सच्ची भक्ति कर तथा योग का साधन अपनाकर आत्मा के दर्शन में ही है। इस प्रकार कालिदास के महाकाव्य कोमल कला की दृष्टि से ही रोचक नहीं अपितु आध्यात्मिकता की दृष्टि से भी उपादेय हैं। इसका मूल कारण यही है कि कालिदास भारतीय कला के ही सर्वश्रेष्ठ कलाकार नहीं अपितु भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ व्याख्याता भी हैं।[3]

---

1. क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
   पश्यानवद्याङ्गि विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ।। रघु0 13/57 ।।

2. सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ।
   दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरंगहस्तैरूपगूहतीव ।। वही0 13/63 ।।

3. संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय - पृष्ठ - 168

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य

भारवि की कीर्ति - पताका संस्कृत -साहित्य में जिस ग्रन्थ के कारण फहरा रही है वह है किरातार्जुनीयम् महाकाव्य। इसके उदात्त गुणों के कारण ही इसकी गणना वृहत्त्रयी में की जाती है। वृहत्त्रयी का प्रथम रत्नभूत महाकाव्य है। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। महाभारत का छोटा सा कथानक भारवि की प्रतिभा एवं वर्णन विस्तार के कारण 18 सर्गो के वृहद् महाकाव्य का रूप धारण कर लेता है। सर्गानुसार इसकी कथा निम्न प्रकार है :-

1. द्यूतक्रीडा में पराजित एवं वनवास की अवधि बिताने वाले युधिष्ठिर, ने जिस किरात को दुर्योधन की नीति समझने के लिए हस्तिनापुर भेजा था वह वापस होकर दुर्योधन की नीति की प्रशंसा करता है। द्रौपदी युधिष्ठिर को शान्ति त्याग कर युद्ध करके राज्य को प्राप्त करने हेतु उत्तेजित करती है।

2. भीम द्वारा द्रौपदी के कथन का समर्थन, युधिष्ठिर द्वारा भीम को शान्त रहने की सलाह, वेद-व्यास का आगमन ।

3. युधिष्ठिर - व्यास संवाद, व्यास का अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिए हिमालय पर जाने का आदेश, अर्जुन का प्रस्थान ।

4. मार्ग-दर्शक यक्ष और अर्जुन हिमालय की ओर चलते हैं। मार्ग में शरद् की सुषमा का वर्णन, यक्ष के साथ अर्जुन का तपोभूमि हिमालय पर पहुँचना ।

5. यक्ष हिमालय के इन्द्रकील नामक पर्वत पर अर्जुन को तपस्या की सलाह देकर चला जाता है, हिमालय का वर्णन ।

6. हिमालय पर अर्जुन की तपस्या, तपोविघ्नार्थ इन्द्र का अप्सराओं को भेजना ।

7. तपस्या में विघ्न डालने हेतु अप्सराओं एवं गन्धर्वो का इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचना, अप्सराओं तथा गन्धर्वो की विलास-क्रीडा का वर्णन ।

8. गन्धर्वो एवं अप्सराओं की उद्यानक्रीडा और जलक्रीडा ।

9. सायंकाल, चन्द्रोदय, प्रभात तथा सुरत वर्णन ।

10. वर्षादि वर्णन, अप्सराओं का प्रयास विफल, अप्सराओं की चेष्टाओं का वर्णन ।

11. मुनिवेश में इन्द्र का आगमन, इन्द्रार्जुन संवाद, इन्द्र का पाशुपत अस्त्र प्राप्त्यर्थ अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश ।

12. अर्जुन की तपस्या, शूकर रूप में मूक दानव का अर्जुनवधार्थ्य आगमन।

13. शूकररूपधारी मूकदानव पर शिव तथा अर्जुन के बाणों का प्रहार, वराह मृत्यु, बाण के विषय में शिव के गण तथा अर्जुन में विवाद।

14. सेना सहित किरातवेशधारी शिव का आगमन और सेना के साथ युद्ध।

15. शिव एवं अर्जुन का भयंकर युद्ध ।

16. अर्जुन एवं किरातवेशधारी शिव का मल्लयुद्ध के लिए प्रस्तुत होना।

17. कोई अन्य उपाय न देखकर अर्जुन का चट्टानों एवं वृक्षों से शिव पर प्रहार, शिव द्वारा निष्फल किया जाना।

18. शिव-अर्जुन का बाहुयुद्ध, शिव का वास्तविक रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति, इन्द्र आदि का अर्जुन को विविध अस्त्र देना, सफल मनोरथ अर्जुन का युधिष्ठिर के समीप पहुँचना। भाईयों एवं द्रौपदी का अत्यन्त आह्लादित होना ।

किरातार्जुनीयम् का काव्य सौन्दर्य

यह महाकाव्य भाषा, भाव, काव्य-सौन्दर्य, रस-परिपाक, वर्णन-वैचित्र्य, अलंकार-प्रयोग, विविध, छन्दो योजना और शास्त्रीय-पाण्डित्य का सुन्दर निदर्शन है। भाषा में प्रौढ़ता, ओज, प्रवाह और शक्तिमत्ता है, शब्द-संचय भावानुकूल है। भावानुसार कहीं प्रसाद है, कहीं माधुर्य, कहीं ओज। भाषा में शैथिल्य का नितान्त अभाव है। अर्थगाम्भीर्य और अर्थगौरव की जितनी प्रशंसा की जाए वह थोड़ी सी है। पग-पग पर अर्थगौरव कवि के वैदुष्य और गम्भीर चिन्तन का परिचायक है। अलंकारों के प्रयोग में कवि की जादूगरी दर्शनीय है। 15वें सर्ग में चित्रालंकारों की बहुरंगी छटा इन्द्रधनुष की कान्ति को भी निष्प्रभ कर देती है। महाकाव्य में अंगीरस वीर है। श्रृंगार आदि अंगभूत हैं।[1] द्रौपदी और भीम की उक्तियों से वीर रस छलकता है।[2] भारवि का श्रृंगार कालिदास के समान शिष्ट एवं संयत नहीं अपितु इन्द्रियपरक और वासनायुक्त है। सुरत काल में सुन्दरियों का कर संचालन, सी-सी की ध्वनि करना, नेत्रार्धनिमीलन और उनके अस्पष्ट मधुर स्वर इस सबसे कामदेव धीरे-धीरे अपना सिक्का जमाने लगता है।[3]

---

1. श्रृंगारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीर प्रधानो रसः ।। मल्लिनाथ ।।

2. ज्वलतस्तव जातवेदसः सततं वैरिकृतस्य चेतसि ।
   विदधातु शमं शिवेतरा रिपुनारीनयनाम्बुसन्ततिः ।। किरात0 2/24 ।।

3. पाणिपल्लवविधूननमन्तः सीत्कृतानि नयनार्धनिमेषा : ।
   योषितां रहसि गद्गदवाचामस्त्रतामुपययुर्मदनस्य ।। वही0 9/40 ।।

श्रृंगार-वर्णन में कहीं-कही नग्नता भी परिलक्षित होती है। जलक्रीडा के समय नायिका ने हाथ में पानी लेकर नायक के ऊपर फेंकना चाहा। नायक ने हँसकर हाथ पकड़ लिया। नायक के स्पर्श के कारण नायिका कामातुर हो गयी। प्रेमविभोर पत्नी के वस्त्र नींवी खुल जाने से नीचे सरकने लगा किन्तु करधनी ने उसे रोक लिया और सखी के समान सहायता की।[1] नारी सौन्दर्य-निरीक्षण में भारवि दक्ष है। 'अपने सर्वोत्तम रूप में भारवि की शैली में एक प्रशान्त गरिमा है। जो निश्चय ही आकर्षक है। साथ ही वे सुन्दर वस्तुओं और युवतियों के सौन्दर्य-निरीक्षण में औरों से आगे हैं।[2] राजनीति के उत्कृष्ट सिद्धान्त का वर्णन भी इस महाकाव्य में अनूठा है। राजा और मन्त्री की परस्पर अनुकूलताहीं राज्य की समृद्धि का कारण है।[3] राजा के सैनिक योद्धा राजा के प्रिय कार्यो का सम्पादन करने हेतु अपने प्राणों की बाजी लगा देते है जिससे उनकी कीर्ति अक्षुण्ण है।[4]

---

1. विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः ।
   सखीव कांची पयसा घनीकृता बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम् ।। किरात0 8/51 ।।

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 कीथ ।

3. स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं
   हितान्न यः संश्रृणुते स किम्प्रभुः।
   सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
   नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ।। किरात0 1/5 ।।

4. महौजसौ मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
   नसंहतास्तस्य नभिन्नवृत्तयः प्रियाणि वांछन्त्यसुभिः समीहितुम् ।। वही 1/19 ।।

फूलों की शय्या पर शपन करने वाली द्रौपदी जंगल में जमीन पर सो रही है। इस नाते उसके मन में मलाल है। इसी कारण क्रोध-रहित युधिष्ठिर से बार-बार क्रोध उद्दीप्त करने वाली वाणी कहती है कि यद्यपि आज जैसे मनस्वियों को नारी का उपदेश उचित नहीं फिर भी मेरी व्यथायें मुझे कुछ कहने के लिए बाध्यकर रही हैं।[1] समझाने पर भी जब युधिष्ठिर क्रोधित नहीं होते तो द्रौपदी कहती है कि महाराज आप अब जटा धारण करके यज्ञ विधान करें।[2] इस प्रकार भारवि के हर पात्र के कथनोपकथन में स्पष्टता व सजीवता है। चाहे भीम हो या युधिष्ठिर, वनेचर हो या द्रौपदी। पदों में स्पष्टता, अर्थगौरवयुक्तता, अपुनरुक्त दोष, साकांक्षता-गुण का होना अनिवार्य है। यह बात भीम के प्रति युधिष्ठिर के वचनों में परिलक्षित होती है।[3] भारवि के अर्थान्तरन्यास की प्रियता ने सूक्तियों की संख्या में वृद्धि कर दी है। सूक्तियाँ अतीव मार्मिक एवं सारगर्भित है। उनका आधार अनुभव, राजनीति का परिपक्व ज्ञान एवं कवि की प्रतिभा है। सहसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए।[4]

---

1. भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
   तथापि वक्तुं व्यवसाययन्तिमांनिरस्तनारी समया दुराधयः ।। किरात0 1/28 ।।

2. अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्चिरायपर्येषि सुखस्य साधनम् ।
   विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं जटाधरः संजुहुधीह पावकम् ।। वही0 1/44 ।।

3. स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
   रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ।। वही0 2/27 ।।

4. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
   वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ।। वही0 2/30 ।।

एक निदर्शना जिसके कारण संस्कृत-दुनियाँ में भारवि को 'आतपत्र भारवि' के नाम से जाना जाता है। भाव है कि स्थल कमलिनी का वन खिला हुआ है उससे पराग झर रहा है। वायु के झोंके पराग को आकाश में बिखेर देते हैं। पराग आकाश में मण्डलाकार होकर फैल जाता है, और यह पीला पराग वैसे ही शोभा देता है जैसे कोई सोने का बना छाता (आतपत्र) हो।[1] कुछ पद्य तो केवल एक ही वर्ण से निर्मित है ये कवि की असाधारण प्रतिभा का ही परिचायक है।[2]

गुणगणमण्डित इस महाकाव्य में कतिपय दोष भी हैं। अतः उन पर भी विचार करना अपरिहार्य हो जाता है। भारवि ने अपने विपुल महाकाव्य के लिए जो कथानक चुना वह छोटा है। कथा में प्रवाह की भी कमी है। स्थान-स्थान पर पुनरूक्तदोष भी है। प्रथम तीन सर्ग अत्यन्त क्लिष्ट हैं इसी कारण 'पाषाणत्रय' कहे जाते है। इसीलिए मल्लिनाथ ने इस महाकाव्य को 'नारिकेलफल' कहा। प्रो0 सुरेश चन्द पाण्डेय[3] लिखते हैं कि भारवि में अर्थगौरव बिल्कुल है ही नहीं। छोटे कथानक का मनचाहा विस्तार किया है इसलिए अर्थगौरव की बात समाप्त हो जाती है। पता नहीं किस बात को देखकर मल्लिनाथ ने इस महाकाव्य को नारिकेल-फल कहा यह तो उस 'अर्जुन के फल' के समान है जिसको नोचने पर अन्त तक कुछ भी मिलने वाला नहीं।

वस्तुतः गुण दोष का ही समष्टि रूप मनुष्य है लेकिन प्रो0 सुरेश चन्द पाण्डेय ने जिस तरह भारवि की आलोचना की है वह दुराग्रहपूर्ण ही कही जा सकती है।

---

1. उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्धूतः सरसिजसम्भवः परागः ।
   वात्याभिर्वियतिविवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ।। किरात0 5/39 ।।

2. न नोननुन्नोऽनुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
   नुन्नो नुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ।। वही0 15/14 ।।

3. कवि और काव्यशास्त्र - डॉ0 सुरेश चन्द्र पाण्डेय ।।

शिशुपालवध महाकाव्य

यह महाकाव्य वृहत्त्रयी का द्वितीय रत्न है। भारवि ने जिस रीति-मार्ग की शुरूआत की वह माघकाव्य में आकर चरम पर पहुँच जाती है। माघ की कला में नर्तकी का सा हाव-भाव, विलास, माधुर्य तथा मनोरमता है। कहीं पद-संचार में मनोहारिता है तो कहीं रति-विलास में भावुकता, कहीं नीति-वचन रूपी कटाक्ष हैं तो कहीं सरस शब्दों का माधुर्य। इसीलिए रसिक सहृदयों का कथन है कि - "मेघे माघे गतं वयः।"[1] शिशुपाल वध में एक ओर कला पक्ष की प्रचुरता है तो दूसरी ओर भाव पक्ष की। एक ओर वीर रस का निरूपण है तो दूसरी ओर श्रृंगार का। एक ओर कोमल कान्त पदावली है तो दूसरी ओर दुर्बोध वाग्जाल। महाकाव्य की भाषा में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। इसमें ओज प्रसाद और माधुर्य तीनों गुण हैं। महाकाव्य में एक भाव या अर्थ के लिए प्रत्येक स्थान पर नया शब्द दिया गया है। इस प्रकार नौ सर्गो में एक विशाल राशि तैयार हो जाती है। इसी वैशिष्ट्य के आधार पर कहा गया - 'नवसर्ग गते माघे नवशब्दो न विद्यते।' परिष्कृत पद विन्यास के आचार्य संस्कृत भारती के महाभागवत कवि माघ की कीर्ति लता केवल एक महाकाव्य 'शिशुपाल वध' रूपी वृक्ष पर अवलम्बित है। इसमें देवर्षि नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्व जन्मों का विवरण, उसके अत्याचारों का उल्लेख, श्रीकृष्ण से उसके संहार की प्रार्थना, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पहुंचना तथा चेदि नरेश शिशुपाल के वध का वर्णन है। यह कथा बीस सर्गो में है। इस कथा का प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत और महाभारत दोनों थे। सर्गानुसार इसकी कथा निम्नलिखित है -

---

1. मल्लिनाथ ।

1. देवर्षि नारद का आगमन, श्रीकृष्ण द्वारा उनका सत्कार, नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्व जन्मों तथा अत्याचारों का वर्णन तथा श्रीकृष्ण को इन्द्र का सन्देश सुनाना और उन्हें शिशुपाल के वध हेतु उद्यत करना।
2. श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव की गुप्त मन्त्रणा, बलराम की शिशुपाल के वधार्थ तुरन्त अभियान की सलाह, नीतिज्ञ उद्धव का इस विषय में अधिक शीघ्रता न करके युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लेने का परामर्श ।
3. द्वारका से श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान, द्वारका, समुद्र तथा सेना का वर्णन ।
4. रैवतक पर्वत का हृदयहारी वर्णन ।
5. रैवतक पर्वत पर सैन्य शिविर का प्रस्थापन ।
6. षड्ऋतु वर्णन ।
7. वन-विहार वर्णन ।
8. जलक्रीडा वर्णन ।
9. सायंकाल, चन्द्रोदय, श्रृंगारादि का वर्णन ।
10. पानगोष्ठी और रात्रिक्रीडा वर्णन ।
11. प्रभात वर्णन का हृदयावर्जक रूप ।
12. श्रीकृष्ण के पुनः प्रस्थान और यमुना नदी का वर्णन ।
13. श्रीकृष्ण और पाण्डवों का मिलन, श्रीकृष्ण का नगर प्रवेश, दर्शक नारियों की विलासपूर्ण चेष्टायें ।
14. युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण - पूजा, भीष्म द्वारा उनकी स्तुति का वर्णन ।
15. शिशुपाल का क्रुद्ध होना और उसके पक्ष के राजाओं का युद्धार्थ तैयार होना।
16. शिशुपाल के दूत का श्रीकृष्ण की सभा में उभयार्थक वाक्यों का प्रयोग सात्यकि द्वारा उसका उत्तर और पुनः दूत द्वारा शिशुपाल के पराक्रम का वर्णन ।

17. श्रीकृष्णपक्षीय नृपों का अत्यन्त क्रुद्ध होना, श्रीकृष्ण की सेना की तैयारी और उसका प्रस्थान ।

18. दोनों सेनाओं का साक्षात्कार, घोर युद्ध का वर्णन ।

19. चित्रालंकार युक्त श्लोकों से विचित्र व्यूह रचना एवं युद्ध का वर्णन।

20. श्रीकृष्ण और शिशुपाल का शस्त्र युद्ध, दिव्यास्त्र युद्ध, वाग्युद्ध, शिशुपाल के अपशब्दों से क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का शिरच्छेदन। शिशुपाल के शरीर से विनिर्गत तेज का श्रीकृष्ण के शरीर में समा जाना।

शिशुपाल वध का काव्य सौन्दर्य

माघ काव्य में उपमा, अर्थगौरव, पदलालित्य - इन तीनों गुणों का दर्शन सहजता से प्राप्त हो जाता है। यद्यपि कुछ आलोचक इस आभाणक - "माघे सन्ति त्रयो गुणाः" को माघभक्त पण्डित का अविचारित रमणीय हृदयोद्गार भले ही बतावें, परन्तु वास्तव में इस साधु वचन में सत्यता अवश्य है। माघ में कालिदास जैसी उपमाएं भले न मिले, फिर भी इसमें न सुन्दर उपमाओं का अभाव है और न ही अर्थगौरव की कमी। पदों का ललित विन्यास तो निःसन्देह प्रशंसनीय है। माघकाव्य में ललित पदावली पायल जैसी झंकार करती चलती है। कोई भी पद अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ कुछ मनोरम दृष्टान्त निम्नलिखित हैं -

श्रीकृष्ण प्रस्थान करने ही वाले हैं कि स्त्रियाँ उन्हें घेर लेती है। ललित क्रीडाओं के मर्मी श्रीकृष्ण जिस पर कटाक्षपात करते हैं वह लज्जा से अवनत मुख वाली हो जाती है। जिसकी ओर नहीं देखते वह ईर्ष्यावश खुद ही कटाक्षपात करती हैं। इस प्रकार मुग्धा एवं रतप्रगल्भा दोनों प्रकार की रमणियों के ललित हाव-भावों का वर्णन कवि ने एक साथ किया है।[1]

---

1. यां यां प्रियः प्रैक्षतकातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव ।
निशंकमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः ।। शिशु0 3/16 ।।

रैवतक पर्वत के वर्णन में उद्भावित एक नवीन कल्पना माघ के 'घण्टामाघ' अभिधान का कारण बनती है। पर्वत की हाथी से तथा उसके दोनों ओर लटकने वाले सूर्य तथा चन्द्र की घण्टा से तुलना प्राचीन आलोचकों को इतनी रूची कि मुदितमन होकर उन लोगों ने माघ को 'घण्टामाघ' का विरूद दे डाला।[1] बसन्त ऋतु का वैभव मनोहारी होता ही है किन्तु माघ ने उसे यमक के साथ सन्निविष्ट करके और हृदयहारी बना दिया।[2] मधुकरी के मधुर गुंजन और कवि के शब्द पद गुंजन मे एक अनोखा साम्य है। पद पंक्ति नूपुर में गुछे घुंघुरू की तरह झंकार करती हुई आगे बढ़ती है।[3] माघ का प्रभात वर्णन भी सहृदयहृदयहार है। मालिनी छन्द तो उसकी शोभा और ही बढ़ा देता है। कुमुदवन कान्तिहीन हो रहा है कमलवन शोभायमान हो रहा है। उलूक हर्ष त्याग रहें हैं। चक्रवाक प्रसन्न हो रहा है। सूर्य उचित हो रहा है चन्द्रमा अस्त हो रहा है। आश्चर्य है कि दुर्दैव की चेष्टाओं का परिणाम विचित्र ही होता है।[4]

---

1. उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरूचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
   वहति गिरिरयं बिलम्बिघण्टाद्वय परिवारित वारणेन्द्रलीलाम् ।। शिशुपाल0 4/20 ।।

2. नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुट परागपरागतपङ्कजम् ।
   मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्ससुरभिं सुरभिं सुमनो भरैः ।। वही - 6/2 ।।

3. मधुरया मधुबोधित माधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
   मधुकराङ्गनया मुहरून्मद ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ।। वही - 6/20 ।।

4. कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
   त्यजतिमुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।
   उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
   हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः ।। वही - 11/64 ।।

माघकाव्य में अर्थगौरव की भी उत्कृष्ट परम्परा रही है। सूर्य उदित हो रहा है, वह अल्प वयस्क बालक के समान है, जो घुटनों के बल सरकता है उदयाचल पर्वत की चोटी ही वह आँगन है। छोटे बालक को घुटने के बल सरकती देखकर मातायें हर्षित होती है। उसी प्रकार कलियों के रूप में हँसी बिखेरनी वाली कमलिनियाँ मुदित हैं। जैसे माँ की गोद में जाने के लिए अधीर कोई बालक उछलकर टूट पड़ता है वैसे ही यह बाल सूर्य आकाशरूपी माँ की गोद में उछल रहा है।[1] शिशुपाल में श्रृंगारादि सभी रसों का समुचित समावेश हुआ है। कहीं द्वारका की लुभावनी सुन्दरियों का हृदयग्राही चित्रण है तो कहीं समुद्र द्वारा भूमि के आलिङ्गन का। देखिए रमणी का उतावलापन। सखियों के बीच में खड़ी प्रियतमा प्रियतम को देखकर तुरन्त वैसे ही लिपट गयी जैसे लता वृक्ष पर। उसने यह भी विचार न किया कि आखिर सखियाँ मन में क्या सोचेंगी।[2]

श्रृंगार-वर्णन में मर्यादित सीमा का अतिक्रमण, वर्णनों में क्रम का अभाव, भाषा का काठिन्य तथा चित्र बन्धों का प्रदर्शन खटकाने वाला है। किन्तु लोक की वस्तु का सर्वथा दोष रहित होना असम्भव है। कतिपय दोषों के होते भी इसके सत्काव्यत्व की हानि नहीं होती।

---

1. उदयशिखरश्रृङ्गप्राङ्गणेष्वेव रिङ्गन सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः ।
   विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः परिपतति दिवाङ्के हेलया बालसूर्यः
   ।। शिशु0 11/47 ।।

2. विलसितमनुकुर्वती पुरस्ताद् धरणिरूहादिखहो वधूर्लतायाः।
   रमणमृजुतया पुरः सखीनामकलित चापलदोषमालिलिङ्ग ।। वही0 7/46 ।।

नैषधीयचरितम् महाकाव्य

मध्यकालीन इतिहास – युग में लिखे गये महाकाव्यों में नैषधीयचरित महाकाव्य का नाम अगाध निष्ठा से लिया जाता है। इसके प्रणेता कविवर श्रीहर्ष ने इसके प्रणयन में अपने पाण्डित्य एवं कवि प्रतिभा दोनों का समन्वित निदर्शन इतने कौशल से किया है कि व्याकरण तथा दर्शन में गति रखने वाले विद्वानों और काव्य रचना में दूर की कल्पना में डूबने वाले सूक्त रक्षिकों को इसकी प्रशंसा के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं। यह महाकाव्य पाण्डित्य – प्रदर्शन, योग्यता, विद्वता और व्युत्पत्ति में सभी महाकाव्यों में अग्रगण्य है। इसीलिए इसे बृहत्त्रयी का सर्वोत्कृष्ट रत्न माना जाता है। इसकी भाषा में प्रौढ़ता के साथ परिष्कार भी है। दुरूह से दुरूह भावों को सरल शब्दों में प्रकट किया गया है। भाषा प्रांजल, प्रवाहपूर्ण, ध्वन्यात्मक तथा लयात्मक है। भावों के अनुसार भाषा में उतार – चढ़ाव भी है। ओज, प्रसाद तथा माधुर्य तीनों गुणों का सुमधुर समन्वय है। कल्पना की ऊँची उड़ान भावों को मनोरम और सुकुमार बना देती है। श्रीहर्ष का महाकाव्य सरस, सहृदय, व्युत्पन्न पाठकों के लिए शस्य-श्यामल, कुसुमित एवं सुरभित उपवन है किन्तु अव्युत्पन्न अरसिक कोमल बुद्धि वाले पाठकों के लिए नीरस एवं कण्टकाचित वन है। श्रीहर्ष के प्रौढ़ पाण्डित्यपूर्ण काव्य ने पण्डितमण्डली को यह कहने के लिए विवश कर दिया कि नैषध विद्वानों के लिए टॉनिक (औषध) है -'नैषधं विद्वदौषधम् ।'

इतना सब कुछ होते हुए भी नैषध में कुछ दोष हैं - अरूचिपूर्ण शैली, कल्पना की क्लिष्टता, श्रृंगार का अश्लील वर्णन, औचित्य का पूर्णतया निर्वाह न करना, भाव की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता आदि। किन्तु गुणसमवाय के कारण ये दोष नगण्य हैं। क्योंकि कालिदास की भी मान्यता है - "एको हि दोषो गुणसन्निपातेनिमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्कः ।"

नैषधीयचरित महाकाव्य में कुल बाईस सर्ग हैं। इसमें नल-दमयन्ती के प्रणय-परिणय का सांगोपांग वर्णन है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है -

1. नल और दमयन्ती का एक दूसरे के गुणों को सुनकर परस्पर आकृष्ट होना, नल का वन-विहार, नल द्वारा हस को पकड़ा जाना, हंस का करूण क्रन्दन, दयार्द्र होकर हंस को छोड़ना।
2. हंस का कृतज्ञतापन, दमयन्ती का गुणानुवाद, नल के आग्रह पर हंस का दमयन्ती के पास कुण्डिनपुरी जाना।
3. हंस का दमयन्ती के सामने नल का गुणानुवाद, दमयन्ती की नल के प्रति अनुरक्ति और हंस का नल के पास लौटना।
4. दमयन्ती की विकलता का भावपूर्ण वर्णन तथा पिता भीमसेन द्वारा स्वयंकर का निर्णय ।
5. इन्द्र, यम, वरूण और अग्नि का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना, नल द्वारा दौत्यभाव डर से स्वीकारा जाना।
6. अदृश्य नल का दमयन्ती के यहॉ पहुँचना और उसका सौन्दर्य दर्शन।
7. दमयन्ती का नखशिख वर्णन ।
8. नल का प्रकट होकर देवों का सन्देश दमयन्ती को सुनाना और चारों देवों में से किसी एक को वरण करने की सलाह।

9. नल दमयन्ती का वार्तालाप, दमयन्ती का देवों में से किसी को वरण न करने का निश्चय और नल को विवाहार्थ राजी करना।
10. दमयन्ती का स्वयंकर वर्णन ।

11-12. सरस्वती द्वारा राजाओं का परिचय दिया जाना।

13. पंचनली (चार देवता और नल) का सरस्वती द्वारा श्लेषयुक्त वर्णन।
14. देवो की स्वीकृति से दमयन्ती का नल से वरण करना और देवों द्वारा आशीर्वाद दिया जाना।

15. विवाह की तैयारी ।

16. विवाह संस्कार, विशेष वैवाहिक भोजन आदि का वर्णन ।

17. देवों का लौटते समय कलि से मिलना, कलि के मुँह से चार्वाकसिद्धान्त का वर्णन, देवों द्वारा चार्वाक सिद्धान्त का खण्डन, क्रुद्ध कलि द्वारा नल को राज्यच्युत तथा दमयन्ती से वियुक्त करने की हठ।

18. नल दमयन्ती का समागम, कामक्रीडा का वर्णन ।

19-22. नल दमयन्ती की दिनचर्या, देवस्तुति, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि का वर्णन, नल दमयन्ती का विलास वर्णन, कवि-वृत्त वर्णन ।

नैषधीयचरित का काव्य-सौन्दर्य

नैषध में काव्य – सौन्दर्य पदे-पदे परिलक्षित होता है, कहीं प्रसाद, कही माधुर्य तथा कहीं ओज है। प्रसाद और माधुर्य के साथ पदलालित्य सोने में सुहागा का काम करता है। काव्य की लयात्मकता और संगीतात्मकता, श्रुतिसुखद तथा मनोभावों के लिए आह्लादक है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं - उस दमयन्ती के चरणों से कमलों ने घृणा धारण की। उसके बाहु इतने कोमल थे कि पल्लव में उसका लेशमात्र भी नहीं था। मुखड़ा इतना सुन्दर था कि पूर्णमासी का चाँद उसकी दासता के योग्य भी नहीं था।[1] दमयन्ती के यौवन का जैसे-जैसे विस्तार हो रहा है वैसे-वैसे नल का अनुराग भी बढ़ रहा है।[2]

---

1. अधारि पद्मेषु तदङि.घ्रणा घृणा
   क्वतच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे ।
   तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां
   न शारदः पार्विक शर्वरीश्वरः ।। नैषध0 1/20 ।।

2. यथोह्यमानः खलुभोगभोजिना प्रसह्य वैरोचनिजस्य पत्तनम् ।
   विदर्भजाया मदनस्तथा मनो नलावरूद्धं वयसैव वेशितः ।। वही0 1/32 ।।

चन्द्रमा के कलंक पर कवि कल्पना की ऊँची उड़ान कितनी उत्कृष्ट है। नल की दिग्विजय यात्राओं में घुड़दौड़ से जो धूलराशि समुद्र में जा गिरी वही कीचड़ होकर समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा में कलंक के रूप में दिखाई पड़ती है।[1] यही नहीं नल के तीव्रगामी घोड़े आधे आकाश तक पहुँचकर इसलिए लज्जित होकर लौट आये कि विष्णु ने एक पैर से आकाश को नाप लिया था, हम चार पैरों से आकाश को क्यों नापें?[2] करूण के प्रवाह में भाव-सौष्ठव और प्रसाद-गुण का मनोहर प्रयोग भी है। हंस को जब नल पकड़ लेते हैं तो वह बरबस छुड़ाने का प्रयास करता है किन्तु जब असफल हो जाता है तो करूण क्रन्दन करने लगता है कि हे विधि! मैं वृद्धा माता का एकमात्र पुत्र हूँ। बेचारी पत्नी भी अभी नव-प्रसवा है। मैं ही उन दोनों का आश्रय हूँ। ऐसे मुझे मारते हुए क्या तुझे दया नहीं आती?[3]

---

1. यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम ।
   तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ। ।। नैषध0 1/8 ।।

2. हरेर्यदक्रामि पदैककेन खं पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य नः ।
   त्रपाहरीणामिति नम्रितानतैर्न्यवर्तितैरर्धनभः कृतक्रमैः ।।वही 1/70 ।।

3. मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
   गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहोविधे त्वां करूणा रूणद्धि नो ।। वही 1/135 ।।

नैषध में श्रृंगार-रस अंगी है और रस अंगभूत है। संभोग पक्ष अत्यन्त व्यापक है। यद्यपि श्रीहर्ष में कालिदास जैसा रस परिणाक नहीं है तथापि भावप्रवणता का प्राचुर्य है। 18वें सर्ग में नल-दमयन्ती के प्रथम समागम[1] का विस्तृत वर्णन किया है। उसमें एक प्रसंग अनूठा है। लोक एवं व्याकरण में पद प्रयोग के विषय में सदा से विवाद चलता आ रहा है। व्याकरण को बड़ा घमण्ड है कि जो शब्द मैं सिद्ध करूंगा, लोक को उसे ही प्रयोग में लाना होगा, परन्तु लोक भी बड़ा बदमाश किस्म का होता है वह किसी नियत रास्ते पर ही चलना पसन्द नहीं करता जिस पगदण्डी से चल दिया वही मार्ग बन जाता है। शायद यही कारण है कि पद प्रयोग के विषय में लोक का प्रमाण व्याकरण से अधिक है। व्याकरण शब्द की साधुता-असाधुता पर केवल विचार कर सकता है लेकिन एक भी शब्द बनाकर भाषा के बाजार में बेंच नहीं सकता। भाषा में तो वही शब्द प्रचलित होते हैं जिनका लोक में प्रयोग होता है। लोक व्याकरण के घमण्ड को चूर-चूर कर डालने में खूब ही समर्थ हुआ। तभी तो मृग धारण करने पर भी तथा व्याकरण की दृष्टि से समीचीन होने पर भी लोक शशी के जोड़-तोड़ पर चन्द्रमा को मृगी कहकर नहीं पुकारता।[2] वैयाकरणों पर यह श्रीहर्ष की मजेदार चुटकी है।

---

1. वल्लभस्य भुजयोः स्मरोत्सवे दित्सतोः प्रसभमङ्कपालिकाम् ।
   एककश्चिरमरोधि बालया तल्पयन्त्रणनिरन्तरालया ।। नैषध0 18/43 ।।

2. भङ्क्तुं प्रभुर्व्याकरणस्य दर्पं पदप्रयोगाध्वनि लोक एष ।
   शशो यदस्यास्ति शशी ततोऽयमेवं मृगोऽस्यास्ति मृगीति नोक्तः ।। वही0 22/84 ।।

13वें सर्ग में पंचनली प्रसंग[1] में सरस्वती ने जो पंचार्थक पद्य का प्रयोग किया है वह श्रीहर्ष की अपनी ही सरस्वती (वाणी) है। यह वैदुष्य के साथ-साथ काव्य-सौन्दर्य का भी विलक्षण उदाहरण है। कवि की अद्भुत कल्पना से सम्पन्न तथा अपरिमेय व्युत्पत्ति से समृद्ध होकर भी मृदु पदावली, प्रसाद गुण तथा वैदर्भी शैली के कारण नैषध सदा से विद्वानों का कण्ठहार रहा है। इसी वैदर्भी शैली की प्रशंसा करते हुए (कवि) हंस ने उचित ही कहा था।[2]

---

1. देवः पतिर्विदुषि नैष धराजगत्या
   निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या ।
   नायं नलः खलु तवातिमहानलाभो
   यद्येनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते ।। नैषध0 13/34 ।।

2. धन्यासि वैदर्भि गुणैरूदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि ।
   इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ।। वही0 3/116 ।।

कुमारसम्भवम् में वर्णित पौराणिक आख्यान

पृथु द्वारा पृथिवी दोहन (1/2) शंकर द्वारा पराजित कामदेव (1/41) शंकर के अपमान से क्रुद्ध सती द्वारा शरीर त्याग (1/53) शंकर द्वारा गजचर्म धारण किया जाना (1/54) तारकासुर से पीड़ित देवताओं का सत्यलोक में ब्रह्माजी के पास पहुँचना (2/1) वृत्तासुर वध (2/20) तारकासुर का आतंक (2/41-48) तारकासुर को ब्रह्माजी द्वारा देवताओं द्वारा अबध्य होने का वरदान (2/56) शेषनाग द्वारा पृथ्वी को धारण करना (3/13, 59, 6/68) मदनदाह (3/72, 4/3 6/3) जलमग्न पृथ्वी को वराहावतार लेकर ऊपर लाना (6/8) गंगा का विष्णु के चरणों से निकलना (6/70) वामनावतार (6/71) गंगा-यमुना द्वारा सुन्दर शरीर धारण करना (7/42) त्रिपुर – विजय (7/48, 12/28) सागर-मन्थन (8/23, 14/18) रावण द्वारा कैलास पर्वत उठाया जाना (8/24) कपोतवेशधारी अग्नि का शिव-पार्वती संभोग के समय अन्तःपुर में पहुँच जाना (9/5) पार्वती का क्रोध तथा अग्नि को शाप (9/16) कृत्तिकाओं द्वारा गंगा में स्नान एवं गर्भ धारण (9/43) कार्तिकेय का जन्म (10/59, 60) अन्धकासुर का वध (12/19) देवमाता अदिति एवं महर्षि काश्यप द्वारा कुमार कार्तिकेय को आशीर्वाद प्राप्ति (13/46) कार्तिकेय द्वारा क्रौंचपर्वत का भेदन (15/35) परशुराम द्वारा 21 बार क्षत्रियों का विनाश (15/36) इन्द्र द्वारा पर्वतों का पंख काटा जाना (1/20, 17/29) तारकासुर वध (17/50) ।

रघुवंशमहाकाव्यम् में वर्णित पौराणिक आख्यान

शेषनाग द्वारा पृथ्वी का भार उठाया जाना (3/74) शिव के वीर्य को गंगा द्वारा धारण किया जाना (3/75) त्रिपुर-संहार (3/52) सागर का मन्थन (3/59, 4/27) इन्द्र द्वारा पर्वतों का पंखभेदन (3/60, 5/30, 9/12) शिव-जटा से निःसृत गंगा (4/32) अगस्त्य मुनि का दक्षिण-गमन (4/44) समुद्र द्वारा परशुराम को शरण देना (4/58) रावण द्वारा कैलास पर्वत को उठाया जाना (4/80, 23/89) देवताओं द्वारा चन्द्रकला का पान (5/16) परशुराम द्वारा 21 बार क्षत्रियों का वध किया जाना (6/42, 11/65) अगस्त्य द्वारा विन्ध्यपर्वत को झुकाना तथा समुद्र का पान करना (6/01, 15/55) देवासुर संग्राम (6/72) प्रहलाद द्वारा वामन भगवान् के चरण को बीच में ही रोका जाना (7/36) वराहावतार (7/56, 13/8, 77) कार्तिकेय द्वारा क्रौंच पर्वत का भेदन (9/2) मधु नामक राक्षस का विनाश (9/48) रावण के अत्याचार से भयभीत देवताओं का विष्णु की शरण में जाना (10/5) इन्द्र के वज्र की चोट से घायल गरूड़ की कथा (10/13) विष्णु के चरणों से गंगा का निकलना (10/37) रावण का अपने शिर काटकर शिव को चढ़ाना (10/41, 12/89) मदन दाह (11/13) वामनावतार (8/78, 11/22, 14/16, 15/40, 16/28) गौतम ऋषि द्वारा अहल्या को शाप (11/33-34) शिव का मृगरूपधारी यज्ञ पर बाण प्रहार (11/44) श्रवण कुमार के माता-पिता का दशरथ को शाप (12/10) इन्द्र के मूर्ख पुत्र जयन्त का सीता के स्तनों में ठोर मारना (12/22) षडानन कार्तिकेय का छओं कृत्तिकाओं का एक साथ स्तनपान (14/22) लवणासुर-वध (15/2, 26) कपिल की कोपाग्नि में दग्ध सगर के 60 हजार पुत्रों पर गंगा की कृपा (17/14) भृगु का विष्णु के वक्ष पर चरणों से प्रहार (17/29) दक्ष के शाप से चन्द्रमा को क्षयरोग (19/48)।

किरातार्जुनीयमहाकाव्य में वर्णित पौराणिक आख्यान

विष्णु का इन्द्र के अनुज (उपेन्द्र) के रूप में वर्णन (1/24) गजचर्म से आवृत्त भगवान शंकर (5/2) त्रिपुरासुर-विनाश (5/14, 13/17, 18/12) सागर-मन्थन (5/30, 9/28) सागर में मैनाक का छिपना (7/20) वृत्तासुर की कथा (12/26) खाण्डववन का अग्नि में दग्ध होना (13/11, 14/10) वराहावतार (14/40) वामनावतार (16/19) महान् तेजस्वी जहनु ऋषि द्वारा गंगा को अपने में समाहित करना (17/52) ।

शिशुपालवध महाकाव्य में वर्णित पौराणिक आख्यान

वराहावतार की कथा (1/34, 39, 14/43, 15/17, 18/25, 19/116) नृसिंहावतार (1/47, 3/14, 14/72) रावण द्वारा कैलास पर्वत को उठाया जाना (1/50) गजासुर- वध (1/4) रावण द्वारा यमराज के भैंसे की एक सींग उखाड़ना (1/57) जरासन्ध- वध (2/60) सागर-मन्थन (2/107, 3/82, 8/64, 11/8, 20/56) अगस्त्य का दक्षिण दिशा में जाना (3/1) जम्बू द्वीप में नवखण्डों का वर्णन (4/31) इन्द्र के वज्र से पर्वतों का पंखभेदन होना (5/31, 9/80, 13/15, 20/73) गरूड़ का म्लेच्छों को निगलना (5/66) मदनदाह (8/33) ब्रह्मा की मूर्तिस्वरूपा संध्या का वर्णन (9/14) चन्द्रमा का समुद्र से ऊपर उठना (9/30, 14/68) शकटासुर वध (11/3, 15/37) इन्द्र द्वारा वृत्तासुर वध (11/56) विष्णु का प्रलयान्त में सागरवास (11/66, 14/68, 15/23, 17/47) नरकासुर वध (8/15, 12/3, 16/8) वामनावतार (1/41, 13/12, 14/74, 19/116) पारिजातहरण (13/12, 14/84) त्रिपुरासुर पर शंकर की विजय (13/19)

मत्स्यावतार, कूर्मावतार (13/28) परशुराम द्वारा क्षत्रिय - वध (13/52, 18/70) राहु द्वारा चन्द्रमा को ग्रसना (14/78) कार्तवीय अर्जुनरूपी वन का परशुराम द्वारा विनाश (14/80) ययाति की कथा (15/27) अरिष्टासुर की कथा (15/35, 16/8) राजा पृथु का वर्णन (17/11) कंस द्वारा नन्दगोप की कन्या का वध तथा उसका कालिकादेवी के रूप में प्रकट होना (18/50) बाणासुर वध (3/61, 19/14) सूर्य का राहु द्वारा ग्रसा जाना (20/45) शिशुपाल-वध (20/78) ।

नैषधीयचरित महाकाव्य में वर्णित पौराणिक आख्यान

बाणासुर की अग्निपरिवेष्टित पुरी में प्रद्युम्न का प्रवेश (1/32, 2/87) प्रद्युम्न द्वारा शम्बरासुर वध तथा मायावती (रति) स विवाह (1/54, 6/14, 7/65) वामनावतार (1/70, 1/124, 15/130, 17/81, 21/43, 61, 95, 96) मदन का भस्म होना (1/87, 4/76, 80, 99, 8/33, 9/71, 10/61, 15/83, 18/138, 21/132) शिवपूजा बहिष्कत केतकी (1/78, 10/52, 12/110) राहु द्वारा चन्द्र ग्रसन (1/96, 4/64, 71, 73, 12/94, 22/66, 136, 148) मैनाक का सागरवास (1/116) स्वर्ग से रम्य पाताल लोक (18/27) कार्तिकेय का नैष्ठिक ब्रह्मचर्य (2/33) मत्स्यावतार (3/57, 17/64, 21/55) अगस्त्य का सागरपान (4/51, 22/67) अन्धकासुर- वध (4/97) जरासन्धोत्पत्ति (4/69) दधीचि का अस्थिदान एवं वृत्तासुर वध (5/111) अगस्त्य द्वारा विन्ध्य पर्वत का झुकाना (5/130) सूर्यदव की सन्तानें (5/136, 13/17, 18, 19, 19/45, 47, 54) पृथुचरित एवं पृथ्वी दोहन (11/10, 12/20) सप्तद्वीप वर्णन (11/27, 29, 30, 37, 38, 39, 40, 49, 50, 51, 58, 59, 60, 67, 69, 70, 73, 77, 84, 85, 86) अग्नि से सुवर्ण की उत्पत्ति (13/10) बलराम द्वारा यमुना - कर्षण

(15/31) पुरूरवा-उर्वशी अनुराग (15/83) दुर्वासा का इन्द्र को शाप (16/31) त्रिपुरदाह (1/17, 4/87) गुरूपत्नी द्वारा में चन्द्रमा की आसक्ति (17/44, 18/23, 22/118) ब्रह्मा का अपनी कन्या के साथ दुर्वृत्त (17/122, 18/20) सूर्यभक्तसाम्ब (21/32) द्वादश केशव मूर्तियां (21/41) परशुराम द्वारा 21 बार क्षत्रिय-वध (21/65, 66, 67) पारिजात हरण (10/24, 21/78) विष्णु के सितकेश रूप बलराम (21/84) दत्तात्रेय अवतार (21/93) हरिहर की कथा (21/102, 104) शर्कराचल का दान (21/153) अत्रिनेत्र से चन्द्रमा की उत्पत्ति तथा दक्ष की सत्ताईस कन्याओं से विवाह (22/73, 127, 133) चन्द्रमा की सागर से उत्पत्ति (4/50), 51, 61, 16/30, 22/43, 133) सागर-मन्थन (6/80) शुक्र द्वारा कच को संजीवनी विद्या का दान (19/15) विश्वामित्र द्वारा त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजना (2/102, 11/3, 17/111) गौतम का इन्द्र और अहल्या को शाप (17/43, 18/21, 20/70) मन्देह नामक राक्षसों पर सूर्य की प्रात्यहिक विजय (19/41) शम्भुदारूवनसम्भुजि क्रिया (18/24) मार्कण्डेय का विष्णु के उदर में प्रवेश (2/91, 10/30, 12/95, 21/108) तारा देवी की कथा (22/134)।

xxxxx

पंचम अध्याय : प्रमुख पौराणिक आख्यान एवं महाकाव्यों में उनका वर्णन

गजासुर वध[1]

गजासुर महिषासुर नामक राक्षस का पुत्र था। जब उसने सुना कि देवताओं से प्रेरित होकर देवी ने मेरे पिता को मार दिया था, तब उसका बदला लेने की भावना से उसने घोर तप किया। तब ब्रह्माजी ने उसकी प्रार्थनानुसार उसे वरदान दे दिया कि वह काम के वशीभूत किसी भी स्त्री या पुरूष से नहीं मरेगा, महाबली और अजेय होगा। यही नहीं उसने यह भी वर प्राप्त कर लिया कि मरने के बाद उसकी खाल का पृथिवी से स्पर्श होने पर वह पुनः जीवित हो उठेगा। इसके बाद वह त्रिलोक के व्यक्तियों को पीड़ित करने लगा। दुःखी देवताओं ने शंकरजी से प्रार्थना की कि प्रभो ! आप गजासुर का वध करें। देवों की प्रार्थना पर भगवान शंकर ने गजासुर को मारकर उसके चमड़े को शरीर पर धारण कर लिए। इस प्रकार वह आज तक पुनर्जीवित न हो सका और शंकरजी कृत्तिवासा कहलाने लगे।

कुमारसम्भवम् में गजचर्म को धारण कर तपश्चर्या करने वाले जितेन्द्रिय भगवान शंकर की चर्चा,[2] किरातार्जुनीयम् में अट्टहास से श्वेत पीछे गजचर्म से आवृत भगवान शिव का उल्लेख,[3] शिशुपालवधम् में ताण्डव नृत्य के उत्सव पर गजराज के चर्म को धारण करने वाले शिव की चर्चा है।[4]

---

1. शिव पुराण - रूद्र संहिता के अध्याय 57 के पृष्ठ 415 पर
2. स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गङ्गाप्रवाहोक्षित देवदारूः।
   प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि किंचित्क्वणत्किन्नरमध्युवास ।। कुमार0 1/54 ।।
3. तपनमण्डलदीपितमेकतः सततनैशतमोवृतमन्यतः ।
   हसितभिन्नतमिस्रचयं पुरः शिवमिवानुगतं गजचर्मणा ।। किरात0 5/2 ।।
4. नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढ़कर्पूरपरागपाण्डुरम् ।
   क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना।। शिशु0 1/4 ।।

वामनावतार[1]

महाभारत, पद्मपुराण, वायु – पुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण, नारदपुराण तथा भागवतपुराण में लगभग एक ही प्रकार की कथा है कि प्राचीन काल में दानवराज बलि देवताओं को पराजित कर तीनों लोकों पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए यज्ञ करने लगा। भयभीत देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने वामन रूप धारण किया और बलि से तीन पग भूमि मांगी। बलि ने इसे स्वीकार कर लिया तो विराट् रूप धारण कर वामन ने तीन पग में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नाप लिया और बलि को पाताल लोक भेज दिया। इसके बाद भी बलि वामन भगवान् की स्तुति करता रहा तो प्रसन्न भगवान् वामन ने दिव्य चक्षु देकर अपना दर्शन कराकर मोक्ष भी प्रदान कर दिया। विष्णु त्रिविक्रम तथा उपेन्द्र नाम से विख्यात हुए।

कुमारसम्भवम् में एक बार उल्लेख है - विष्णु की महिमा संसार में तब फैली जब वामनावतार धारण करके तीन पगों में ही तीनों लोकों को नाप लिया।[2] किरातार्जुनीयम् में भी एक बार ही इसकी चर्चा है - भगवान् पुरूषोत्तम का मध्यम पद आकाश है।[3] रघुवंशमहाकाव्यम् में पाँच बार वामनावतार का उल्लेख है - तीन पैरों से नये त्रिलोक में कालत्रय का ज्ञान-नेत्र से दर्शन,[4] राम का वामन के पवित्र आश्रम में गमन[5] इन्द्र के छोटे भाई के रूप में।[6]

---

1. ऋग्वेद - 8/12/27
2. तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमा हरेः ।
   त्रिविक्रमोद्यतस्यासीत्स तु स्वाभाविकस्तव ।। कुमार0 6/71 ।।
3. पुंसः पदं मध्यममुत्तमस्य द्विधेव कुर्वन्धनुषः प्रणादैः ।
   नूनं तथा नैष यथास्य वेषः प्रच्छन्नमप्यूहयते हि चेष्टा ।। किरात0 16/19 ।।
4. पुरूषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च ।
   स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति ।। रघुवंश0 8/78 ।।
5. वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरूपेयिवान् ।
   उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः वही0 11/22 ।।
6. सीता तमुत्थाय जगाद वाक्यं प्रीतास्मि ते सौम्य ! चिराय जीव ।
   बिडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थंपरवानसि त्वम् ।। वही0 14/59 ।।

इन्द्र के छोटे भाई के रूप में[1,2]। शिशुपालवधम् में इस कथा का चार बार उल्लेख है - उपेन्द्र के रूप में[3] वामनवेष धारी भगवान श्रीकृष्ण,[4] विरोचन के पुत्र बलि से पृथ्वी को प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्र का अनुज होना[5] विचित्र पद न्यास करने वाले वामन भगवान।[6]

---

1. तमभ्यनन्दत्प्रणतं लवणान्तकमग्रजः ।
   कालनेमिवधात्प्रीतस्तुराषाडिव शार्ङ्गिणम् ।। रघुवंश0 15/40 ।।

2. तस्य प्रयातस्य वरूथिनीनां पीडामपर्याप्तवतीव सोढुम् ।
   वसुन्धरा विष्णुपदं द्वितीयमध्यायरोहेव रजश्छलेन ।। वही0 16/28 ।।

3. तदिन्द्रसंदिष्टमुपेन्द्र यद्वचः क्षणंमया विश्वजनीनमुच्यते ।
   समस्तकार्येषु गतेन धुर्यतामहिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम् ।। शिशु0 1/41 ।।

4. शिरसि स्म जिघ्रति सुरारिबन्धने छलवामनं विनयवामनं तदा ।
   यशसेव वीर्यविजितामरद्रुमप्रसवेन वासितशिरोरुहे नृपः ।। वही0 13/12 ।।

5. दीप्तिनिर्जितविरोचनादयं गां विरोचनसुतादभीप्सतः ।
   आत्मभूरवरजाखिलप्रजः स्वर्पतेरवरजत्वमाययौ ।। वही0 14/74 ।।

6. सदामदबलप्रायः समुद्धृतरसो बभौ ।
   प्रतीतविक्रमः श्रीमान्हरिर्हरिरिवापरः ।। वही0 19/116 ।।

नैषध में इस कथा के कई प्रसंगों का स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है। वामन के आकाश में उठे एक चरण का,[1] बलि-यज्ञ-विध्वंसकारी कपटपूर्ण वामन रूप का,[2] सत्यपाश में बंधे बलि का,[3] बलि के बाँधे जाने का,[4] बलिबंधकारी विष्णु का,[5] वामन की बलि से की गयी कपटपूर्ण बात का,[6] वामन जैसे लघु तथा त्रिविक्रम जैसे विराट रूप का,[7] त्रिविक्रम के आकाश में उठे पैर, जाम्बवान की प्रदक्षिणा तथा बलि को बाँधने के लिए पाश का[8] उल्लेख है।

---

1. हरैर्यदक्रामि पदैककेन खं - नैषध0 1/70
2. विधाय मूर्तिं कपटेन वामनीं स्वयं बलिध्वंसिविडम्बिनीयम् ।। वही0 1/124 ।।
3. अद्य यावदपि येन निबद्धौ न प्रभू बिचलितुं बलिविन्ध्यौ ।। वही0 5/130 ।।
4. दत्वा सर्वधनं मुग्धो बन्धनं लब्धवान्बलिः ।। वही0 17/81 ।।
5. मेचकोत्पलमयी बलिबन्धुस्तद्वलिस्रगुरसि स्फुरति स्म ।। वही0 21/43 ।।
6. स्वेनपूर्यत इयं सकलाशा भो नमम किं भक्तेति ।
   त्वं बटुः कपटवाचि पटीयान् देहि वामन। मनः प्रमदं नः ।। वही0 21/61
7. वामनादणुतमादनु जीयास्त्वं त्रिविक्रमं तनूभृतदिक्कः ।। वही0 21/95 ।।
8. मां त्रिविक्रम पुनीहि पदेते किं लगन्नजनिराहुरूपानत् ।
   किं प्रदक्षिणनकृद् भ्रमिपाशं जाम्बवानदित ते बलिबन्धे ।। वही0 21/96 ।।

नृसिंहावतार

विष्णु अवतारों के प्रसंग में अग्नि, विष्णु, वामन, भागवत तथा नृसिंह पुराणों ने नृसिंहावतार का विस्तृत वर्णन किया है। हिरण्यकशिपु नामक राक्षस ने घोर तपस्या करके भगवान् शंकर को प्रसन्न कर लिया। जब शंकर ने उससे वर माँगने को कहा तो उसने माँग की कि "मैं न दिन में मरूँ न रात में, न पक्ष में मरूँ न मास में, न वर्ष में मरूँ न संवत्सर में, न पृथ्वी पर मरूँ न आकाश में, न जल में मरूँ न थल पर, न किसी अस्त्र से न शस्त्र से, न मनुष्य से मरूँ न देवता से, न राक्षस से और न यज्ञ, विद्याधर, गन्धर्व पशु, अण्डज, स्वेदज आदि से मरूँ।" इस प्रकार का वरदान प्राप्त कर हिरण्यकशिपु उपद्रव मचाने लगा, मनुष्यों, देवताओं, ऋषियों-मुनियों को सताने लगा। उसके उपद्रव से दुःखी देवों ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की तब भगवान् विष्णु ने नृसिंहावतार लेकर सन्ध्या के समय गोधूलि में देहली के मध्य अपने जंघा पर रखकर नखों से चीरकर मार डाला।

शिशुपालवध में इस कथा का तीन प्रसंगों में उल्लेख है - विशाल सिंह शरीर धारण कर नखों से विदीर्ण करने का,[1] हिरण्यकशिपु के प्राणों को हरने वाले नखों का[2] अपने कोमल नखों से हिरण्यकशिपु की छाती की खुजली दूर करने का[3] उल्लेख है।

---

1. सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंहसैंहीमतनुं तनुं त्वया ।
   स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरूरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः।। शिशु0 1/47 ।।
2. प्राणच्छिदां दैत्यपतेर्नखानामुपेयुषां भूषणतां क्षतेन ।
   प्रकाशकार्कश्यगुणौ दधानाः स्तनौ तरूण्यः परिवबुरेनम् ।। वही0 3/14 ।।
3. दिव्यकेसरिवपुः सुरद्विषो नैव लब्धशममायुधैरपि।
   दुर्निवाररणकण्डु कोमलैर्वक्ष एष निरदारयन्नखैः ।। वही0 14/72 ।।

मत्स्यावतार[1]

हयग्रीव नामक दानव ने वेदों का हरण कर लिया था तो उसी के उद्धार हेतु भगवान् विष्णु को मत्स्यावतार धारण करना पड़ा। एक दिन मनु तर्पण कर रहे थे। उनके हाथ में एक छोटी मछली गिरी। उसने मनु से रक्षा की प्रार्थना की। मनु ने उसे कमण्डल में डाल दिया। वहाँ वह एक दिन-रात में बड़ी हो गयी। अतः मनु ने उसे दूसरे जलपात्र में डाल दिया किन्तु वहाॅ भी बढ़ी। मनु ने कुआँ, तालाब अन्ततः समुद्र में पहुँचा दिया और उसे बढ़ते ही देखकर कोई दिव्य प्राणी समझा। अन्त में मत्स्य रूप विष्णु ने सन्तुष्ट हो मनु को अपना परिचय दिया और उन्हें शीघ्र होने वाले प्रलय की चेतावनी दी और रक्षा के उपाय बताये। जल प्लावन होने पर मनु तथा वेद की रक्षा किए और मनु की प्रार्थना पर उन्हें सृष्टि आदि के विषय में अनेक उपदेश दिए।

शिशुपाल में एक बार - लोक की रक्षा के लिए मत्स्य का[2] तथा नैषध में तीन बार - श्रीवत्साङि्.कत होने के कारण मत्स्य रूप के पूज्य होने का,[3] मत्स्य रूप विष्णु के मनु को उपदेश देने का[4] तथा मत्स्य रूप में छिपे विष्णु के समुद्र जल को अपनी पूँछ से उछालने का[5] उल्लेख है।

---

1. मत्स्यपुराण अध्याय 1, भागवतपुराण 8/24 महाभारत वनपर्व अध्याय 187
2. असकृद्गृहीतबहुदेहसंभवस्तदसौ विभक्तनवगोपुरान्तरम् ।। शिशु0 13/28 ।।
3. श्रीवत्सलक्ष्मेव हि मत्स्यमूर्तिः ।। नैषध0 3/57 ।।
4. मत्स्यस्याप्युपदेश्यान्वः ।। वही0 17/64 ।।
5. छद्ममत्स्यवपुषस्तव पुच्छास्फालनाज्जलमिवोद्धतमब्धेः ।। वही0 21/55 ।।

वराहावतार

मत्स्य, कूर्म, वामन, नृसिंह आदि अवतारों की भाँति वराहावतार की कथा विष्णुपुराण, वराह पुराण, भागवत पुराण में दी गयी है।

हिरण्याक्ष नाम का एक राक्षस था। उसने एक बार पृथ्वी को विश्व-सिन्धु के तल में ले जाकर छिपा लिया। पृथ्वी की रक्षा के लिए भगवान् विष्णु ने वेद यज्ञमय वराह (सूकर) का रूप धारण कर जल में प्रवेश किया। पृथिवीदेवी ने उन्हें प्रणाम किया और स्तुति करने लगी। पृथिवीदेवी की प्रार्थना पर वराह भगवान ने अपने थूथुन पर रखकर पृथिवी का उद्धार किया और हिरण्याक्ष का वध भी कर डाला।

कुमारसम्भवम् में महावराह द्वारा दाँतों पर रखी पृथ्वी का,[1] रघुवंश में वराह भगवान् रूपी विष्णु का प्रलयकालीन जल को चीरने का,[2] वराह द्वारा पृथिवी का उद्धार करने का,[3] आदि वराह द्वारा प्रलय से पृथ्वी के उद्धार का[4] किरातार्जुनीयम् में महान् समुद्र से पृथ्वी को निकालने के इच्छुक वराह का[5] उल्लेख है।

---

1. आसक्तबाहुलतया सार्धमुद्धृतया भुवा ।
   महावराह दंष्ट्रायां विश्रान्ताः प्रलयापदि ।। कुमार0 6/8 ।।
2. रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान् दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः ।
   निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ।। रघुवंश0 7/56 ।।
3. रसातलादादिभवेनपुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ।
   अस्पाच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ।। वही0 13/8 ।।
4. तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वी ... ।। वही0 13/77 ।।
5. महर्षभस्कन्दमनूनकन्धरं वृहच्छिलावप्रघनेन वक्षसा ।
   समुज्जिहीर्षुं जगतीं महाभरां महावराहं महतो र्णवादिव ।। किरात0 14/40 ।।

शिशुपाल वध में पाँच-छः स्थलों पर - पाताल लोक से पृथ्वी को शेषनाग के फनों पर टिकाने वाले वराह का,[1] हिरण्याक्ष रूपी महाबलवान् हाथी का वध करने वाले वराह का,[2] हिरण्याक्ष आदि उपद्रवियों द्वारा अस्थिर की गई पृथ्वी को स्थिर करने वाले आदिवराह का,[3] जल में निमग्न पृथ्वी-मण्डल का उद्धार करने वाले का,[4] समुद्र में डूबे हुए पृथ्वी-मण्डल को ढूँढ़ने के लिए संसार-व्यापी लहरों को हटाने वाले आदि वराह का,[5] वराहावतार धारण कर पृथ्वी को उभारने वाले का[6] उल्लेख मिलता है।

---

1. निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः ।
   जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरसु भूतलम् ।। शिशु0 1/34 ।।
2. करोति कंसादिमहीभृतां वधाज्जनो मृगाणामिव यत्तवस्तवम ।
   हरे हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः प्रत्युत् सा तिरस्क्रिया ।। वही0 1/39 ।।
3. आद्यकोलतुलितां प्रकम्पनैः कम्पितां मुहुरनीदृगात्मनि।
   वाचिरोपितवताऽमुना मही राजकाय विषया विभेजिरे ।। वही0 14/43 ।।
4. क्षितिपीठमम्भसि निमग्नमुदहरतः यः परः पुमान् ।। वही0 15/17 ।।
5. बभ्रामैको बन्धुमिष्टं दिदृक्षुः सिन्धौ वाद्यो मण्डलं गोर्वराहः ।। वही0 18/25
6. सदामदबलप्रायः समुद्धृतरसो बभौ ।
   प्रतीतविक्रमः श्रीमान्हरिर्हरिरिवापरः ।। वही0 19/116 ।।

रावण को शिव से वर-प्राप्ति एवं उसके द्वारा कैलास पर्वत को उठाना[1]

हिरण्यकशिपु ने मरने के पश्चात् दूसरे जन्म में रावण के रूप में अवतार लिया। रावण ने तपस्या के द्वारा शिवजी को प्रसन्न करना चाहा। जब उसकी तपस्या से भगवान् शिव प्रसन्न न हुए तो उसने यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। पुनः जब भगवान् शिव प्रसन्न न हुए तो वह अपने शिरों को काट-काटकर कुण्ड में हवन करने लगा। इस प्रकार नवें सिर को काटकर जब दसवाँ सिर काटने को उद्यत हुआ तो भगवान् शिव ने उसे मनोवाछित वर माँगने को कहा। रावण ने अतुल शक्ति माँगी। शिवजी ने 'एवमस्तु' कहकर वरदान दे दिया। इसी शक्ति की परीक्षा में उसने एक बार कैलास पर्वत को उठा लिया। पार्वती भयभीत होकर शिव के गले में लिपट गयी। इस प्रकार स्वेच्छा से प्रियतमा के द्वारा किए गए आलिंगन से शिवजी को अपार आनन्द प्राप्त हुआ। शिव को आनन्दित कर रावण ने मानो अपने वर का बदला चुका दिया।

कुमारसम्भव में - रावण की भयंकर ध्वनि सुनकर पार्वती के भयभीत होने का,[2] रघुवंश में - रावण द्वारा 9 सिरों को काटकर चढ़ाने का[3] तथा रावण द्वारा सिर काटकर चढ़ाने एवं कैलास उठाये जाने का[4] उल्लेख है। शिशुपालवध में - कैलास पर्वत को उठाकर शिव-पार्वती को मिलाने वाला रावण का[5] वर्णन है।

---

1. स्कन्द-पुराण - महेश्वर खण्ड.
2. रावणध्वनितभीतया तया कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनः ।। कुमार0 8/24 ।।
3. स्वासिधारापरिहृतः कामं चक्रस्य तेन मे ।
   स्थापितो दशमो मूर्धा लभ्यांश इव रक्षसा ।। रघुवंश 10/41 ।।
4. जेतारं लोकपालानां स्वमुखैरर्चितेश्वरम् ।
   रामस्तुलितकैलासमारातिं बह्वमन्यत ।। वही0 12/89 ।।
5. समुत्क्षिपन्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः ।
   त्रसत्तुषाराद्रिसुताससंभ्रम स्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ।। शिशु0 1/50 ।।

श्रीकृष्ण और बाणासुर युद्ध[1]

एक बार बाणासुर ने भगवान् त्रिलोचन को प्रणाम करके कहा था कि हे देव! क्या कभी मेरी इन भुजाओं को सफल करने वाला युद्ध होगा? तो शंकरजी ने कहा कि जिस समय तेरी मयूर-चिहन वाली ध्वजा टूट जायेगी उसी समय तेरा इच्छित युद्ध होगा। कालान्तर में इसकी ध्वजा टूट गयी और उसी समय अप्सरा श्रेष्ठ चित्रलेखा अनिरूद्ध को योगबल से उषा के पास पहुँचा दिया बाणासुर ने अनिरूद्ध को नागपाश में बाँध दिया। नारद के द्वारा ज्ञात होने पर श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न सभी ने बाणासुर की नगरी शोणितपुर प्रस्थान किया। अग्निपरिवेष्टित नगरी को गरूड़ ने आकाश गंगा का जल लाकर शान्त किया। तदनन्तर शोणितपुर में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण एवं बाणासुर में भयंकर युद्ध हुआ। बाणासुर की तपस्या से प्रसन्न हुए भगवान शिव ने भी इसकी ओर से युद्ध किया, किन्तु अन्त में हार खानी पड़ी। सुदर्शन चक्र से बाणासुर की हत्या करने को उद्यत श्रीकृष्ण ने शिव की प्रार्थना पर अभयदान दिया। कृष्ण सपरिवार द्वारकापुरी आ गये।

शिशुपालवध में - बाणासुर के युद्ध में शम्भु की शक्ति को क्षय करने वाले श्रीकृष्ण का,[2] प्रद्युम्न द्वारा बाणासुर को हराने का,[3] नैषध में दमयन्ती के यौवनोद्गम के साथ-साथ नलानुराग वर्णन में,[4] कुण्डिनपुर के वर्णन में[5] इस पौराणिक कथा का उल्लेख है।

---

1. विष्णु-पुराण - पंचम अंश - अध्याय 33, हरिवंशपुराण विष्णु-पर्व, अध्याय ।। 6-125 ।।
2. बाणाहवव्याहितशंभुशक्तेरासत्तिमासाद्य जनार्दनस्य ।। शिशु0 3/6। ।।
3. कृतस्य सर्वक्षितिपैर्विजयाशंसया पुरः ।
   अनेकस्य चकारासौ बाणैर्बाणस्य खण्डनम् ।। वही0 19/14 ।।
4. यथोह्यमानः खलु भोगभोजिना प्रसध्य वैरोचनिजस्यपत्तनम् ।
   विदर्भजाया मदनस्तथा मनो नलावरूद्धं वयसैव वेशितः ।। नैषध0 1/32 ।।
5. अनलैः परिवेषमेत्यया ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मभिः ।
   उदयं लयमन्तरा खेरवहद्बाणपुरीपरार्ध्यताम् ।। वही0 2/87 ।।

पारिजातहरण[1]

नरकासुर के वध के उपरान्त श्रीकृष्ण देवमाता अदिति का दर्शन करने और उनका कुण्डल देने स्वर्ग लोक गये। कृष्ण ने देवमाता को प्रणाम करके उन्हें उनके कुण्डल समर्पित कर दिए। उस समय सत्यभामा शची के महल में गयी। इन्द्राणी ने उनका यथोचित सत्कार किया। उसी समय सेवकों ने इन्द्र का भेजा हुआ सुन्दर पारिजात का पुष्प शची को दिया। सत्यभामा से बिना पूछे ही शची ने उस पुष्प को अपने केशों में गूँथ लिया। सत्यभामा इस अपमान से बड़ी क्रुद्ध हुई और कृष्ण से शची की दुरिच्छा को बताया। प्रियतमा की बात सुनकर कृष्ण ने पारिजात का वृक्ष ही उखाड़ लिया और गरूड़ पर लादकर द्वारका की ओर बढ़े। इस पर इन्द्र को बड़ा क्रोध आया और कृष्ण-इन्द्र संग्राम हुआ, परन्तु पराजित इन्द्र ने पारिजात का स्वर्ग से जाना सह लिया। कृष्ण ने उसे सत्यभामा के महल में लगाया। एक संवत्सर बीतने पर पुण्यक व्रतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में पहुँचा दिया।

यह कथा हरिवंश में बड़े विस्तार से तथा पद्मपुराण की कथा से कुछ भिन्न रूप में वर्णित है। हरिवंश[2] में तो एक जगह पद्मपुराण जैसा ही कथानक है।

शिशुपाल वध में दो स्थल पर - प्रथम पारिजात के पुष्प रूपी यश से सुवासित केशराशि का,[3] द्वितीय देवताओं के परिश्रम को दूर करने वाले पारिजात की छाया का[4] उल्लेख है।

---

1. पद्मपुराण - उत्तरखण्ड - अध्याय 276, हरिवंश पुराण अध्याय 65-76, विष्णु-पुराण - पंचम अंश अध्याय 30, ।।
2. हरिवंश - 2/64 ।।
3. शिरसि स्म जिघ्रति सुरारिबन्धने छलवामनंविनयवामनं तदा ।
   यशसेव वीर्यविजितामरद्रुमप्रसवेन वासितशिरोरूहे नृपः ।। शिशु0 13/12 ।।
4. नात्तगन्धमवधूय शत्रुभिश्छायया च शमितामरश्रमम् ।
   योऽभिमानमिव वृत्रविद्विषः पारिजातमुदमूलयद्दिवः ।। वही0 14/84 ।।

नैषध में भी पारिजात-हरण का दो बार वर्णन है। प्रथम दमयन्ती स्वयंवर में इन्द्रादि चारों देवों का कृतक-नल-रूप धारण कर उपस्थित होने पर पाँचवे वास्तविक नल के बिना उस सभा के वर्णन में श्रीहर्ष उसे पारिजात रहित अन्य देव वृक्षों से युक्त स्वर्गपुरी के समान बताते हैं।[1] द्वितीय - विष्णु के कृष्णावतार की स्तुति करते हुए नल के दान के विषय में भगवान् के हाथों को पारिजात से बढ़कर बताया गया है।[2]

इन्द्र द्वारा पर्वत पक्षभेदन [3]

कृतयुग में पर्वतों के भी पंख थे, जिससे वे विशाल गरूड़ की भाँति चारों ओर उड़ा करते थे, उनके उड़ने से देव, ऋषि, नर तथा अन्य जीव डर के मारे काँपते रहते थे कि ऐसा न हो कि हमारे ही ऊपर कोई पर्वत बैठ जाय। इस प्रकार भयाक्रान्त जीव जन्तु एवं पृथिवी को देखकर इन्द्र कुपित हुए और वज्र से पर्वतों का पंख काट डाला तब से जो पर्वत जहाँ गिरा वही पड़ा रहा और इन्द्र 'गोत्रभिद्' नाम से प्रसिद्ध हो गये। कुमारसम्भव में इस कथा का एक बार - क्रुद्ध इन्द्र के वज्र से कटे हुए पहाड़ों के पंख का[4] उल्लेख है।

---

1. सभा नलश्रीयमकैर्यमाद्यैर्नलं विनाभूद्धृतदिव्यरत्नैः
   भामाङ्गणप्राघुणिके चतुर्भिर्देवद्रुमैर्द्यौरिव पारिजातैः ।। नैषध0 10/24 ।।
2. ते हरन्तु दुरितव्रततिं मे यैः स कल्पविटपी तव दोर्भिः ।
   छद्मयादवतनोरूदपाटि स्पर्धमान इव दानमदेन ।। वही0 21/78 ।।
3. वाल्मीकिरामायण - सुंदर काण्ड - सर्ग 1/115-119, श्रीमद्भागवतपुराण ।।
4. पेतुःक्षितौ कुपितवासववज्रलूनपक्षस्य भूधरकुलस्य तुलां वहन्ति ।। कुमार0 17/29 ।।

रघुवंश में तीन बार इन्द्र द्वारा पर्वत-पक्ष-भेदन का उल्लेख है। पहाड़ों के पंख काटने में कुशल इन्द्र का,[1] वज्र से काटकर गिराये गये सुमेरू के टुकड़े के समान सुवर्ण राशि का,[2] इन्द्र द्वारा सौ नोक वाले वज्र से पर्वतों के पंखों को काटने का[3] वर्णन है।

शिशुपाल वध में इस कथा का चार बार उल्लेख है। प्रथम - इन्द्र के हाथ से फेंके गये वज्र से छिन्न पंख वाले पर्वत का,[4] द्वितीय - इन्द्र के गोत्रभिद् रूप का,[5] इन्द्र द्वारा वज्र प्रहार से पूर्व पर्वतों का एक दूसरे से आलिंगन करने का,[6] इन्द्र द्वारा प्रयुक्त वज्र की चोट से कटे हुए गरूड़ के पंख के समान पर्वत का[7] विस्तृत विवरण मिलता है।

---

1. स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः ।
   महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे ।। रघुवंश0 3/60 ।।
2. दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम् ।। वही0 5/30 ।।
3. शमितपक्षबलः शतकोटिना शिखरिणां कुलिशेन पुरन्दरः ।। वही0 9/12 ।।
4. ये पीन्द्रपाणितुलितायुधलूनपक्षाः।। शिशुपाल0 5/31 उ।।
5. तदयुक्तमङ्.ग तव विश्वसृजा न कृतं यदीक्षणसहस्रतयम् ।
   प्रकटीकृता जगति येन खलु स्फुटमिन्द्रताद्य मयि गोत्रभिदा ।। वही0 9/80 ।।
6. परिशिश्लिषुः क्षितिपतीन्क्षितीश्वराः ।
   कुलिशात्परेण गिरयो गिरीनिव ।। वही0 13/15 ।।
7. प्रयतः प्रशमं हुताशनस्य क्वचिदालक्ष्यतमुक्तमूलमर्चिः ।
   बलभित्प्रहितायुधाभिघातात्त्रुटितं पत्रिपतेरिवैकपत्रम् ।। वही0 20/73 ।।

शिव पूजा - बहिष्कृत केतकी[1]

एक बार ब्रह्मा एवं विष्णु में महानता के विषय में विवाद हुआ। दोनों देवता इसके निर्णय हेतु शिव के पास गये। शिव ने अपने ज्योतिर्लिंग का विस्तार किया। विष्णु नीचे पाताल लोक की ओर चले और ब्रह्मा शिरोभाग का पता लगाने के लिए ऊपर सत्यलोक की ओर गये। विष्णु ने पाताल में कहीं उस लिंग शरीर का अन्त न पाकर अपनी हार ब्रह्मा जी से स्वीकार कर ली किन्तु ब्रह्मा ने झूठे ही कह दिया कि मैंने शिवलिंग के शिरोभाग का अन्त पा लिया और इसके लिए केतकी पुष्प तथ सुरभी गौ को साक्षी बनाया, किन्तु उसी समय आकाशवाणी हुई कि ब्रह्मा ने झूठ बोला है। उसके बाद केतकी शिव-पूजा से सदा के लिए बहिष्कृत हो गया और ब्रह्मा के जिस मुँह से यह बात कही गयी थी शिव ने उसे काट लिया और सुरभीगाय मर्त्यलोक में भेज दी गयी।

नैषध में इस पौराणिक कथा का तीन बार उल्लेख है। केतकी के शिव पूजा वर्जित होने[2] ब्रह्मा के शिवलिंग शिरोभाग देखे बिना ही केतकी से झूठी गवाही दिलवाने[3] और केतकी के रूद्र कोपभाजन होने के अंशों में[4] इस कथानक का विवरण मिलता है।

---

1. स्कन्द-पुराण - माहेश्वरखण्ड - केदारखण्ड अ0 6 तथा अरूणाचल माहात्म्य 10/150
   शिवपुराण - विद्येश्वर संहिता अध्याय 6/8 एवं लिंगपुराण अ0 7/19 ।।
2. विनिद्रपत्रालिगतालिकैतवान्मृगाड्.कचूड़ामणिवर्जनार्जितम् ।
   दधानमाशासु चरिष्णु दुर्यशः स कौतुकी तत्र ददर्श केतकम् ।। नैषध0 1/78
3. लैड्.गीमदृष्ट्वापि शिरःश्रियं यो दृष्टौ मृषावादितकेतकीकः ।। वही0 10/52
4. उत्कण्टका विलसदुज्ज्वलपत्रराजिरामोदभागनपरागतरातिगौरी ।
   रूद्रक्रुधस्तदरिकामधिया नले सा वासार्थितामधृत कांचनकेतकीव ।। वही0 12/110

मदनदाह[1]

शंकर द्वारा कामदेव को भस्म करने की कथा मत्स्य, ब्रह्म, शिव आदि पुराणों में वर्णित है। कथा का रूप लगभग एक जैसा है। कालिदास की लेखनी का संस्पर्श पाकर यह कथा सहृदयहृदयहार बन गयी। इन्द्र की प्रेरणा से मदन देवकार्य साधने के लिए कैलास पर तपस्यारत भगवान् शिव के हृदय में पार्वती के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के लिए बसन्त के साथ जाता है और वहाँ सहकार वृक्ष की आड़ से शिव के हृदय में सम्मोहन बाण चलाता है। क्षण भर के लिए पार्वती के ध्यान में चंचल होते हुए मन को वश में करके शिव ने इसका कारण जानने हेतु चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और आम्रवृक्ष पर मदन को देख अत्यन्त क्रोध से अपना तीसरा नेत्र खोल दिया। फलतः देवों के हाहाकार के साथ ही मदन क्षण भर में भस्म हो गया। रति के करूण विलाप करने एवं प्रार्थना करने पर शिव ने वरदान दिया कि शिव-पार्वती विवाह के समय मदन पुनः जीवित हो उठेगा।

कुमारसम्भव में इस कथानक का तीन बार - शंकरजी के नेत्र से उत्पन्न आग से कामदेव के जलने का,[2] शंकर की क्रोधाग्नि में जले हुए कामदेव की पुरूष के आकार में केवल भस्म का,[3] कामदेव को भस्म करने वाले शंकर का[4] उल्लेख है। रघुवंश में भी भगवान शंकर द्वारा काम को जलाने का[5] एक बार वर्णन है।

---

1. मत्स्य-पुराण, अध्याय 154

2. क्रोधं प्रभो! संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरूतां चरन्ति ।
   तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनंचकार ।। कुमार0 3/72 ।।

3. अयि जीवितनाथ! जीवसीत्यभिधायोत्थितया तया पुरः ।
   ददृशे पुरूषाकृति क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम् ।। वही0 4/3 ।।

4. स तथेति प्रतिज्ञाय विसृज्य कथमप्युमाम् ।
   ऋषीञ्ज्योतिर्मयान् सप्त सस्मार स्मरशासनः ।। वही0 6/3 ।।

5. स्थाणुदग्धवपुषस्तपोवनं प्राप्य दाशरथिरात्तकार्मुकः ।
   विग्रहेण मदनस्य चारूणा सोऽभवत् प्रतिनिधिर्न कर्मणा ।। रघु0 11/13 ।।

शिशुपालवध में इस कथा का एक बार - त्रिनेत्र शंकर जी की नयनाग्नि की ज्वाला से दग्ध कामदेव की सेना का[1] उल्लेख है। नैषध में तो दस स्थलों पर इस कथानक का वर्णन करके श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य को चमत्कारी, व्युत्पत्तिपरक तथा पाण्डित्यपूर्ण बनाने का सफल प्रयास किया है। मदन के शंकर पर बाण चलाने,[2] शिव के द्वारा मदन को अपने तीसरे नेत्र से भस्म करने,[3] शिव द्वारा प्राणहरण से बचे शरीर का,[4] लोकशान्ति हेतु शंकर के नेत्रों से निकली ज्वालाओं के लिए काम के शरीर रूप हवि का,[5] शिव की नेत्राग्नि में कन्दर्प के अपने शरीर को हवन करने का,[6] शिव की कोपाग्नि से मदन के भस्म रूप हो जाने का,[7] शिव द्वारा मदन को विनष्ट करने,[8] मदन के शिव की क्रोधाग्नि में जलने,[9] मदन की रूद्र को जीतने की इच्छा[10] तथा त्रिनेत्र द्वारा मदन के निर्जरत्वापहरण का[11] उल्लेख किया गया है।

---

1. योग्यस्य त्रिनयनलोचनानलार्चिर्निर्दग्धस्मरपृतनाधिराज्यलक्ष्म्याः ।। शिशु0 8/33
2. स्मरेण मुक्तेषु पुरा पुरारये तदङ्गभस्मेव शरेषु सङ्गतम् ।। नैषध0 1/87 ।।
3. पुरभिदागमितस्त्वमदृश्यतां त्रिनयनत्वपरिप्लुति शङ्कया ।। वही0 4/76 ।।
4. तव तनूमवशिष्टवती ततः समिति शूतमयीमहरद्धरः ।। वही0 4/80 ।।
5. त्वमुचितं नयनार्चिषि शम्भुना भुवनशान्तिकहोमहविः कृतः ।। वही0 4/90
6. चण्डीशचण्डाक्षिहुताशकुण्डे जुहाव यन्मन्दिरमिन्द्रियाणाम् ।। वही0 8/33 ।।
7. कपालिकोपानलभस्मनः कृते ।। वही0 9/71 ।।
8. एकाकिभवेन पुरा पुरारिर्यः पंचतां पंचशरं निनाय ।। वही0 10/61 ।।
9. हरारब्धक्रोधेन्वनमदनः ।। वही0 15/83 ।।
10. रूद्रभूमविजिगीषया रतिस्वामिनोपदशमूर्तिताभृता ।। वही0 18/138 ।।
11. त्रैयक्षवीक्षणशिलीकृत निर्जरत्वम् ।। वही0 21/132 ।।

अगस्त्य का सागरपान [1]

इन्द्र द्वारा वृत्तासुर के वध के उपरान्त कालेय नामक असुर भागकर समुद्र में घुस गया और वही से हर रात्रि में निकलकर ऋषियों का वध कर देता था। इस प्रकार उसका पता लगाने में असमर्थ देवतागण विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने देवों से कहा कि समुद्र-शोषण के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है और इस कार्य में अगस्त्य ही समर्थ हैं। अतः देवगण अगस्त्य के पास पहुँचे और उनकी स्तुति की। प्रसन्न अगस्त्य मुनि ने देवों की प्रार्थना स्वीकार की और देखते ही देखते समुद्र को पी गये। कुछ स्थलों पर इससे भिन्न कथा भी मिलती है। एक पक्षी के कुछ अण्डों को समुद्र अपनी लहरों में बहा ले गया। उस पक्षी ने करूण विलाप किया किन्तु उसके अण्डे वापस नहीं मिले फिर अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को पीकर उस पक्षी के अण्डों को दे दिया।[2]

रघुवंश में इस कथानक का दो बार उल्लेख है - अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र को पीकर पुनः उगल देने का,[3] अगस्त्य द्वारा समुद्र को दण्ड देने के निमित्त उसे पीने का[4] वर्णन है। नैषध में भी इस पुरा कथा का दो बार वर्णन - दमयन्ती का चन्द्रमा को उपालम्भ कि हे चन्द्र! तू समुद्र पीने वाले मुनि की जठराग्नि में ही क्यों न जीर्ण हो गया।[5] फिर वही कहती है कि प्राचीन काल में कुम्भज ऋषि ने इसके पिता समुद्र को पीकर तुच्छ कर दिया था।[6]

---

1. म0 भा0, व0 प0, अ0 101 - 105, स्कन्द पुराण - काशी खण्ड पूर्वार्द्ध ॥
2. म0 भा0 प0 प0 105/3 ॥
3. विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेर्निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः ।। रघुवंश0 6/6।
4. कुम्भयोनिरलंकारं तस्मै दिव्यपरिग्रहम ।
   ददौ दत्तंसमुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्क्रयम् ।। वही0 15/55 ।।
5. अपि मुनेर्जठरार्चिषि जीर्णतां बत गतोऽसि न पीतपयोनिधेः ।। नैषध0 4/5।
6. पुरा निपीयास्य पितापि सिन्धुरकारि तुच्छः कलशोद्भवेन ।। वही0 22/67

अंधकासुर वध[1]

पुत्रों के वध से दुःखी दैत्य माता दिति की प्रार्थना से प्रसन्न होकर कश्यप ने उसको एक महाबलवान पुत्र पाने का वर दिया जो रूद्र के अतिरिक्त सबसे अजेय रहेगा। अन्धा न होकर भी वह अन्धे की भाँति चलता था। इसलिए लोग उसको अन्धक कहने लगे। उसने जब अत्याचार करना शुरू किया तो त्रस्त देवों ने नारद के माध्यम से उसके वधार्थ शिव के पास प्रार्थना भेजी। नारद ने शिव से सारी बातें कहकर मन्दारवन चले गये जो शिव का नित्य निवास है। वहाँ से एक अति सुगन्धित माला पहनकर अन्धकासुर के पास गये। माला की लोकोत्तर गन्ध से अन्धक का मन लुब्ध हो गया। उसका विवरण पूछने पर नारद ने बता दिया। असुरों सहित अन्धक मन्दार वन पहुँचकर उसे छिन्न-भिन्न करने लगा। यह देखकर भगवान रूद्र क्रुद्ध हो गये और अपने त्रिशूल से मार डाला। शिव पुराण[2] एवं वामन पुराण[3] में अन्धकार में शम्भु के पसीने से अन्धकासुर की उत्पत्ति का वर्णन है, जबकि एक अन्य स्थल पर इस कथा का भिन्न रूप में उल्लेख है। एक बार शिव-पार्वती में आँख मिचौली हुई। पार्वती ने अपने हाथ से शिव के तीनों नेत्रों को बन्द कर दिया तब सारा लोक अन्धकार में डूब गया और वही अन्धकासुर के रूप में होकर शंकरजी को चुनौती देने लगा फिर शंकर ने अपने त्रिशूल से उसका वध किया।[4] कुमारसम्भव में अन्धकासुर के प्राणों के लेने वाले शंकर का[5] तथा नैषधा में दमयन्ती कहती है कि मद हर्ष में अन्धे, वियोगिजनात्मक तुझ एक मदन को जो शंकर ने पराजित किया, इसीलिए उन्हें मदनजित्, अन्धकजित् तथा मृत्युजित् कहा जाता है।[6]

---

1. हरिवंश पुराणज्ञ 2/86-87 ॥
2. शिव-पुराण, रूद्र संहिता, पंचम खण्ड ॥
3. वामन-पुराण, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 87-96 ॥
4. हरविजय महाकाव्य - रत्नाकर कवि ॥
5. दृप्तान्धक प्राणहरं पिनाक महासुरस्त्रीविधवत्वहेतुम् ।। कुमार0 12/19 ।।
6. किमु भवन्तमुमापतिरेककं मदमुदान्धमयोगिजनान्तकम् ।
   यदजयन्तत एव न गीयते स भगवान्मदनान्धकमृत्युजित् ।। नैषध0 4/97 ।।

दधीचि का अस्थिदान एवं वृत्तासुर वध[1]

वृत्तासुर नाम का एक राक्षस था, जिसने इन्द्रादि देवों को अपने पराक्रम से त्रस्त कर दिया, तब इन्द्रादि देवताओं ने विष्णु की शरण ली। विष्णु ने उन्हें दधीचि ऋषि से उनकी अस्थिा मांगने के लिए कहा। दधीचि ने देवों की याचना स्वीकार कर उन्हें योग से अपना शरीर त्यागकर अस्थि-दान किया। विश्वकर्मा ने उन अस्थियों से वज्र बनाया, फिर उसी वज्र द्वारा वृत्तासुर का वध किया गया।

कुमारसम्भव में वृत्तासुर को मारने वाले इन्द्र के वज्र का,[2] किरातार्जुनीय में सूर्य के तेज को आक्रान्त कर तपस्या करने वाले वृत्तासुर का,[3] शिशुपाल-वध में इन्द्र द्वारा त्रैलोक्य को सताने वाले वृत्तासुर के विनाश किये जाने का,[4] नैषध में नल का देवों से तर्क इसी कथानक की ओर संकेत करता है कि जिस दान-यश का दानियों द्वारा मूल्य आँकने पर दधीचि पर्यन्त ने केवल प्राणों की अन्तिम सीमा रखी है।[5]

---

1. भागवत पुराण - 6/9/10, शिव पुराण 5/445 ।।
2. वृत्तस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठिताश्रीव लक्ष्यते ।। कुमार0 2/20 ।।
3. तरसैव कोऽपि भुवनैकपुरूष पुरूषस्तपस्यति ।
   ज्योतिरमलवपुषो पि खेरभिभूय वृत्त इव भीमविग्रहः ।। किरात0 12/26 ।।
4. अखिल मतिमहिम्ना लोकमाक्रान्तवन्तं,
   हरिरिव हरिदश्वः साधु वृत्तं हिनस्ति ।। शिशु0 11/56 ।।
5. आदधीचि किल दातृकृतार्घं प्राणमात्रपणसीम यशोयत् ।। नैषध0 5/111 ।।

अगस्त्य द्वारा विन्ध्य पर्वत को झुकाना [1]

एक बार देवर्षि नारद से सुमेरगिरि द्वारा अपना अपमान सुनकर विन्ध्य पर्वत ईर्ष्या तथा क्रोध में आकाश की ओर ऊपर बढ़ने लगा और सूर्य का मार्ग रोककर खड़ा हो गया, जिससे समस्त विश्व में बड़ी खलबली मच गयी। देवता लोग घबड़ाकर ब्रह्मा जी के पास गये। देवों की प्रार्थना से प्रसन्न ब्रह्मा जी ने उन्हें बताया कि काशी में तपस्या करने वाले मित्रावरूण के पुत्र महर्षि अगस्त्य के पास जाओ, वही इस विपत्ति को दूर कर सकते हैं। देवों ने अगस्त्य के पास जाकर उनसे विन्ध्य पर्वत की वृद्धि रोकने की प्रार्थना की। अगस्त्य ने उनका कार्य सिद्ध करने का वचन दिया। फिर लोपामुद्रा के साथ बड़े कष्ट से काशी छोड़कर अगस्त्य विन्ध्य पर्वत के पास पहुँचे। उन्हें देखते ही विन्ध्य इतना झुका मानो पृथिवी में समा गया हो। अगस्त्य ने पर्वत को आदेश दिया कि मैं जब तक पुनः लौटकर न आऊँ तब तक तुम इसी भाँति लघु रूप में रहना। अगस्त्य दक्षिण दिशा को चले गये और विन्ध्याचल आज भी उनकी प्रतीक्षा में उसी भाँति पड़ा है। रघुवंश में दो-तीन स्थलों पर - अगस्त्य मुनि द्वारा सेवित दक्षिण का,[2] महापर्वत विन्ध्याचल का ऊपर बढ़ने से रोकने वाले अगस्त्य का,[3] शिशुपाल वध में दक्षिणायन में जाने वाले सूर्य के समान अगस्त्य की दिशा का,[4] नैषध में वरूणदेव नल से कहते हैं - जिससे निबद्ध होकर राजाबलि तथा विन्ध्यपर्वत आज भी विचलित होने में समर्थ न हुए।[5]

---

1. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, पूर्वार्द्ध, अध्याय 1-5, पद्मपुराण - सृष्टि खण्ड, म0भा0व0प0 अध्याय 106 ॥
2. अगस्त्याचरितामाशामनाशास्य जयो ययौ ।। रघुवंश0 4/44 ।।
3. विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेर्निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः ।
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः ।। वही0 6/61 ।।
4. कौबेरदिग्भागमपास्य मार्गमागस्त्यमुष्णांशुरिवावतीर्णः ।। शिशु0 3/1 ।।
5. अद्य यावदपि येन निबद्धौ न प्रभू बिचलितुं बलिविन्ध्यौ ... ।। नैषध0 5/130

पुरूरवा की उत्पत्ति तथा उर्वशी का प्रेम[1]

एक बार मनु ने एक यज्ञ किया, जिससे मित्रावरूण की कृपा से मनु को सुद्युम्न नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। किसी समय मृगया प्रसंग में सुद्युम्न पार्वती-वन में चला गया। शिव के शाप के कारण जो उस वन में घुसता था वह स्त्री हो जाता था। फलतः यह भी इला नामक स्त्री हो गया। इसे अकेली घूमती देखकर चन्द्रमा-पुत्र बुध कामातुर हो गये और उसे अपने आश्रम में लाये उससे पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उधर ऋषि-शाप के कारण अप्सरा उर्वशी को भूलोक पर आना पड़ा। वह नारद के मुँह से पुरूरवा की प्रशंसा सुन चुकी थी अतः भूलोक में उन्हीं के पास आयी। अपने दो मेषों की रक्षा, घृतभोजन तथा राजा का अनग्नदर्शन, इन तीन शर्तो को पुरूरवा से मनवाकर वह उनकी रानी के रूप में रहने लगी। कुछ समय पश्चात् गन्धर्वो ने उर्वशी को पुनः स्वर्ग ले जाने की इच्छा से रात्रि में उसके मेषों को चुरा लिया जिससे पुरूरवा उनकी रक्षा के लिए शयन से जल्दबाजी में नग्न ही दौड़ पड़े। उर्वशी ने उन्हें देख लिया, अतः प्रतिज्ञा भंग हो जाने के कारण वह राजा को छोड़कर चली गयी। ऋग्वेद[2] में यह कथा इस प्रकार है कि पुरूरवा इन्द्र की सभा में गये थे और उर्वशी इन्हें देखकर आसक्त हो जाती है। ऋषिगण मर्त्यलोक में जाने का उर्वशी को शाप दे देते हैं। पुरूरवा उर्वशी चिरकाल तक साथ-साथ रहते हैं किन्तु जब आयु नामक पुत्र पैदा हो जाता है। तो उर्वशी उसे छोड़कर पुनः स्वर्ग चल देती है। नैषध में इस पौराणिक कथानक का उल्लेख इस रूप में है - नल के विवाहोचित वेषभूषा को देखकर पुर सुन्दरियां कहती है कि राजा सुद्युम्न ने जिसको उत्पन्न किया था, उन्हीं उर्वशी के प्राणप्रिय पुरूरवा को जिसने अपने देहकान्ति से जीत लिया है।[3]

---

1. हरिवंश पुराण - हरिवंशपर्व - 10/26, विष्णु पुराण चतुर्थ अंश अध्याय 6 ।।
2. ऋग्वेद - दशम मण्डल - पुरूरवा - उर्वशी संवाद ।।
3. भवनसुद्युम्नः स्त्री नरपतिरभूद्यस्य जननी ।
   तमुर्वश्याः प्राणानपि विजयमानस्तनुरूचा ।। नैषध0 15/83 ।।

त्रिपुरदाह[1]

ब्रह्माजी के वरदान से मय नामक राक्षस ने लोहा, चाँदी तथा सोने का तीन पुर सौ-सौ योजन परिमाण के बनवाये जिनमें तारक, विन्धुमाली तथा स्वयंमय रहता था और इसे शंकर के सिवा कोई किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकता था। शंकर भी तब हानि पहुँचा सकते थे जब पुष्य नक्षत्र में ये तीनों पुर मिलते। वहां रहने वाले दैत्य अवध्य थे। इनके वधार्थ देवों द्वारा प्रार्थना करने पर शिव ने पृथ्वी का दिव्य रथ बनाया, काल को धनुष तथा शक्ति को अस्त्र बनाया। विष्णु, चन्द्रमा तथा अग्नि बाण बने, ब्रह्मा सारथी। इस पर दिव्य रथ पर आरूढ़ दिव्यास्त्रों से युक्त होकर शिव ने तीनों पुरों को जला डाला और ये तीनों राक्षस भी मारे गये। कुमारसम्भव में इस पुरा कथा का दो स्थलों पर - शंकरजी के त्रिपुर-विजय का गीत गाते हुए संगीत कुशल गन्धर्वों का[2] तथा त्रिपुरासुर को मारने वाले, त्रिलोक में पूज्य शंकर का,[3] उल्लेख है। रघुवंश में त्रिपुरसंहार के अवसर पर युद्ध के लिए सन्नद्ध भगवान शंकर का[4] वर्णन है। शिशुपालवध में त्रिपुरासुर पर अभियान करने वाले शंकर के रथ की लगाम पकड़े ब्रह्मा का[5] उल्लेख है।

---

1. मत्स्य-पुराण, अध्याय 129-140, शिवपुराण रूद्रसंहिता पंचम खण्ड, अध्याय 9-10 भागवत पुराण 7/724 ।।
2. विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः सङ्गीयमान त्रिपुरावदानः ।। कुमार0 7/48।।
3. पुरा सुरेन्द्रं सुरसङ्घसेव्यं त्रिलोकसेव्यस्त्रिपुरासुरारिः ।। वही0 12/28 ।।
4. स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम् । अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुः प्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः ।। रघु0 3/52 ।।
5. रथमास्थितस्य च पुराभिवर्तिनस्तिसृणां पुरामिव रिपोर्मुरद्विषः । अथधर्ममूर्तिरनुरागभावितः स्वयमादित प्रवयणं प्रजापतिः ।। शिशु0 13/19 ।।

किरातार्जुनीय में तीन स्थलों पर त्रिपुर-दाह का उल्लेख है - शंकर के सेवकों को बार-बार त्रिपुरासुर के दाह का स्मरण कराने वाली अग्नि का,[1] त्रिपुरासुर को मारने के लिए धारण किए शिव के भयानक रूप का,[2] आकाश में वेग से उछले त्रिपुर विजेजा शंकर का।[3] नैषध में भी दो बार इस कथानक का विवरण मिलता है - विरह—व्यथितदमयन्ती मदन को उलाहना देती है कि जिस प्रकार शंकर की बाणाग्नि ने त्रिपुर को भस्म कर दिया उसी प्रकार तुम्हारी बाणाग्नि भी त्रिलोक को जला न दे इसीलिए विधाता ने तुम्हारे बाणों के भीतर मकरन्द का बना दिया[4] तथा स्त्रियों को अस्त्र बनाने वाले त्रिपुरारि के वैरी कामदेव का।[5]

---

1. मुहुरनुस्मरयन्तमनुक्षपं त्रिपुरदाहमुमापतिसेविनः ।। किरात0 5/14 ।।

2. ददृशेऽथ सविस्मयं शिवेन स्थिरपूर्णायतचापमण्डलस्थः ।
   रचितस्तिसृणां पुरां विधातुं वधमात्मेव भयानकः परेषाम् ।। वही0 13/17 ।।

3. वियतिवेगपरिप्लुतमन्तरा समभिसृत्य रयेण कपिध्वजः ।
   चरणयोश्चरणानमितक्षितिर्निजगृहे त्रिसृणां जयिनं पुराम् ।।

4. स्मररिपोरिव रोपशिखी पुरां दहतु ते जगतामपि मा त्रयम् ।
   इति विधिस्त्वदिषून् कुसुमानि किं मधुभिरन्तरसिंचदनिर्वृतः ।। नैषध0 4/87 ।।

5. ईश्वरस्य जगत्कृत्स्नं सृष्टिमाकुलयन्निमाम् ।
   अस्त्रियोऽस्त्रीकृतस्त्रीकस्तस्य वैरं स्मरन्निव ।। वही0 1/17 ।।

परशुराम द्वारा इक्कीस बार क्षत्रियवध[1]

महिष्मती के राजा कार्तवीर्य ने जलक्रीड़ा करते हुए नर्मदा नदी के प्रवाह को रोक दिया था और यही नहीं नदी की धारा उल्टी बहने लगी जिससे पास में लगा रावण का शिविर बह गया। क्रुद्ध होकर रावण उसके ऊपर दौड़ पड़ा किन्तु कार्तवीर्य ने रावण को बन्दी बनाकर (बन्दर की भाँति) छोड़ दिया। वही कार्तवीर्य एक बार मृगया-प्रसंग में जमदग्नि ऋषि के आश्रम में आया। जमदग्नि ने राजोचित सत्कार किया। उसने ऋषि की गाय का बलात् अपहरण कर लिया परशुराम जब आश्रम में लौटे तो यह सब अत्याचार सुना और क्रोधवश तुरन्त कार्तवीर्य के यहाँ पहुँचकर परशु से उसका सिर काट डाला। कुछ समय बाद उसके पुत्रगण प्रतिशोध लेने के लिए जमदग्नि के आश्रम में आये और ऋषि जमदग्नि को अकेला पाकर उनका वध कर डाला। परशुराम को इससे अपार क्रोध हुआ। पिता की अन्त्येष्टि क्रिया से मुक्त होकर उन्होंने 21 बार पृथ्वी के क्षत्रियों का वध किया, उनके रुधिर से पितरों का तर्पण किया तथा यज्ञ करके ब्राह्मणों को सारी पृथ्वी दान कर दी। कुमार सम्भव में - शंकर जी से युद्ध विद्या सीखकर 21 बार गाढ़े रक्त में स्नान करके शान्त हुए परशुराम का[2] उल्लेख है। रघुवंश में इस पुरा कथा का दो बार - फरसे की तेज धार से 21 बार क्षत्रियों का संहार करने वाले परशुराम का,[3] पिता की आज्ञा से माता का सिर काटने वाले तथा क्षत्रिय वध के बाद पृथ्वी त्यागने वाले परशुराम का[4] विवरण मिलता है।

---

1. भागवत पुराण - 9/15, 16, महाभारत वनपर्व, अध्याय - 116, 117
2. लब्ध्वाधनुर्वेदमनङ्.गविद्विषस्त्रिसप्तकृत्वः समरे महीभुजाम् ।
   कृत्वाभिषेकं रुधिराम्बुभिर्घनैः स्वक्रोधवह्निं शमयाम्बभूव यः ।।
   कुमार0 15/36 ।।
3. आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम् ।
   धारां शितां रामपरश्वधस्य संभावयत्युत्पलपत्रधाराम् ।। रघु0 6/42 ।।
4. येन रोषपरुषात्मनः पितुः शासने स्थितिभिदोऽपि तस्थुषा ।
   वेपमानजननीशिरश्छिदा प्रागजीयत घृणा ततो महीम् ।। वही0 11/65 ।।

शिशुपाल वध में इस कथानक का तीन बार - परशुराम के पितरों को तृप्त करने वाली रक्तराशि का,[1] कार्तवीर्य का नाश करने वाले परशुराम का[2] तथा परशुराम द्वारा वीरतापूर्वक इक्कीस बार क्षत्रियों को मारने का[3] उल्लेख है। नैषध में भी इस पुरा कथा को तीन बार - परशुराम का रूप धारण कर अपनी उन्हीं भुजाओं से क्षत्रियों को अपने में लीन करने का,[4] ब्रह्मा द्वारा नव खण्डों में विभक्त पृथ्वी को ब्राह्मणाधीन करने का[5] तथा कार्तवीय एवं रावण दोनों का वध करने वाले राम रूप (परशुराम तथा राम) का[6] विवरण मिलता है।

---

1. जगदग्निसूनुपितृतर्पणीरपो वहति स्म या विरलशैवला इव ।। शिशु0 13/52

2. रेणुकातनयतामुपागतः शातितप्रचुरपत्रसंहतिः ।
   लूनभूरिभुजशाखमुज्झितच्छायमर्जुन वनं व्यधादयम् ।। वही0 14/80 ।।

3. रामेण त्रिःसप्तकृत्वो हृदानां चित्रं चक्रे पंचकं क्षत्रियास्रैः ।
   रक्ताम्भोभिस्तत्क्षणादेव तस्मिन्संख्येऽसंख्याः प्रावहन्द्वीपवत्यः ।। वही0 18/70 ।।

4. क्षत्रजातिरुदियाय भुजाभ्यां या तवैव भुवनं सृजतः प्राक् ।
   जामदग्न्यवपुषस्तव तस्यास्तौ लयार्थमुचितौ विजयेताम् ।। नैषध 21/65 ।।

5. पांसुला बहुपतिर्नियतं या वेधसारचि रूषां नवखण्डा ।
   तां भुवं कृतवतो द्विजभुक्तां युक्तकारितरता तव जीयात ।। वही0 21/66 ।।

6. कार्तवीर्यभिदुरेण दशास्ये रैणुकेय! भवता सुखनाश्ये ।
   कालभेदविरहादसमाधिं नौमि रामपुनरूक्तिमहं ते ।। वही0 21/67 ।।

गौतम का इन्द्र और अहल्या को शाप[1]

मिथिला के समीप एक उपवन में महर्षि गौतम का आश्रम था। एक दिन महर्षि की अनुपस्थिति में इन्द्र गौतम का वेष धारण कर आश्रम मे पहुँचे उनकी पत्नी अहल्या उस समय ऋतुस्नात थी। इन्द्र ने अहल्या से समागम की प्रार्थना की। अहल्या मुनिवेष में इन्द्र जानकर तथा कहीं मेरे पति गौतम ही न हो इस संशय में प्रमाद कर बैठी। संयोग से जैसे ही इन्द्र आश्रम के बाहर निकल रहे थे वैसे ही महर्षि गौतम वहां आ पहुँचे। इन्द्र के दुराचार से क्रुद्ध हो उन्हें नपुंसक एवं सहस्र भग वाला तथा अहल्या को सहस्रों वर्षो तक पाषाण हो जाने का शाप दिया। रघुवंश में इस कथा का दो बार - उस आश्रम के सुन्दर वृक्षों की चर्चा जहाँ गौतम की पत्नी अहल्या थोड़ी देर के लिए इन्द्र की पत्नी बन गयी थी,[2] पति के शाप से पत्थर बनी हुई अहल्या के रूप में[3] उल्लेख है। नैषध में तीन बार इन्द्र के इस निन्दित आचरण की कटाक्ष रूप में चर्चा है, कलि की देवों के दम्भ पर टिप्पणी कि 'पर स्त्री गमन अनुचित है' इस पाखण्ड का जब इन्द्र पालन न कर पाये,[4] नल के विलास भवन में इन्द्र के इस दुस्साहस का चित्रण,[5] यद्यपि मैं विवाहिता होकर परस्त्री हो गयी हूँ किन्तु अहल्या के साथ दुर्व्यवहार करने वाले की बदमाशी से परिचित हूँ।[6]

---

1. रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 48, 49 ।।
2. येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वासवक्षणकलत्रतां ययौ ।। रघु0 ।।/33 ।।
3. प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारू गौतमवधूः शिलामयी ।। वही0 ।।/34 ।।
4. परदारनिवृत्तिर्या सोयं स्वयमनादृतः ।
   अहल्या केलिलोलेन दम्भो दम्भोलिपाणिना ।। नैषध0 17/43 ।।
5. पुष्पकाण्डजयडिण्डिमायितं यत्र गौतमकलत्रकामिनः ।
   पारदारिकविलाससाहसं देवभर्तुरूदटङ्-कभित्तिषु ।। वही0 18/21 ।।
6. भाषते नैषधच्छायामायामायि मया हरेः ।
   आह चाहमहल्यायां तस्याकर्णितदुर्नया ।। वही0 20/70 ।।

ब्रह्मा का अपनी कन्या के साथ दुर्वृत्त[1]

यह कथा-वैदिक साहित्य में भी वर्णित है। इसका विस्तृत विवरण शतपथ-ब्राह्मण[2] में मिलता है। जगत् की रचना करने की इच्छा से ब्रह्मा ने अपने हृदय में सावित्री का ध्यान करके तपस्या आरम्भ की। तभी उनके निष्पाप शरीर के दो भाग हो गये। पहला अर्धभाग स्त्री रूप तथा दूसरा अर्ध भाग पुरूष रूप हो गया। उस स्त्री का नाम शत-रूपा पड़ा। अपने शरीर से उत्पन्न शतरूपा को कन्या तुल्य माना किन्तु उसके मनोहारी रूप को देखकर काम-बाण से व्यथित ब्रह्मा बोले "ओह! कितना सुन्दर रूप है, कितनी अपूर्व सुन्दरता है।" वशिष्ठ आदि ऋषियों के मना करने पर भी अपने मन को ब्रह्माजी रोक न सके। सावित्री ने विनम्रभाव से प्रणाम किया और अपने रूप के प्रति मुग्ध पिता की प्रदक्षिणा की। ब्रह्मा यद्यपि लज्जित हुए किन्तु सावित्री के प्रदक्षिणा करते समय तीन ओर तीन मुँह और हो गये तथा जब सावित्री ऊपर जाने लगीं तो पाँचवाँ मस्तक ऊपर की ओर हो गया। कामासक्त ब्रह्मा ने अपने पुत्रों को सृष्टि कार्य में लगाकर उस अनिन्द्यसुन्दरी का पाणिग्रहण किया और सामान्य कामातुर की भाँति लज्जा से अवनत मुख वाली शतरूपा के साथ समुद्र में देवों के सौ वर्ष तक विहार किए। नैषध में ब्रह्मा के इसी दुर्वृत्त का उपहास करता हुआ कलि देवों से कहता है - 'ब्रह्मा चाहे जिस (पुत्री आदि) के साथ विहार करें।'[3] नल के विलास भवन में भी भित्तिचित्र पर ब्रह्मा का यह दुःसाहस चित्रित है।[4]

---

1. मत्स्य-पुराण, अध्याय 3/30-47, ब्रह्म-पुराण अध्याय 102 ।।
2. शतपथ-ब्राह्मण 1/7/4 ।।
3. कयापि क्रीडतु ब्रह्मा ।। नैषध 17/122 ।।
4. भित्तिचित्रलिखिताखिलक्रमा यत्र तस्थुरितिहाससंकथाः ।
   पद्मनन्दनमुतारिरं सुतामन्दसाहसहसन्मनोभुवः ।। वही0 18/20 ।।

गुरूपत्नी तारा में चन्द्रमा की आसक्ति[1]

ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को औषधियों, ब्राह्मणों तथा नक्षत्रों का राजा बनाया। चन्द्रमा ने राजसूय-यज्ञ भी किया। इस कारण से उसे बड़ा अहंकार हो गया। अहंकार इतना बलवान होता गया कि उसने गुरू बृहस्पति की अतीव सुन्दरी पत्नी तारा का बलात् अपहरण कर लिया। बृहस्पति ने ब्रह्मा से कहा। सप्तर्षियों ने भी उसे समझाया, परन्तु चन्द्रमा ने किसी की नहीं सुनी। इस पर तारकामय नामक महासंग्राम हुआ जिसमें शुक्र तथा उनके साथी अन्य दैत्य चन्द्रमा के सहायक हुए और इन्द्रादि देवता बृहस्पति के पक्ष में लड़े अन्त में ब्रह्माजी ने दोनों पक्षों को समझाकर युद्ध शान्त किया और तारा बृहस्पति को दिलवायी किन्तु इसी बीच तारा को चन्द्रमा का गर्भ रह गया था जिससे बुध का जन्म हुआ।

इस प्राचीन कथानक का उपयोग नैषध में अनेक स्थलों पर किया गया है। चार्वाक देवों से कहता है कि गुरूस्त्रीगमन में कोई दोष नहीं क्योंकि आपके स्वामी चन्द्रमा ने गुरू पत्नी तारा में अनुराग दिखाया,[2] नल के विलास भवन में भी इसी कथानक को लेकर नाटिका खेली जा रही थी,[3] नल भी इस वृत्त का स्मरण करते हुए कहते हैं कि प्रिये! देखो गुरूपत्नीगमन करने पर भी चन्द्रमा पतित न हुआ, क्यों? बात यह है कि जो जीवन-मुक्त आत्म प्रकाश रूप हैं, वे बुरे-भले कार्यों के प्रकृति बन्धन से परे रहते हैं।[4]

---

1. विष्णु-पुराण - अंश 4 अध्याय 6 ॥
मत्स्य-पुराण अ0 23, भविष्य-पुराण अध्याय 88 तथा भागवत पुराण 9/14 में भी यह कथा थोड़े हेरफेर के साथ वर्णित है।

2. गुरूतल्पगतौ पापकल्पनां त्यजत निजाः ।
येषां वः पत्युरत्युच्चैर्गुरूदारग्रहे ग्रहः ।। नैषध 17/44 ।।

3. गौरभानुगुरूगेहिनीस्मरोद्वृत्तभावमितिवृत्तमाश्रिताः ।
रेजिरे यदजिरे भिनीतिभिर्नाटिका भरतभारतीसुधा ।। वही0 18/23 ।।

4. नास्य द्विजेन्द्रस्य बभूव पश्य दारान्गुरोर्यातवतो पिपातः ।
प्रवृत्तयोप्यात्ममयप्रकाशान् नह्यन्ति नहह्यन्निमदेहमाप्तान् ।। वही 22/118

दुर्वासा का इन्द्र को शाप[1]

भगवान् शिव के अंश दुर्वासा मुनि उन्मत्त व्रत धारण किए हुए एक बार घूम रहे थे कि एक विद्याधरी के हाथ में कल्पवृक्ष के फूलों की बनी अत्यन्त सुगन्धित माला देखी और उससे उस माला को माँगने लगे। विद्याधरी ने पहले तो प्रणाम किया उसके बाद वह माला उन्हें समर्पित कर दी। मुनि दुर्वासा उसे सिर पर रखकर विचरण करने लगे। एक दिन मुनि को ऐरावत हाथी पर आरूढ़ देवराज इन्द्र दिखाई पड़े। दुर्वासा ने वह माला अपने सिर से उतारकर इन्द्र के ऊपर फेंक दी। इन्द्र ने उसे ऐरावत हाथी के सिर पर रख दिया। माला की गन्ध से ऐरावत हाथी मस्त हो गया और उस माला को अपने सूँड़ से उतारकर पृथ्वी पर फेंक दिया। दुर्वासा मुनि इस प्रकार की उस अलौलिक माला की दुर्दशा देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उसी समय दुर्वासा मुनि ने देवराज इन्द्र को शाप दे दिया कि हे इन्द्र! तुम्हारी त्रैलोक्यश्री नष्ट हो जायेगी। नैषध में इस कथा का उल्लेख श्रीहर्ष इस प्रकार करते हैं - 'दमयन्ती के पिता भीम ने नल को दहेज में जो यह सदा ऐरावत की सी वर्षा करने वाला हाथी भेंट किया, क्या वही इन्द्र का हाथी तो नहीं जो दुर्वासा वाली माला फेंकने के कारण उनके शापवश मर्त्यलोक में आ गिरा है।"[2]

---

1. विष्णु-पुराण - अंश 1, अध्याय 9 ।।

   पद्मपुराण - सृष्टि खण्ड - 58 ।।

2. विराध्य दुर्वाससमस्खलद्दिवः,

   स्रजं त्यजन्नस्य किमिन्द्रसिन्धुरः।

   अदत्त तस्मै स मदच्छलात्सदा,

   यमभ्रमातङ्गतयैव वर्षुकम् ।। नैषध 16/31 ।।

पृथुचरित तथा पृथ्वी-दोहन[1]

मनु के वंश में अंग नामक प्रजापति हुए जिन्होंने यमपुत्री सुनीथा से विवाह किया। इससे वेन नामक महापराक्रमी पुत्र पैदा हुआ, किन्तु वह आगे चलकर विधर्मी एवं महान् अत्याचारी शासक हुआ। अनुनय-विनय पर भी कुमार्ग से न हटने पर महर्षियों ने उसे शाप देकर भस्म कर डाला और उसके दाहिने हाथ को मथा तो पृथु की उत्पत्ति हुई जो विष्णु के एक अवतार भी माने जाते हैं। वेन के अधर्म से जो दुभिक्ष पड़ा था उससे क्रुद्ध होकर पृथु ने भूमण्डल को भस्म कर डालने का निश्चय किया। पृथ्वी भयाक्रान्त हो गोरूप धारण कर भागने लगी। कहीं शरण न देखकर पृथु को ही शरण माना और पृथ्वी ने कहा कि आप उचित बछड़ा लाकर मुझसे अभीप्सित वस्तु दुह लीजिए। इस प्रकार सभी जीवों ने अभीप्सित दुहा। 'पर्वतों ने सुमेरू को दोग्धा तथा हिमालय को बछड़ा बनाकर शैलमय पात्र में अनेक प्रकार के रत्नों तथा दिव्य ओषधियों को दुहा'।[2] राजापृथु ने प्रजा के कल्याण हेतु बड़े-बड़े पर्वतों को उखाड़कर पृथिवी तल को समतल बनाया।[3] कुमारसम्भव में राजा पृथु द्वारा प्रदर्शित पृथिवी रूपी गाय का,[4] शिशुपाल वध में युद्ध की चर्चा में राजा पृथु के उत्साह का,[5] नैषध में सरस्वती के मुख से देव दर्शन के अवसर पर सुमेरू द्वारा गो रूप पृथिवी के दुहे जाने का[6] तथा पाण्ड्य नरेश वर्णन के आधार पर पृथु द्वारा पर्वतों को सुव्यवस्थित करने का[7] उल्लेख हुआ है।

---

1. मत्स्य-पुराण - अध्याय 10.
2. हरिवंश-पुराण - हरिवंशपर्व - 4/41, 5/43.
3. भागवत-पुराण - 4/17, 18.
4. यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं, मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे ।
   भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च, पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ।। कुमार0 1/2 ।।
5. विचिन्तयिन्नुपनतमाहवं रसादुरः स्फुरत्तनुरूहमग्रपाणिना ।
   परामृशत्कठिनकठोरकामिनी कुचस्थल प्रमुषित चन्दनं पृथुः ।। शिशु0 17/1।
6. एषां गिरेः सकलरत्नफलस्तरूः स प्रादुग्धभूमिसुरभेः खलु पंचशाखः ।। नैषध 11/10
7. पृथ्वीन्द्रः पृथुरेतदुग्रसमरप्रेक्षोपनभ्रामरः ।
   श्रेणीमध्यचर पुनः क्षितिधरक्षेपाय धत्तेधियम् ।। वही0 12/20 ।।

मैनाक का सागर वास[1]

कृतयुग में सभी पर्वतों के पंख थे, वे जहाँ चाहते थे उड़कर चले जाते थे। उनके इस मनमानी उड्डयन से जन-समुदाय बहुत भयाक्रान्त था क्योंकि वे अप्रत्याशित रूप से गिरकर बहुत सारे प्रदेश को नष्ट कर देते थे। अतः उनके इस अनिष्टकारी प्रभाव एवं रूप को समाप्त करने के लिए इन्द्र ने अपने वज्र से सभी पर्वतों के पंखों को काट डाला। कुछ पर्वत चतुर थे जो उड़कर समुद्र में विलीन हो गये और उनके पंख इन्द्र द्वारा काटने से बच गये, ऐसे पर्वतों में मैनाक प्रमुख था। एक स्थल पर यह कथा थोड़ी भिन्न है कि जब इन्द्र ने मैनाक के पंखों को काटने के लिए वज्र उठाया तो पवन देव ने उसे बचाकर सागर में झोंक दिया। अतः उसके पंख बच गये। वह अपने पंखों को छिपाकर आज भी वहीं पड़ा है।

किरातार्जुनीय में समुद्र में छिपे हुए निश्चल पंख वाले मैनाक आदि पहाड़ों का,[2] शिशुपाल वध में कवि ने इसी पौराणिक कथा के आधार पर उत्प्रेक्षा की है कि जो पर्वत पंखधारी थे वे तो पहले से ही समुद्र में डूबे हुए थे - जो अब इन्द्र द्वारा पंख विहीन कर दिए गये मानों वे ही सेना के गजराजों के बहाने बड़े-बड़े सरोवरों में डूबकर स्नान करने के लिए चले आये थे।[3] नैषध में इस कथानक का वर्णन नल के क्रीड़ा सरोवर के प्रसंग में हुआ है।[4] कुमार-सम्भव में पहाड़ों के पंख काटने वाले इन्द्र के क्रुद्ध होने पर भी उनके वज्र के प्रहारों की वेदना से अनभिज्ञ मैनाक का उल्लेख है।[5]

---

1. बाल्मीकि रामायण - सुन्दर काण्ड सर्ग 1/115-119
2. माहेन्द्रं नगमभितः करेणुवर्याः पर्यन्तस्थितजलदादिवः पतन्तः ।
   सादृश्यं निलयननिष्प्रकम्पपक्षैराजग्मुर्जलनिधिशायिभिर्नगेन्द्रैः ।। किरात0 7/20
3. ये पक्षिणः प्रथममम्बुनिधिं गतास्ते येऽपीन्द्रपाणितुलितायुधलूनपक्षाः ।
   ते जग्मुरद्रिपतयः सरसीर्विगाढुमाक्षिप्तकेतुकथसैन्यगजच्छलेन ।। शिशु0 5/31
4. यदम्बुपूरप्रतिबिम्बितायतिर्मरुत्तरंगैस्तरलतटद्रुमः ।
   निमज्य मैनाकमहीभृतः सतस्ततान पक्षान्धुवतः सपक्षताम् ।। नैषध 1/116 ।।
5. असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधि बद्ध सख्यम् ।
   क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदिवृत्रशत्राववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ।। कुमार0 1/20 ।।

कार्तिकेय-जन्म तथा तारकासुर-वध [1]

एक समय में तारक नामक का राक्षस था। वह तीनों लोकों को वश में करके स्वयं इन्द्र हो गया और अद्भुत ढंग से राज्य का संचालन करने लगा देवताओं को निकालकर दैत्यों को प्रतिस्थापित किया और विद्याधर आदि देवयोनियों को अपने काम में लगाया। इस प्रकार तारकासुर द्वारा सताये गये इन्द्रादि सम्पूर्ण देवतागण अत्यन्त व्याकुल एवं अनाथ हो ब्रह्माजी की शरण में गये। ब्रह्मा ने कहा कि देवराज वह मेरे ही वरदान से इतना शक्ति सम्पन्न हो गया है अतः मेरे हाथों से उसका वध उचित नहीं। तारक अपने पाप से स्वयं नष्ट हो जायेगा। मेरे वर के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु, महेश कोई भी इसका वध करने में समर्थ नहीं केवल शिव के वीर्य से उत्पन्न पुत्र ही उसका वध कर सकता है। चूंकि शंकर ऊर्ध्वरेता है, अतः उनका वीर्य पार्वती के सिवा और कोई स्खलित कराने में समर्थ नहीं। कुछ समय बाद शिव पार्वती का विवाह हुआ, कार्तिकेय का जन्म हुआ और इन्हीं के द्वारा तारक का वध हुआ। कुमारसम्भव में चार स्थलों पर - तारकासुर से पीड़ित देवों का ब्रह्मा के पास पहुँचने का[2] ब्रह्मा द्वारा तारकासुर को देवों से अवध्य होने का वरदान[3] चार मुखों वाले ब्रह्मा को छः मुखों से चुनौती देने वाले षडानन का[4] भाले का तारकासुर के हृदय पर लगने का[5] उल्लेख है। रघुवंश में दो बार - अज की तुलना में[6] तथा छः मुखों से एक साथ छः कृत्तिकाओं का स्तनपान करने वाले कार्तिकेय का[7] इस पुरा-कथा का वर्णन है।

---

1. शिव-पुराण - 3/246 अध्याय 14-16, हरिवंशपुराण विष्णु-पर्व 6/262.
   शिव-पुराण - 4/332 अध्याय 9-12 .
2. तस्मिन्विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः ।
   तुरासाहं पुरोधाम धाम स्वायम्भुवं ययुः ।। कुमार0 2/1 ।।
3. वृत्तंतेनेदमेव प्राङ्मया चास्मै प्रतिश्रुतम् ।
   वरेण शमितं लोकानलं दग्धुं हि तत्तपः ।। वही0 2/56 ।।
4. वक्त्रैः षड्भिः स्मरहरगुरुस्पर्धयेवाजनीव ।। वही0 10/60 ।।
5. उद्योतिताम्बरदिगन्तरमंशुजालैः शक्तिपपात हृदि तस्य महासुरस्य ।। वही0 17/50
6. ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्यदेवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ।
   अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजनाममजं चकार ।। रघु0 5/36 ।।
7. षडाननापीतपयोधरासु नेता चमूनामिव कृत्तिकासु ।। वही0 14/22 ।।

गंगावतरण की कथा[1]

चम्पापुरी में सगर नामक चक्रवर्ती समाट् था। उसने एक अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ में छोड़े गये घोड़े को इन्द्र ने चुरा लिया और उसे ले जाकर कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। पिता की आज्ञानुसार सगर के 60000 पुत्रों ने घोड़े के लिए सारी पृथिवी छान मारी किन्तु घोड़ा नहीं मिला। अहंकारवश इन लोगों ने सारी पृथिवी को ही खोद डाला तो पूर्व एवं उत्तर के कोने पर कपिल मुनि के पास घोड़ा दिखाई पड़ा। घोड़े को देखते ही वे सभी शस्त्र लेकर मुनि पर दौड़ पड़े। इस कारण कपिल मुनि की क्रोधाग्नि में वे सब जलकर राख हो गये। इसके बाद राजा सगर की आज्ञा से अंशुमान घोड़े को ढूढ़ंने के लिए निकले तो खोजते-2 कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचे जहाँ घोड़े के पास ही उन सब की राख पड़ी थी। अंशुमान ने विनती की और उसकी स्तुति की तो प्रसन्न कपिल मुनि ने कहा बेटा! यह घोड़ा तुम्हारे पितामह का यज्ञपशु है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे जले हुए चाचाओं का उद्धार केवल गंगाजल से होगा और कोई उपाय नहीं है। अंशुमान ने गंगा को लाने की कामना से बहुत वर्षो तक घोर तपस्या की परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद इनके पुत्र दिलीप ने भी वैसी ही तपस्या किए, किन्तु असफल रहे। दिलीप पुत्र भगीरथ ने कठोर तपस्या की उनकी तपस्या से प्रसन्न गंगा ने कहा कि मैं तुम्हें वर देने के लिए आयी हूँ। ऐसा सुनकर भगीरथ ने कहा कि आप मर्त्यलोक में चलिए। गंगा ने भगीरथ से कहा कि मेरे वेग को कौन सहन करेगा? जिस समय मैं पृथिवी पर गिरूँ उस समय कोई मेरे वेग को धारण करने वाला होना चाहिए अन्यथा पृथ्वी फोड़कर रसातल में चली जाऊँगी। भगीरथ ने कहा माता! रूद्रदेव आपका वेग धारण करेगें इस प्रकार भगीरथ ने शिवाराधना शुरू कर दी शिव जी प्रसन्न हो गये और उन्होंने 'तथास्तु' कहकर राजा की बात स्वीकार कर ली। इसके बाद गंगा शिव की जटा में समा गयी और बाद में भगीरथ की प्रार्थना पर शंकर ने उन्हें मुक्त किया

---

1. भागवत - पुराण - नवम - स्कन्ध, अध्याय 8-9, विष्णु - पुराण - चतुर्थ-अंश, अध्याय 7 पृष्ठ 41-45, ब्रह्माण्डपुराण, द्वितीय-खण्ड - 29-55.

गंगा वेग से आगे बढ़ती गयी मार्ग में जह्नु ऋषि के आश्रम को भी बहाकर ले जाने लगी तो क्रोध से महर्षि जहनु ने अपने में समाहित कर लिया फिर भगीरथ ने प्रार्थना की तो जह्नु ने पुत्री रूप में उन्हें मुक्त किया। इस प्रकार गंगा सागर संगम पर पहुँचकर गंगा ने सगर के जले हुए पुत्रों की राख छूकर उन्हें सद्गति प्रदान की।

कुमारसम्भव में विष्णु के चरणों से निकलने वाली गंगा[1] का उल्लेख है। रघुवंश में तीन बार इस कथा को आधार बनाया गया है - शिव-जटा से निःसृत पूर्वसागरगामिनी गंगा का,[2] सर्वसमर्थ भगवान विष्णु के चरण-कमलों से निकलने वाली गंगा का[3] तथा शिवजी के शिर के ऊपर गंगाजी की धारा गिरने का[4] विस्तृत वर्णन है। किरातार्जुनीय में भी एक स्थल पर इस पौराणिक कथा का वर्णन है - महान वेग से आने वाली गंगा को महातेजस्वी महर्षि जह्नु ने अपने में विलीन कर लिया था।[5]

---

1. यथैव श्लाघ्यते गंगा पादेन परमेष्ठिनः ।
   प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया ।। कुमार0 6/70 ।।
2. स सेनां महती कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम् ।
   बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः ।। रघु0 4/32 ।।
3. बभौ सदशनज्योत्स्ना सा विभोर्वदनोद्गता ।
   निर्यातशेषा चरणाद् गङ्.गेवोर्ध्वप्रवर्तिनी ।। वही0 10/37 ।।
4. तस्यौघमहती मूर्ध्नि निपतन्ती व्यरोचत ।
   सशब्दमभिषेकश्रीर्गङ्.गेव त्रिपुरद्विषः ।। वही0 17/14 ।।
5. रयेणा सा सन्निदधे पतन्ती भवोद्भवेनात्मनि चापयष्टिः ।
   समुद्धता सिन्धुरनेकमार्गा परे स्थितेनौजसि जह्नुनेव ।। किरात0 17/52 ।।

शिशुपाल वध [1]

एक दिन ब्रह्मा के मानस-पुत्र सनकादि ऋषि (प्राचीन होते हुए भी पांच छः वर्ष के बच्चे लगते हैं, वस्त्र भी धारण नहीं करते) त्रैलोक्सय में स्वच्छन्द विचरण करते हुए वैकुण्ठ में जा पहुँचे। उन्हें साधारण बालक समझकर द्वारपालों ने अन्दर जाने से रोक दिया। इस पर वे क्रोधित हो गये और द्वारपालों को शाप दे दिया। हे मूर्खो! भगवान् विष्णु के चरण तो रजोगुण एवं तमोगुण से रहित हैं। तुम दोनों इनके समीप निवास करने योग्य नहीं हो। इसलिए शीघ्र ही तुम यहां से पापमयी असुर योनि में जाओ। उनके शाप देते ही जब वे वैकुण्ठ से नीचे गिरने लगे, तब उन कृपालु महात्माओं ने कहा - "अच्छा तीन जन्मों में इस शाप को भोगकर तुम फिर इसी वैकुण्ठ में आ जाओगे।" वे दोनों जय-विजय थे जय ही पहले जन्म में हिरण्यकशिपु हुआ तो विष्णु भगवान् ने नृसिंह रूप धारण करके उसका उद्धारा किया। दूसरे जन्म में वही जय रावण हुआ, तब विष्णु ने रामावतार लिया और रावण का वध किया। तीसरे जन्म में जय शिशुपाल के रूप में पैदा हुआ तब उसके कुछ अतिरिक्त अंग थे इस कारण उसके पिता ने उसे मार डालना चाहा, किन्तु भविष्यवाणी हुई कि यह महान् चक्रवर्ती सम्राट होगा और जिसके स्पर्श से इसकी भुजाएं गिर जायें वही इसका अन्तकर्त्ता होगा। इस प्रकार किसी के स्पर्श से जब उसके अंग न गिरे तो कृष्ण से उसका स्पर्श कराया गया, स्पर्श करते ही उसके अतिरिक्त अंग गिर गये। कालान्तर में राजा युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ किया उसमें शिशुपाल अपमानित होकर गाली देने लगा जिसके कारण कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट लिया और जय को राक्षस-योनि से मुक्ति मिली। शिशुपाल-वध में इस कथानक का उल्लेख सुदर्शन चक्र से शिशुपाल के शरीर को सिर विहीन करने वाले कृष्ण के रूप में है।[2]

---

1. भागवत-पुराण - सातवां-स्कन्ध, प्रथम-अध्याय, दशम-स्कन्ध अध्याय 74, महाभारत सभापर्व 33-45.
2. तेनाक्रोशत एव तस्य मुरजित् तत्काललोलानल,
ज्वालापल्लवितेनमूर्धविकलं चक्रेण चक्रे वपुः ।। शिशु0 20/78 ।।

सागर-मन्थन एवं विष्णु का कूर्मावतार[1]

प्रलयकाल में जब सब कुछ जलमयी हो गया। पृथिवी के सारे तत्त्व तथा हिमालयादि पर्वत की ओषधियाँ समुद्र में बह गयी। ओषधियों के ही साथ वह अमृत भी बह गया जिससे देवता शक्ति प्राप्त करते थे। इसी कारण देवता दैत्यों से हार गये और विष्णु की शरण में आये। विष्णु से देवों ने प्रार्थना की कि प्रभो! अपनी शक्ति से हमारे तेज को पुनः बढ़ाइये। विष्णु ने अमृत-प्राप्ति हेतु उपाय बताया कि देवों! तुम दैत्यों के साथ मिलकर सागर-मन्थन करो उससे जो अमृत प्राप्त होगा, उससे तुम बलवान एवं अमर भी हो जाओगे। देवों एवं दैत्यों ने मिलकर नाना प्रकार की ओषधियां लाकर समुद्र में डाल दी। मन्दराचल पर्वत की मथानी बनाये तथा वासुकि नाग को रस्सी। इसी समय मथानी को आधार देने के लिए भगवान विष्णु ने कूर्म-रूप (कच्छप) धारण करके मन्दराचल को अपनी पीठ पर रख लिए। ऐसे कूर्म के रूप में प्रादुर्भूत भगवान् विष्णु का दर्शन कर ऋषियों ने स्तुति किया।

ऐसी ही कथा कूर्म-पुराण[2] तथा पद्म-पुराण[3] में भी वर्णित है। कुमारसम्भव में दो बार - समुद्र-मन्थन के समय उड़े हुए अमृत के छोटे-छोटे कणों का,[4] मंथन के समय समुद्र के गर्जन का,[5] इस पौराणिक कथा का उल्लेख है। रघुवंश में भी दो बार इस कथानक का विवरण मिलता है - क्षीरसागर की लहरों ने मन्दराचल से उठे हुए छींटो से विष्णु के ऊपर वर्षा की,[6] मथे जाते हुए समुद्र की गम्भीर ध्वनि का।[7]

---

1. विष्णु-पुराण प्रथम अंश, अध्याय 9.
2. कूर्म-पुराण - अध्याय 45.
3. पद्म-पुराण - सृष्टि खण्ड.
4. पद्मनाभावलयाङ्किताश्मसु प्राप्तवत्स्वमृतविप्रुषो नवाः ।। कुमार0 8/23 ।।
5. प्रमथ्यमानाम्बुधिगर्जितर्जनैः सुरारिनारीगणगर्भपातनैः ।। वही0 14/18 ।।
6. पृषतैर्मन्दरोद्धूतैः क्षीरोमय इवाच्युतम् ।। रघु0 4/27 ।।
7. ततः प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम् ।। वही0 3/59 ।।

किरातार्जुनीय में दो बार इस पुरा-कथा का वर्णन है - अमृत के लिए समुद्र को मथे जाने का[1] तथा मन्दराचल से उछले क्षीरसागर का।[2] शिशुपाल वध में पाँच-छः बार इस कथानक का प्रयोग करके माघ ने विस्तृत आयाम इस कथानक को तथा काव्य में प्रदान किया - मन्दराचल रूपी मथनी से व्याकुल समुद्र से अमृत की उत्पत्ति,[3] मन्दर द्वारा मथे गये समुद्र का,[4] समुद्र-मन्थन का दृश्य स्मरण करने वाले श्रीकृष्ण का[5] मन्दराचल की मथानी से मथे गये कल-कल शब्द वाले समुद्र के जल का,[6] कूर्मावतार की,[7] समुद्र-मन्थन के समय मन्दराचल की मथानी बनाई।[8] नैषध में इन्द्र-दूती लक्ष्मी की उत्पत्ति की ओर संकेत करती है - वैदर्भि! जिन देवों ने सागर मथकर विष्णु हेतु लक्ष्मी निकाली थी, इन्द्र के लिए अब पुनः लक्ष्मी न निकालना पड़े।[9]

---

1. येनापविद्ध सलिलः स्फुटनागसद्मा देवासुरैरमृतमम्बुनिधिर्ममन्थे ।
व्यावर्तनैरहिपतेरयमाहिताङ्.कः खं व्यालिखन्निव विभाति स मन्दराद्रिः
।। किरात0 5/30 ।।

2. प्रेरितः शशधरेण करौघः संहतान्यपि नुनोद तमांसि ।
क्षीरसिन्धुरिव मन्दरभिन्नः काननान्यविरलोच्चतरूणि ।। वही0 9/28 ।।

3. अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति ।
शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना ।। शिशु0 2/107 ।।

4. प्रमथितभूभृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता ।
चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदन्तरं महत् ।। वही0 3/82 ।।

5. उद्वीक्ष्य श्रियमिव कांचिदुत्तरन्तीमस्मार्षीज्जलनिधिमन्थनस्य शौरिः ।। वही0 8/64 ।।

6. शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेतं कलशिमुदधिगुर्वीं बल्लवा लोडयन्ति ।। वही0 11/8 ।।

7. असकृद्गृहीतबहुदेहसंभवस्तदसौ विभक्तनवगोपुरान्तरम् ।। वही0 13/28 ।।

8. दधुरम्बुधिमन्थनाद्रिमन्थभ्रमणायस्तफणीन्द्रपित्तजानाम् ।
रूचमुल्लसमानवैनतेयद्युतिभिन्नाः फणभारिणो मणीनाम् ।। वही0 20/56 ।।

9. नैनं त्यज क्षीरनिधिमन्थनचैरस्यानुजायोद्गमितामरैः श्रीः ।। नैषध 6/80 ।।

देवासुर-संग्राम[1]

यद्यपि दैत्यों ने बड़ी सावधानी से समुद्र-मन्थन की चेष्टा की थी, फिर भी भगवद्-भक्ति से विमुख होने के कारण उन्हें अमृत की प्राप्ति नहीं हुई। भगवान् ने सभी देवों को बड़ी चालाकी से अमृत पिलवा दिया। फिर देखते-देखते गरूड़ पर सवार हो वहाँ से चल दिए। जब दैत्यों ने देखा कि हमारे शत्रुओं को तो बड़ी सफलता मिली तब वे उनकी वृद्धि न सह सके। उन्होंने तुरन्त देवताओं पर धावा बोल दिया। इधर देवताओं ने अमृत पीकर विशेष शक्ति प्राप्त कर ली थी और दूसरे उन्हें भगवान् के चरणों का आश्रय था ही। बस वे भी अस्त्र-शस्त्र सहित जुट गये। क्षीरसागर के तट पर भड़ा भयंकर एवं रोमांचकारी युद्ध हुआ, जो देवों की अन्तिम विजय से समाप्त हुआ। देवताओं एवं दैत्यों की इस घमासान लड़ाई को ही देवासुर-संग्राम के नाम से जाना जाता है। हरिवंश-पुराण[2] के हरिवंश-पर्व तथा भविष्य-पर्व में भी इसी से मिलती जुलती कथा वर्णित है। रघुवंश में - देवासुर-संग्राम में बैल का रूप धारण करने वाले इन्द्र का वर्णन किया गया है।[3]

---

1. भागवत-पुराण, अष्टम-स्कन्ध - अध्याय 10-11
2. हरिवंश-पुराण - हरिवंशपर्व, अध्याय 45, भविष्यपर्व अध्याय 53-56.
3. महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपं यः संयति प्राप्तपिनाकलीलः ।
   चकार बाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः ।। रघु0 6/72 ।।

xxxxxx

षष्ठ-अध्याय : गौण पौराणिक उपाख्यान एवं महाकाव्यों में उनका वर्णन

ययाति की कथा[1]

चन्द्रवंशियों में नहुष महान् प्रतापी राजा था। अपने प्रताप से उसने देवराज इन्द्र का पद प्राप्त किया, किन्तु जब उसने इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी से सहवास की चेष्टा की तो ब्राह्मणों ने इन्द्र पद से गिराकर इसे अजगर बना दिया। इस प्रकार नहुष के छः पुत्रों - यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति, में ययाति राजा बना। इसने अपने भाइयों को चार दिशाओं में नियुक्त कर दिया और स्वयं शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और देत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को पत्नी के रूप में स्वीकार करके पृथ्वी की रक्षा करने लगा। एक दिन शर्मिष्ठा गुरू पुत्री देवयानी और हजार सखियों के साथ एक सुन्दर सरोवर में नग्न ही जलक्रीड़ा कर रही थी, तभी उधर से भगवान शंकर और पार्वती जा रहे थे। उन्हें देखकर कन्याएँ सकुचा गयीं और झटपट वस्त्र-धारण करने लगी, इस जल्दबाजी में शर्मिष्ठा और देवयानी का वस्त्र बदल गया। इस पर दोनों में तीखी नोक झोंक हुई और शर्मिष्ठा ने उसे कुएँ में झोंक दिया। शिकार खेलते हुए राजा ययाति उधर से गुजरे तो जल की आवश्यकता वश कुएँ के पास गये तो देवयानी को उसी में विवस्त्रावस्था में पाया और उसे बाहर निकाला। राजा ययाति के चले जाने पर देवयानी रोती-बिलखती पिता के पास पहुँची और सारी बातें पिता से बता दी। शर्मिष्ठा के व्यवहार से शुक्राचार्य का मन उचट गया और उन्होंने पुरोहित-कर्म की निन्दा भी की। जब वृषपर्वा को यह बात मालूम हुई तो उसने सोचा कि गुरूजी कहीं शत्रुओं को न जिता दें अथवा शाप न दे दें। अतएव आगे रास्ता रोककर उनके चरणों में गिर पड़े तो शुक्राचार्य ने कहा कि राजन् मैं अपनी पुत्री को नहीं छोड़ सकता इसलिए इसकी जो इच्छा हो उसे पूरी कर दो, मुझे लौटने में कोई आपत्ति नहीं है। वृषपर्वा ने बात स्वीकार कर ली। देवयानी ने कहा कि मैं जहाँ कहीं जाऊँ या विवाहिता बनूँ वहाँ शर्मिष्ठा अपनी सहेलियों

---

1. भागवत-पुराण - नवम स्कन्ध, अध्याय-18, विष्णु-पुराण - चतुर्थ अंश - 264, हरिवंश-पुराण हरिवंशपर्व 30/133 .

के साथ मेरी सेवा करे। शर्मिष्ठा ने परिवार संकट और उनके कार्य का गौरव देखकर देवयानी की बात स्वीकार कर ली वह अपनी सहेलियाँ के साथ देवयानी की सेवा करने चली। शुक्राचार्य ने ययाति के साथ देवयानी का विवाह करके, शर्मिष्ठा को दासी के रूप में देकर उनसे कह दिया कि राजन्! इसको अपनी सेज पर कभी मत आने देना।

कुछ दिनों के पश्चात् देवयानी पुत्रवती हो गयी जिसे देखकर ऋतुस्नाता शर्मिष्ठा ने राजा ययाति से एकान्त में सहवास की याचना की। शुक्राचार्य की कही बात - "इसे सेज पर कभी न आने देना", याद होने पर भी पुत्र हेतु प्रार्थना को धर्मसंगत जानकर ययाति ने शर्मिष्ठा के साथ भी सम्भोग किया। इस प्रकार देवयानी के दो तथा शर्मिष्ठा के तीन पुत्र पैदा हुए। जब देवयानी को यह बात मालूम हुई तो क्रोध से आग बबूला होकर वह अपने पिता के घर चली गयी। कामी ययाति के मनाने के सारे प्रयास विफल हो गये। शुक्राचार्य ने उसे वृद्ध हो जाने का शाप दे दिया। किन्तु राजा के अनुनय विनय पर गुरू शुक्राचार्य ने कहा कि यदि कोई अपनी जवानी तुम्हें प्रसन्नता से दे देगा तो तुम जवान हो जाओगे। राजा ययाति ने बड़े पुत्र यदु से इसकी प्रार्थना की तो यदु ने कहा पिताजी! बिना समय के ही प्राप्त हुआ आपका बुढ़ापा लेकर तो मैं जीना भी नहीं चलता, क्योंकि विषय सुख का अनुभव किए बगैर वैराग्य नहीं होता। इसी प्रकार का उत्तर तुर्वसु, द्रुह्यु तथा अनु ने भी दिया। अब ययाति ने पुरू से याचना की। पुरू ने पिता की याचना स्वीकार करते हुए कहा कि वास्तव में पुत्र का शरीर पिता का ही दिया हुआ है, ऐसा कौन भाग्यशाली है जो उपकारों काा बदला चुका सके। उत्तम पुत्र वह है, जो पिता के मन की बात बिना कहे ही कर दे। कहने पर जो पालन करे वह मध्यम, जो कहने पर अश्रद्धा से पालन करे वह अधम तथा जो कहने पर भी पालन न करे उसे पुत्र ही नहीं कहा जा सकता, इस प्रकार उसने अपनी जवानी पिता को दान कर दी राजा भी पूर्ववत विषयों का सेवन करने लगे किन्तु 'विषयों के भोगने से काम वासना शान्त नही होती।[1] एक दिन जब उन्हें अपने अध:पतन का ज्ञान हुआ तो वैराग्य हो गया और अपनी जवानी पुत्र पुरू को देकर वैरागी हो गये और भागवती गति को प्राप्त हो गये। हरिवंश पुराण एवं विष्णु पुराण में भी ऐसी ही कथा वर्णित है। शिशुपालवध में कामपीडित राजा ययाति द्वारा अपने युवा ज्येष्ठ पुत्र यदु से उसकी युवावस्था मांगने न पाने पर उसे शाप देने एवं राज्य विहीन करने का उल्लेख है।[2]

---

1. न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।। भागवत0 9/19/14 ।।

2. जगति श्रिया विरहितोऽपि यदुदधिसुतामुपायथाः ।
ज्ञातिजनजनितनामपदां त्वमतः श्रियः पतिरिति प्रथामगाः ।। शिशु0 15/27 ।।

प्रद्युम्न द्वारा शम्बरासुर वध[1]

भगवान शंकर के कोपानल में भस्म कामदेव ने दूसरे जन्म में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में रूक्मिणी के गर्भ से पैदा हुए। बालक प्रद्युम्न अभी दस दिन के भी न हुए थे कि शम्बरासुर ने वेष बदलकर सूतिका गृह से चुराकर उन्हें समुद्र में फेंक दिया। एक बड़े मत्स्य ने उन्हें निगल लिया। धीवरों के जाल में मछलियों के साथ वह मत्स्य भी फंस गया और धीवरों ने उसे शम्बरासुर के भोजन गृह में पहुँचा दिया। मत्स्य के काटने पर एक सुन्दर बालक उसके पेट से निकला। रति अपने पति कामदेव के भस्म होने पर उसकी प्रतीक्षा करती हुए मायावती के रूप शम्बर के भोजनगृह में रसोइयां का काम करती थी। नारद ने उससे बालक के विषय में सारा वृतान्त बता दिया था,। इसलिए उसने सब प्रकार से बच्चे का पोषण किया प्रद्युम्न के युवा होने पर मायावती ने सारा रहस्योद्घाटन किया और उन्हें सारी मायाओं को नष्ट करने वाली महामाया विद्यादी, जिससे प्रद्युम्न ने शम्बर का वध किया और मायावती से विवाह कर द्वारका पहुँचे कालान्तर में अनिरूद्ध नामक पुत्र पैदा हुआ, किन्तु एक अन्य स्थल पर अनिरूद्ध का जन्म रूक्मवती या चन्द्रसेना से हुआ था जो प्रद्युम्न के मामा रूक्मी की कन्या थी। इससे भी प्रद्युम्न का विवाह हुआ था। हरिवंश में भी इसी प्रकार की कथा वर्णित है। विष्णु पुराण का भी वर्णन इसी से मिलता जुलता है। नैषध में तीन स्थलों पर - नल के दमयन्तीगतपूर्वराग के वर्णन प्रसंग में,[2] कामदेव की शाम्बरी मायामयी रचना जैसे नल का[3] कृष्ण- रूप विष्णु के आत्म- रूप चतुर्भुज कामदेव का,[4] इस कथानक को आधार बनाया गया है।

---

1. भागवत-पुराण - 16वॉं स्कन्ध, अध्याय 55, विष्णु-पुराण 27/270, हरिवंश पुराण - 107/667.
2. स्मरः स रत्यामनिरूद्धमेव यत् सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः ।। नैषध 1/54 ।। यहां श्रीहर्ष द्वारा श्लेषरक्षार्थ अनिरूद्ध को रतिपुत्र बताना हरिवंश एवं भागवत की पुराकथाा के विरूद्ध है। यही नहीं विष्णु-पुराण में भी अनिरूद्ध को रूक्मवती का पुत्र बताया गया है।
3. जातेव यद्वा जितशम्बरस्य सा शाम्बरीशिल्पमलक्षिदिक्षु ।। नैषध 6/14 ।।
4. आत्मैव तातस्य चतुर्भुजस्य जातश्चतुर्दोरूचितः स्मरोऽपि ।। वही0 7/65 ।।

जरासन्ध की कथा[1]

मगध नरेश बृहद्रथ की दो पत्नियाँ थी - दोनों काशिराज की जुड़वा सन्तान थीं। चिरकाल के बाद भी जब बृहद्रथ को कोई सन्तान न हुई तो दुःखी राजा पत्नी सहित चण्डकौशिक मुनि के पास पहुँचे, उन्हें अपनी सारी मनो-व्यथा सुनाई। मुनि उस समय आम्रवृक्ष की छाया में बैठे थे। सुयोग से मुनि की गोद में आम्र का एक फल गिरा जिसे राजा की इच्छा का पूरक मानकर मुनि ने उन्हें दे दिया। राजा ने दोनों रानियों को उस फल को दिया दोनों ने आधा-आधा करके खा लिया। फलतः दोनों को गर्भ ठहर गया। किन्तु निश्चित समय पर दो आधे-आधे टुकड़े वाले सजीव बच्चे पैदा हुए। राजा ने डरकर उन दोनों टुकड़ों को चौराहे पर फेंकवा दिया। जरा नाम की राक्षसी भोजन की तलाश में जब वहां पहुँची तो दोनों टुकड़ों को उठाकर जैसे ही संयुक्त किया वैसे ही वह सुन्दर बालक बन गया। अन्त में राजा के पास वह दोनों टुकड़ों को लेकर आयी। राजा को अपना नाम और सारी कहानी बतायी। बृहद्रथ अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा जरा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए पुत्र का नाम जरा-सन्ध रखा। महाभारत के सभा-पर्व में भी यह कथा लगभग इसी रूप में वर्णित है। शिशुपाल-वध में भीमसेन द्वारा जरासन्ध के मारे जाने का,[2] तथा नैषध में दमयन्ती द्वारा किए गए चन्द्रोपालम्भ प्रसंग में[3] इस कथानक का स्मरण किया गया है।

---

1. विष्णु-पुराण - 5/33/398, महाभारत - सभापर्व - अध्याय - 17, 18 ।
2. हतेहिडिम्बरिपुणा राज्ञि द्वैमातुरे युधि ।
   चिरस्य मित्रव्यसनी सुदमो दमघोषजः ।। शिशु0 2/60 ।।
3. सखि! जरां परिपृच्छ तमः शिरः सममसौ दधतापि कबन्धताम् ।
   मगधराजवपुर्दलयुग्मवत् किमिति न व्यतिसोव्यति केतुना ।। नैषध 4/69 ।।

सूर्यदेव की सन्तानें [1]

सूर्य देव की राज्ञी (संज्ञा) तथा निक्षुभा नाम की दो पत्नियाँ थी। संज्ञा बेहद रूपवती और पतिव्रता थी। उसकी तीन सन्तानें मनु, यम तथा यमुना थीं। संज्ञा को सूर्य का अत्यन्त चमकीला रूप पसन्द न था, अतः वह अपने पिता के घर चली गयी और एक हजार वर्ष तक वहाँ वास किया। जब उसके पिता ने पति सूर्य-गृह जाने की बात की तो संज्ञा उत्तर कुरूदेश की ओर चली गयी और वहाँ तुरंगी का रूप धारण कर रहने लगी। उधर निक्षुभा को भी तीन सन्तानें - श्रुतश्रवा, श्रुतकर्मा तथा तपती, पैदा हुई। निक्षुभा संज्ञा की सन्तानों से ईर्ष्या करती थी। एक दिन यम से उसका झगड़ा हो गया। सूर्य को जब इस बात का पता चला तो सूर्य क्रोधित हुए और छाया (निक्षुभा) ने अपना वास्तविक रूप बता दिया। इसी समय विश्वकर्मा ने सूर्य का तेज क्षीण कर डाला और सूर्य को उत्तम रूप वाला बना दिया। अश्व के रूप में सूर्य उत्तरकुरू में संज्ञा के पास गये दोनों के समागम से अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति (घोड़ी की नासिका से) हुई। इसकी विशद चर्चा श्रीहर्ष ने अपने नैषध में किया है। हजारों पैरों वाले भगवान् भास्कर के पुत्र शनैश्चर के लगड़ा होने,[2] यम के पैदा होने में संज्ञा के मातृत्व एसवं निक्षुभा के अमातृत्व,[3] आदित्य के यम-पिता होने,[4] यम के अश्विनी कुमारों काा सहोदर होने,[5] यम, यमुना और शनैश्चर के गोरे भास्कर की सन्तान होने[6] तथा लोकरक्षार्थ सूर्य के शनि एवं यम का सुत रूप में उत्पन्न होने[7] तथा विश्वकर्मा द्वारा सूर्य को शाण पर चढ़ाने का[8] उल्लेख है।

---

1. भविष्य-पुराण - अध्याय 75.
2. यं प्रासूत सहस्रपादुद्भवत्पादेनखंजः कथम् ।। नैषध 5/136 ।।
3. मित्रप्रियोपजननं प्रतिहेतुरस्य संज्ञा श्रुता सुहृदयं न जनस्य कस्य ।। वही0 13/17 ।।
4. किं च प्रभावनमिताखिलराजतेजा देवः पिताम्बरमणी रमणीयमूर्तिः ।। वही 13/18 ।।
5. भूतेषु यस्य खलु भूरियमस्य वश्यभावं समाश्रयति दलसहोदरस्य ।। वही 13/19 ।।
6. शमनयमुनाक्रोडैः कालैरितस्तमसापिबादपि यदमलच्छायात्कायादभूयतभास्वतः ।। वही 19/
7. शनिं शमनमपि स त्रातुं लोकानुसूत सुताविति ।। वही 19/47 ।।
8. भ्रमदणुगणक्रान्ता भान्ति भ्रमन्त्य इवाशु याः ।
   पुनरपि धृताः कुन्दे किं वा न वर्धकिना दिवः ।। वही 19/54 ।।

नरकासुर-वध[1]

हिरण्याक्ष द्वारा जब पृथ्वी का हरण कर लिया गया तो भगवान् विष्णु ने वराह या सूकरावतार धारण कर पृथिवी का उद्धार किए। पाताल लोक में पृथ्वी को वराह के स्पर्श से नरकासुर का जन्म हुआ था। वही यह नरकासुर इस समय प्राग्ज्योतिषसुर का स्वामी है। जिसने अपने बल से देवता, असुर, गन्धर्व तथा धरती के राजाओं की लगभग 16000 कन्याओं को बन्दी बनाकर रखा है। इसने वरुण का जल बरसाने वाला छत्र तथा मन्दराचल का मणिपर्वत भी छीन लिया। देवमाता अदिति के अमृतस्रावी दोनों दिव्य कुण्डल भी छीन लिए। इस भय से आक्रान्त इन्द्र ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि आप नरकासुर को मारकर धरती का कल्याण करें। कृष्ण ने उन सबकी प्रार्थना सुनकर एवं स्वीकार कर अपनी प्रिया सत्यभामा के साथ गरूड़ पर सवार होकर असुर को मारने गये। सत्यभामा को साथ इसलिए ले गये कि सत्यभामा पृथ्वी की अवतार हैं और इनके कहने से ही इनके पुत्र का वध होगा क्योंकि पिता द्वारा ही पुत्र का वध उचित नहीं। अन्ततः नरकासुर को मारकर वहाँ की 16000 कन्याओं से विवाह किया। प्रभूत धन–सम्पदा द्वारका पहुँचवा दिए और अदिति का कुण्डल देने देव–लोक गये। हरिवंश–पुराण में इस कथा को विस्तृत रूप दिया गया है। शिशुपाल–वध में तीन स्थलों पर - पृथ्वी के पुत्र नरकासुर के शत्रु श्रीकृष्ण का,[2] नरकासुर को पराजित करने वाले श्रीकृष्ण का[3] तथा नरकासुर का संहार करने वाले कृष्ण का[4] उल्लेख है।

---

1. विष्णु-पुराण - पंचम अंश - अध्याय 29, हरिवंश-पुराण - विष्णुपर्व अध्याय - 63.
2. व्यक्तत्वं नियतमनेन निन्युरस्याः सापत्न्यं क्षितिसुतविद्विषोमहिष्यः ।।शिशु0 8/15 ।।
3. हस्तस्थिताखण्डितचक्रशालिनं द्विजेन्द्रकान्तं श्रितवक्षसं श्रिया ।
   सत्यानुरक्तं नरकस्य जिष्णवो गुणैर्नृपाः शार्ङ्गिणमन्वयासिषुः ।। वही 12/3 ।।
4. कृतगोपवधूरतेर्घ्नतो वृषमुग्रे नरकेऽपि संप्रति ।
   प्रतिपत्तिरधःकृतैनसो जनताभिस्तव साधु वर्ण्यते ।। वही0 16/8 ।।

पूतना-उद्धार [1]

राजा बलि की कन्या की रत्नमाला। उसने बलि की यज्ञशाला में वामन भगवान को देखा तो उसके हृदय में पुत्र स्नेह का भाव उदय हो गया। वह मन ही मन अभिलाषा करने लगी कि यदि मुझे ऐसा बालक हो और मैं उसे स्तन पिलाऊँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। (शायद इसीलिए कहा गया है कि नारी का माँ बनना उसके जीवन का उत्कर्ष है) वामन भगवान ने अपने भक्त बलि की पुत्री के इस मनोरथ का मन ही मन अनुमोदन कर दिया। वही रत्नमाला ही द्वापर युग में पूतना हुई और श्रीकृष्ण के स्पर्श से उसकी लालसा पूरी हुई। पूतना बड़ी क्रूर राक्षसी थी। उसका एक ही काम था - बच्चों को मारना। कंस की आज्ञा से वह बच्चों को मारने हेतु घूमा करती थी। वह इच्छानुसार आकाशचारिणी तथा अनेक रूप धारिणी थी। एक दिन नन्द बाबा के गोकुल के पास आकर अपने को सुन्दरी बनाया। वह अपनी मधुर मुस्कान तथा कटाक्षपूर्ण चितवन से ब्रजवासियों का चित्त चुरा रही थी। उसने बालक श्रीकृष्ण के पास पहुँचकर उन्हें गोद में उठा लिया और उनके मुँह में अपना स्तन दे दिया जिसमें भयंकर विष लगा हुआ था। श्रीकृष्ण ने उसके स्तनों को जोर से दबाकर दूध के साथ प्राण को भी पीना शुरू किया। वह चीखने चिल्लाने लगी। उसकी चिल्लाहट का वेग बड़ा भयंकर था। इस प्रकार निशाचरी पूतना के स्तनों में अपरम्पार पीड़ा हुई जिससे वह अपने राक्षसी रूप में आ गयी। उसके शरीर से प्राण निकल गये। जब गोपियों ने निर्भय श्रीकृष्ण को उसकी छाती पर खेलते हुए देखा तो उत्प्रेक्षा कर रही थी। पूतना के वक्ष स्थल पर क्रीड़ासक्त श्रीकृष्ण मानों मन ही मन कह रहे हैं - "मैं दुधमुहाँ शिशु हूँ, स्तनपान मेरी जीविका है। तुमने तो स्वयं अपना स्तन मेरे मुँह में दिया और मैंने पिया। इससे यदि तुम मर गयी तो तुम्हीं बताओ मेरा इसमें क्या अपराध है? इस प्रकार भगवान् ने पूतना को (मातृ रूप) सद्गति प्रदान की। इस प्रकार 'पूतना-उद्धार' तो श्रीकृष्ण की अद्भुत बाल-लीला है। विष्णु तथा हरिवंश-पुराण में भी जो कथा आयी है वह भागवत के अनुरूप है। शिशुपालवध में कृष्ण की बुद्धि जब मातृ रूप अबला पूतना के प्रति दया युक्त नहीं हुई तो क्या उनकी प्रशंसा की जाय,[2] कथानक का उल्लेख है।

---

1. भागवत-पुराण 106/134, विष्णु-पुराण, पंचम अंश अ0 5, हरिवंश-पुराण, विष्णु-पर्व, अध्याय - 6/21-34 .
2. यदि नाङ्गनेति मतिरस्य मृदुरजनि पूतनां प्रति ।
   स्तन्यमघृणमनसः पिबतः किल धर्मतो भवति सा जनन्यपि ।। शिशु0 15/36 ।।

शकटासुर - उद्धार [1]

हिरण्याक्ष का पुत्र था उत्कच। वह बहुत बलवान एवं मोटा हृष्ट-पुष्ट था। एक बार यात्रा करते हुए उसने लोमश ऋषि के आश्रम के वृक्षों को कुचल डाला। लोमश ऋषि ने क्रोधित होकर शाप दे दिया - 'अरे दुष्ट! जा, तू देहरहित हो जा'। उसी समय साँप के केचुल के समान उसका शरीर गिरने लगा तो लोमश के चरणों में उत्कच गिर पड़ा और अनुनय विनय किया - हे कृपासिन्धु! मुझ पर कृपा कीजिए। मुझे आपके प्रभाव का ज्ञान नहीं था। मुझे मेरा शरीर लौटा दीजिए। लोमश जी प्रसन्न होकर बोले कि द्वापर-युग में जब भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श होगा तभी तेरी मुक्ति होगी। इस प्रकार वह देहविहीन होकर रहने लगा। द्वापर में जब कृष्ण का जन्म हुआ तो वह उत्कच भी नन्द बाबा के घर जाकर उसी शकट या छकड़े के नीचे जहाँ कृष्ण को सुलाया जाता था उसी शकट पर जाकर बैठ गया। एक बार जब कृष्ण का करवट बदलने का उत्सव मनाया जा रहा था तो यशोदा ने पुत्र का अभिषेक किया उसके बाद कृष्ण को नींद आती देख उन्हें सुला दिया। थोड़ी देर में श्याम सुन्दर की आँखे खुलीं तो वे स्तनपान के लिए रोने लगे। रोते-रोते हाथ पाँव उछालने लगे अन्ततः उनका पाँव जाकर छकड़े में लगा वह टूटकर उलट गया और उसी समय कृष्ण के चरणों का स्पर्श देहरहित उत्कच को हो गया और उसे लोमश के शाप से मुक्ति मिली। विष्णु-पुराण में यही कथा थोड़ी संक्षिप्त है। शिशुपाल-वध में माघ ने इस कथानक का तीन बार - सप्तर्षि-मण्डल कृष्ण के बचपन के पैरों से ऊपर उठाये विशाल शकटासुर के शरीर का,[2] अपने चंचल पैरों से उस महान शकट को छूने का[3] तथा शकटासुर के वध[4] का वर्णन है।

---

1. भागवत-पुराण 10/7/1-40, विष्णु-पुराण, पंचम-अंश, अध्याय 6.
2. शकटमिवमहीयः शैशवे शाङ्र्गपाणेश्चपलचरणकाब्जप्रेरणोत्तुङ्गिताग्रम् ।।शिशु0 1/.
3. चलतैष पादयुगलेन गुरू शकटमीषदस्पृशत् ।
   दैवकलितमथ चोदलसद्दलितोरूभाण्डचयमात्मनैव तत् ।। वही0 15/22 ।।
4. शकटव्युदासतरूभङ्गधरणिधरधारणादिकतम् ।
   कर्म यदयमकरोत्तरलः स्थिर चेतसां क इव तेन विस्मयः ।। वही 15/37 ।।

बलराम द्वारा यमुना-कर्षण[1]

एक बार हलधर बलराम अपने प्रियजनों से मिलने हेतु ब्रज गये। वहाँ गोपी-गोपियों के साथ मिलकर अपूर्व आनन्द का अनुभव किया। एक दिन ब्रज में ही गोपों के साथ वन-विहार करने हेतु वन में गये। वहाँ गोपालों ने उन्हें वारूणी (मदिरा) भेंट की। वारूणी-पान से हलधर बलराम मदमस्त हो गये और मदविह्वल होकर यमुना-स्नान की इच्छा की। उन्होंने मस्ती में यमुना को अपने पास बुलाया। परन्तु वह आती कैसे? अतः मदमस्त बलराम ने क्रुद्ध होकर हल की नोंक से यमुना को अपनी ओर खींचा। यमुना नदी खिंचकर उनके पास चली आयी।[2] आज भी यमुना इसी कारण वहां वक्र दिखाई पड़ती हैं। विष्णु-पुराण[3] तथा भागवत-पुराण[4] में भी इस पुरा कथा का लगभग इसी प्रकार वर्णन है। नैषध में श्रीहर्ष ने विवाहोचित प्रसाधन वर्णन प्रसंग में केशों का सौन्दर्य चित्रित करते हुए इस कथानक की ओर संकेत किया है।[5]

---

1. हरिवंश-पुराण - विष्णु पर्व अध्याय 46.
2. सा विह्वलजलश्रोता हृदयस्थितसंचया ।
   व्यावर्तत नदी भीता हलमार्गानुसारिणा ।। हरिवंश 2/46/35 ।।
3. विष्णु-पुराण - 5/24-25
4. भागवत-पुराण - 10/65
5. बलस्य कृष्टेव हलेनभाति या कलिन्दकन्या घनभङ्गभङ्गुरा ।
   तदाऽर्पितैस्तां करूणस्य कुड्मलैर्जहास तस्याः कुटिला कचच्छटा
   ।। नैषध 15/31 ।।

अग्नि से सुवर्ण की उत्पत्ति[1]

एक बार स्वर्ग लोक में एक सभा हुई जिसमें सारे देवतागण उपस्थित थे। अप्सराओं का मनोहारी नाच-गान भी चल रहा था। उन अप्सराओं में रत्नभूता रम्भा के रमणीय एवं चिन्ताकर्षक रूप को देखकर अग्नि को मदन-विकार हो गया। उस समय उनका जो वीर्य गिरा उसे उन्होंने लज्जावश वस्त्र से ढकना चाहा किन्तु वह वीर्य कान्तिमान स्वर्ण-पुंज के रूप में आगे बढ़ने लगा। कुछ समय में वह इतना बढ़ा कि एक विशाल स्वर्ण-राशि तैयार हो गयी। उससे पहाड़ तैयार हो गया जिसे सुमेरुगिरि नाम दिया गया[2] तभी से अग्नि को हिरण्यरेता: (स्वर्णमयी वीर्यवाला) कहा जाने लगा।[3] महाभारत[4] के अनुशासन-पर्व में भी ऐसी ही कथा वर्णित है। नैषध में केवल एक स्थान पर इस पुरा-कथा का उल्लेख हुआ है। स्वयंवर में सरस्वती अग्नि एवं नल का श्लिष्ट वर्णन करती हुई अग्निदेव से प्रभूत स्वर्ण प्राप्त करने का उल्लेख करती है।[5]

---

1. ब्रह्मवैवर्तपुराण - श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय - 131 .
2. उत्तस्थौ स्वर्णपुंजश्च वस्त्रं क्षिप्त्वा ज्वलत्प्रभम् ।
   क्षणेन वर्धयामास स सुमेरुर्बभूव ह ।। ब्रह्मवैवर्त0 अ0 131-37 ।।
3. हिरण्यरेतसं वह्निं प्रवदन्ति मनीषिण: ।। वही0 131-38 ।।
4. महाभारत - अनुशासन-पर्व - अध्याय 86 .
5. एष प्रतापनिधिरुद्गतिमान् सदा यं किं नाम नार्जितमनेन धनंजयेन ।
   हेमप्रभूतमधिगच्छं शुचेरमुष्मान्नास्त्येव कस्यचन भास्वररूपसम्पत् ।।
   नैषध - 13/9 ।।

दत्तात्रेय-अवतार[1]

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि - ये विष्णु के दस मुख्य अवतार हैं किन्तु अन्य प्रसिद्ध दस अवतारों में दत्तात्रेय की गणना है। धर्म, नारायण, नरसिंह, वामन, दत्तात्रेय, मान्धाता, जामदग्न्य, राम, व्यास, बुद्ध तथा कल्कि इसमें प्रथम तीन अवतार दिव्य उत्पत्तियाँ कही जाती हैं, इनका अवतार विभिन्न युगों में हुआ था तथा शेष सात शुक्र के शाप के कारण त्रेता, द्वापर तथा कलियुगों में हुए। प्रथम त्रेता में धर्म एक चतुर्थांश नष्ट होने दत्तात्रेय अवतार हुआ। हरिवंश पुराण[2] में वेदों तथा वैदिक यज्ञों के नष्ट होने पर वर्धधर्म के अव्यवस्थित हो जाने पर, धर्म के शिथिल होने पर एवं अधर्म आदि के बढ़ने पर विष्णु का दत्तात्रेय-अवतार हुआ। भागवत-पुराण में दत्तात्रेय को अवतार कहा गया और योगनाथ के रूप में वर्णन है।[3] मार्कण्डेय-पुराण में अनुसूया के गर्भ से अत्रि के यहाँ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का सोम, दत्तात्रेय तथा दुर्वासा के रूप में अवतरित होने का वर्णन है।[4] ब्रह्म-पुराण[5] में वैदिक धर्मों के पतन के समय दत्तात्रेय को वैदिकविधियों एवं समाज को पुनः स्थापित करने वाला बताया गया है। स्कन्द-पुराण[6] के काशी-खण्ड दत्तात्रेय तीर्थ की चर्चा है जिसे पूर्ण सिद्धि प्रदायक बताया गया है। अद्वैतवादी अवधूत गीता के भी प्रतिपादक यही माने जाते हैं। नैषध में नल, विष्णु के दत्तात्रेय रूप की प्रार्थना करता है। उन्हें अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादक, सहस्रार्जुन को वरदान देने वाला, योगी होने के कारण अनघ नाम से प्रसिद्ध बताया गया है।[7]

---

1. मत्स्य-पुराण - अध्याय 4.
2. तेन नष्टेषु वेदेषु प्रकियासु मखेषु च ।
   चातुर्वर्णे च संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते ।।
   अभिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते ।
   प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाकुलतां गते ।। हरिवंश0 1/41/5-6।।
3. दत्तस्त्वयोगादथयोगनाथः पायाद ।। भागवत0 6/8/16 ।।
4. सोमो ब्रह्माभवत् विष्णुर्दत्तात्रेयो श्यजायत ।
   दुर्वासाः शंकरो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम् ।। मार्कण्डेय0 17/11 ।।
5. ब्रह्म-पुराण - 213/107-9.
6. स्कन्द-पुराण - काशी-खण्ड 84/18.
7. सन्तमद्वयमये ध्वनि दत्तत्रेयमर्जुनयशोर्जनबीजम् ।
   नौमियोगजयितानघ संज्ञं त्वामलर्कभवमोहतमोऽर्कम् ।। नैषध 21/93 ।।

द्वादश केशव-मूर्तियां[1]

भगवान् जैमिनि ने ब्राह्मणों के लिए विष्णु की बारह मूर्तियों के पूजन का विधान किया गया है। एक-एक मूर्ति की उपासना एक-एक मास में की जानी चाहिए। पूजन में बारह पुष्पों तथा बारह फलों का विधान है। अशोक, मल्लिका, पाटल, कदम्ब, कनेर, चमेली, मालती, शतदलकमल, नीलकमल, बासन्ती, कुन्द और पुन्नाग ये बारह पुष्प हैं तथा अनार, नारियल, आम, कटहल, खजूर, ताल, आँवला, श्रीफल, नारंगी, सुपारी, करौंदा और जायफल ये बारह फल हैं। द्वादशाक्षर मन्त्र से इन मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। महाभारत[2] में भी भीष्म ने युधिष्ठिर को वर्ष के बारह महीनों में प्रतिमास एक-एक करके केशव की बारह मूर्तियों की पूजा करने का विधान बताया है। अग्नि पुराण[3] में विष्णु की चौबीस मूर्तियों का उल्लेख है। वहाँ भी द्वादश अक्षर वाले मन्त्र से ही पूजन का विधान है। नैषध में वैष्णव श्रीहर्ष ने नल की पूजा में केशव (विष्णु) की द्वादश मूर्तियों का उल्लेख करते हैं - 'शिव की पूजा के पश्चात राजा ने पुरूष-सूक्त के आधार पर भगवान् की बारहों मूर्तियों की द्वादशाक्षर मन्त्र से वंदना की।[4]

---

1. स्कन्द-पुराण, उत्कलखण्ड, अध्याय-43 ।।
   स्कन्द-पुराण, काशीखण्ड, अध्याय 6। ।।
2. महाभारत' - अनुशासन-पर्व, अध्याय 109
3. अग्नि-पुराण, अध्याय 48
4. उत्तमं स महति स्म महीभृत्पुरूषं पुरूषसूक्तविधानैः ।
   द्वादशापि च स केशव मूर्तीर्द्वादशक्षरमुदीर्य ववन्दे ।। नैषध 21/41 ।।

   भागवत्-पुराण में नारद ने ध्रुवाराधन हेतु यही द्वादशाक्षर मन्त्र दिया था -

   जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ।
   यं सप्तरात्रं प्रपठन पुमान् पश्यति खेचरान् ।।
   ओम् नमो भगवते वासुदेवाय - मन्त्रेणानेन
   देवस्य कुर्यात् द्रव्यमयीं बुधः ।
   सपर्यां सविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ।। भागवत0 4/8/53-54 ।।

पद्मपुराण[1] में पुरूष-सूक्त के साथ विष्णु-पूजा का विधान है। विष्णु-पुराण में भी पराशर ने मैत्रेय से कहा है कि द्वादशाक्षर मन्त्र से जाप करने वालों को विष्णु पद की प्राप्ति होती है। नैषध के प्रख्यात टीकाकार चाण्डूपण्डित[2] ने 'उत्तमं स महति' की टीका में विष्णु की बारह मूर्तियों का विष्णु के प्रधान दस अवतार तथा लक्ष्मण और बलराम को भी अवतार बताया है।

---

1. पद्म-पुराण - उत्तर खण्ड - 258/58-59.
2. समहीभृत् उत्तमं पुरूषं श्रीकृष्णं पुरूषसूक्तविधानैः सहस्रशीर्षा इत्यादि षोडशार्चनेन आह्वानासनवस्त्रोपवीतपादार्घ्याचमनगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यप्रणामप्रदक्षिणा विसर्जनैः षोडशोपचारैः तथा षडर्चनेन तेनैव निजशरीरेश्रीकृष्णशरीरे चाङ्.गन्यासकरन्यासैश्च महति स्म पूजयति स्म, तथा द्वादशापिकेशवमूर्तीः द्वादशाक्षरमन्त्रम् 'ओम नमो भगवते वासुदेवाय' इति मन्त्रमुदीर्य ववन्दे ननाम। केशवनारायण माधवगोविन्दविष्णुमधुसूदनत्रिविक्रमवामन-श्रीधरहृषीकेशपद्मनाभदामोदरसंज्ञाः । उपरितनदक्षिणभुजाप्रभृति प्रादक्षिण्येनभुजचतुष्टये यथासंख्यं शंखचक्रगदापद्मानिकेशवमूर्तौ। अधस्तनदक्षिणभुजादारभ्यशंखचक्रगदापद्मैः नारायणः। उपरितनवामभुजादारभ्य शंखपद्मगदाचक्रैर्माधवः । अधस्तनवामभुजादारम्य शंखचक्रगदापद्मैर्गोविन्दः। उपरितनवामभुजादारम्य शंखचक्रदापद्मैर्विष्णुः। उपरितनदक्षिणभुजाच्च शंखचक्रगदापद्मैर्मधुसूदनः। अधस्तनवामहस्तात् शंखपद्मगदाचक्रैः त्रिविक्रमः। अधस्तनदक्षिणभुजात् शंखचक्रगदापद्मैर्वामनः। अधस्तनवामभुजात् शंखपद्मचक्रगदाभिः श्रीधरः। अधस्तनवामभुजात् शंखगदाचक्रपद्मैः हृषीकेशः। अधस्तात् दक्षिणभुजात् शंखपद्मचक्रगदाभिः पद्मनाभः। उपरिददक्षिणभुजात् शंखगदाचक्रपद्मैःदामोदरः। मार्गमासप्रभृति द्वादशमासेषु केशवादि मूर्तयः पूज्याः। अथवा दशावताराः बलभद्रनलक्ष्मणौ च इत्थं द्वादश।। नैषध दीपिका - चाण्डूपण्डित ।।

शर्कराचल-दान[1]

शंकरजी ने नारद से दस प्रकार के मेरूपर्वत का दान बताया है। दसवाँ दान शर्कराचल का कहा गया है। शक्कर के आठ भार द्वारा उत्तम या महान् अचल चार भार द्वारा मध्यम अचल तथा दो भारों द्वारा अधम अचल बनाया जाता है। थोड़ी सम्पदा वाला व्यक्ति एक बार अथवा आधे भार द्वारा इसका निर्माण कर सकता है। बीच में मुख्य मेरूपर्वत तथा चारों ओर चार पर्वत होने चाहिए। मुख्य पर्वत के चौथाई अंश के बराबर विष्कम्भक पर्वतों की रचना होती है। अन्य विशेष विधियों के साथ विशेश मन्त्रों द्वारा इन पर्वतों का आवाहन किया जाता है। फिर मुख्य पर्वत का दान गुरू को तथा शेष का दान पुरोहित को कर देना चाहिए।

नल-प्रिया दमयन्ती की वाणी की माधुर्य-गुण की प्रशंसा में श्रीहर्ष ने इस पुराकथा का उल्लेख किया है। 'यदि इक्षुरस के सागर को अमृत भोजी मदन गुडपाक (सीरे) के तागे से बाँधकर दानखण्ड में वर्णित शर्कराचल से मथे तो उस समय जो नूतन सुधा निकलेगी, वही शायद मेरे कानों को सन्तुष्टि देने वाली तुम्हारी वाणी की समता करे।'[2]

---

1. मत्स्य-पुराण - अध्याय 92 .

2. उन्मीलद्गुडपाकतन्तुलतया रज्ज्वा भ्रमीरर्जयन् ।
दानान्तःश्रुतशर्कराचलमथः स्वेनामृतान्धाः स्मरः ।।
नव्यामिक्षुरसोदधेर्यदि सुधामुत्थापयेत् साभव -
ज्जिह्वायाः कृतिमाह्वयेत परमां मत्कर्णयोःपारणाम् ।। नैषध 21/153 ।।

विष्णु के सितकेश-रूप बलराम[1]

श्रीकृष्ण के मामा कंस के अत्याचारों से पीड़ित पृथिवी ब्रह्मा आदि देवों के साथ विष्णु के पास क्षीरसागर में गयी। वहाँ आर्तभाव से पृथिवी ने विष्णु की प्रार्थना की, प्रसन्न हो विष्णु ने पृथिवी के कष्ट को दूर करने के लिए अपने श्वेत तथा कृष्ण दो बाल उखाड़कर देवों से कहा कि हमारे ये ही दोनों बाल पृथ्वी पर अवतार लेगें और उसका भार हल्का करेंगे। हमारा एक बाल तो वासुदेव की स्त्री देवकी के आठवें गर्भ में उत्पन्न होगा और कंस को मारेगा तथा श्वेत बाल रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न होगा। भागवत पुराण[2] में भी बलराम तथा कृष्ण को सित-कृष्ण केश (विष्णु का) कहा गया है। बलराम को विष्णु का अनन्तावतार[3] तथा शेषावतार[4] भी बताया गया है। नैषध में श्रीहर्ष ने बलदेव को सितकेश कहते हुए इन पौराणिक कथानक का स्मरण किया है।[5]

---

2. विष्णु-पुराण - पंचम-अंश, अध्याय-।

2. भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययायकलयासितकृष्णकेशः।
जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि।।
।।भाग0 2/7/26 ।।

3. सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।। भागवत0 10/2/5 ।।

4. शेषाख्यं धाम मामकम् ।। भाग0 10/2/8 ।।

5. तावकापरतनोः सितकेशस्त्वं हली किल स एव च शेषः।
साध्वसाववतरस्तव धत्ते तज्जरच्चिकुरनालविलासः ।। नैषध 21/84 ।।

सूर्यभक्त साम्ब[1]

वासुदेव कृष्ण तथा जाम्बवती के समागम से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम साम्ब रखा गया। अपने रूप के गर्व से उसने एक वारस दुर्वासा का अपमान किया था इस कारण उन्होंने साम्ब को श्वेतकुष्ठ होने का शाप दे दिया। उसी समय उसने कृष्ण रुक्मिणी के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ रुक्मिणी इसके अति सुन्दर रूप को देखकर कामासक्त हो गयी यह जानकर श्रीकृष्ण ने भी साम्ब को श्वेतकुण्ठ का शाप दे डाला। अत्यन्त खिन्न मन साम्ब ने अपनी निरपराधता का बार-बार कथन किया किन्तु कृष्ण ने उसकी एक न सुनी। सुनते भी कैसे, जो इसमें नारद की चाल थी। फिर साम्ब की आर्त प्रार्थना पर कृष्ण ने कहा कि सूर्य की आराधना करो इसी से तुम्हारा कुष्ठरोग दूर होगा। नारद मुनि द्वारा बतायी विधि से चन्द्रभागा (चेनाब) नदी के तट पर सूर्यदेव की उपासना की जिससे भगवान सूर्यदेव प्रसन्न हुए और उसे आरोग्यलाभ हुआ तथा नित्य स्वप्न में दर्शन पाने का भी वरदान प्राप्त हुआ। इसी उपलक्ष्य में साम्ब ने उसी स्थान पर सूर्य का मन्दिर बनवाया था।

नैषध में श्रीहर्ष ने सूर्य-उपासना में लीन नल की उपमा साम्ब से देते हुए लिखा है - नल की श्रद्धा देखकर सूर्यदेव ने उन्हें कृष्ण पुत्र साम्ब ही समझ लिया।[2]

---

1. भविष्य-पुराण, अध्याय - 43, 68, 69, 71, 121.
   वराह-पुराण, अध्याय - 176-177.
2. सम्यगर्चति नलेऽर्कमतूर्ण भक्तिगन्धिरमुनाकलिकर्षः ।
   श्रद्दधानहृदयप्रति चातः साम्बमम्बरमणिर्निरचैषीत् ।। नैषध 21/30 ।।

अत्रिनेत्र से चन्द्रोत्पत्ति[1]

प्राचीन युग में प्रजापति ब्रह्माजी ने अत्रि को सृष्टि करने की आज्ञा दी। अत्रि ने सर्जना शक्ति पाकर अनुत्तर नामक तप किया। वे परमानन्दमय ब्रह्म का चिन्तन करने लगे। एक दिन महर्षि के नेत्र से कुछ जल की बूँदे टपकने लगीं, जो अपने प्रकाश से चराचर जगत् को आलोकित कर रही थी। दिग्देवियों ने पुत्र की अभिलाषा में उस जल को ग्रहण किया और गर्भ रूप में अवस्थित हुआ। दिशाओं ने गर्भधारण की असमर्थता प्रकट करते हुए उस गर्भ को त्याग दिया। तब ब्रह्मा ने उनके छोड़े गर्भ को एकत्रित करके उसे एक तरूण पुरूष के रूप में प्रकट किया। वह सभी आयुधो को धारण करने वाला था। फिर वे तरूण पुरूष को देवशक्ति सम्पन्न सहस्र नामक रथ पर बैठाकर अपने लोक में ले गये। ऋषियों ने उन्हें अपना स्वामी कहा। उनके बढ़े हुए तेज से पृथ्वी पर दिव्य औषधियां प्रकट हुई, इसी कारण चन्द्रमा को ओषधीश भी कहा जाने लगा। कुछ समय पश्चात् दक्ष प्रजापति ने अति रूपवती अपनी सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रदेव को अर्पित कर दिया। यह कथा पद्मपुराण[2] तथा भागवत-पुराण[3] में भी लगभग इसी तरह वर्णित है। स्कन्द-पुराण[4] में भी दक्षपुत्रियों से चन्द्र-विवाह का वर्णन है। नैषधा में तीन बार इस पुरा-कथा का स्मरण किया गया है - त्रिनेत्र के मस्तक पर सुशोभित चन्द्र की उत्पत्ति अत्रिनेत्र से,[5] चन्द्रमा की पत्नी रूप सत्ताईस तारायें,[6] तथा चन्द्रमा के द्विजत्व (अत्रिनेत्र सागर) का।[7]

---

1. विष्णु-पुराण - प्रथम-अंश, अध्याय 9.
2. पद्मपुराण - सृष्टि-खण्ड, अध्याय 12.
3. भागवत-पुराण - 9/14/2-3.
4. स्कन्दपुराण - नागरखण्ड, अध्याय 86.
5. त्रिनेत्रभूरप्ययमत्रिनेत्रादुत्पादमासादयति स्म चित्रम् ।। नैषध 22/73 ।।
6. एकैव तारा मुनिलोचनस्य जाता किलैतज्जनकस्य तस्य ।
   ताताधिका सम्पदभूदियं तु सप्तान्विता दिंशतिरस्य यत्ताः ।। वही0 22/127
7. सागरान्मुनिविलोचनोदराद्यत् द्वयादजनि तेन किं द्विजः ।
   एवमेव च भवन्नयं द्विजः पर्यवस्यति विधुः किमत्रिजः ।। वही0 22/133

चन्द्रमा की सागर से उत्पत्ति[1]

अमृत-प्राप्ति हेतु भगवान् विष्णु की सहायता से मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर तथा वासुकि नाग को रस्सी बनाकर जब देवों और दानवों ने सागर-मन्थन किया तो उससे 14 रत्न प्रादुर्भूत हुए। इन चतुर्दश रत्नों में चन्द्रमा भी था। किन्तु कतिपय पुराण इस बात का विरोध करते हैं। श्रीमद्भागवत-पुराण में चन्द्रमा का उल्लेख इन रत्नों में नहीं जबकि महाभारत में लिखा है कि 'सर्वप्रथम चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई जिसका तेज सूर्य से बढ़कर था'[2]। मत्स्य-पुराण[3] में भी चन्द्रमा को पहले पहल उत्पन्न बताया गया है। विष्णु-पुराण[4] में भी सागर-मन्थन से चन्द्रोत्पत्ति का उल्लेख है। स्कन्द-पुराण[5] में चन्द्रमा की उत्पतित सागर से नहीं बतायी गयी। नैषध में इस पौराणिक कथानक का छः बार उल्लेख करके इसे महत्त्व प्रदान किया। चन्द्रमा की भर्त्सना करती हुए उसके उच्च कुल सागर में जन्म तथा शिव के मस्तक पर निवास[6] का स्मरण करती है। फिर कहती है कि हेचन्द्र! मन्दराचल को मथानी बनाकर रखे जाने पर तू वहीं क्यों नहीं चूर्ण हो गया।[7] शिशुपालवध में भी चन्द्रमा के विष्णु के शयन स्थल समुद्र से ऊपर उठने[8] का उल्लेख है।

---

1. स्कन्द-पुराण - 8/7-8.
2. ततः शतसहस्रांशुर्मथ्यमानान्तु सागरात् ।
   प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरूज्ज्वलः ।। महाभा0 आदिपर्व 18/33
3. मत्स्य-पुराण, अध्याय 250/51.
4. विष्णु-पुराण - 1/9.
5. स्कन्द-पुराण - माहेश्वर खण्ड, केदार खण्ड, अध्याय 7 ।।
6. त्वमभिधेहि विधुं सखि! मद्गिरा किमिदमीदृगधिक्रियते त्वया।
   न गणितं यदि जन्म पयोनिधौ हरशिरः स्थितिभूरपि विस्मृता ।। नै0 4/50
7. निपततापि न मन्दरभूभृता त्वमुदधौ शशलांछन! चूर्णितः ।
   अपि मुनेर्जठरार्चिषि जीर्णतां बत गतो सि न पीतपयोनिधिः ।। वही 4/51
8. उदमज्जि कैटभजितः शयनादपनिद्रपाण्डुरसरोजरूचा ।
   प्रथमप्रबुद्धनदराजसुतावदनेन्दुनेव तुहिनद्युतिना ।। शिशु0 9/30 ।।

विरह-व्याकुल दमयन्ती महादेव द्वारा पिये जाने पर फिर सदा के लिए समाप्त हुए कालकूट की अपेक्षा सारे सुरो के पी लेने पर भी पुनः नूतन उदय वाले श्वेतविषरूपी चन्द्रमा का आधिक्य प्रदर्शित करती हुए उसकी निन्दा करती है।[1] बाद में वही नल-दमयन्ती जब विवाहित होकर आनन्दित जीवन बिताते हैं तो चन्द्रमा को देखकर कहते हैं - "सागर में पर्वत से मन्थन करने पर चन्द्रमा निकला था यह कथा सत्य है, क्योंकि अब भी तो चन्द्रमा सागर में जाकर पर्वत से निकलता है।[2] अन्त में नल को दिए गए गरूड़-मणि से युक्त पात्र की चर्चा कवि करता है कि यदि कालकूट को शंकर ने इस पात्र में रखकर पिया होता तो उनका कण्ठ नीला न होता क्योंकि गरूड़ मणि के प्रभाव से विष का असर समाप्त हो जाता।[3] नल उत्प्रेक्षा करते है कि चन्द्रमा का द्विजत्व इसलिए है क्योंकि यह अत्रिनेत्र एवं सागर दोनों से उत्पन्न है।[4]

---

1. असितमेकसुराशितकप्यभून्न पुनरेष विधुर्विशदं विषम् ।
   अपि निपीय सुरैर्जनितक्षयं स्वयं उदेति पुनर्नवमार्णवम् ।। नैषध 4/61 ।।

2. असंशयं सागरभागुदस्थात् पृथिवीधरादेव मथः पुरायम् ।
   अमुष्य यस्मादधुनापि सिन्धौ स्थितस्य शैलादुदयं प्रतीमः ।। वही0 22/43 ।।

3. न नीलकण्ठत्वमधास्यदत्र चेत् स कालकूटं भगवानभोक्ष्यत ।। वही 16/30 ।।

4. सागरान्मुनिविलोचनोदराद्यद् द्वयादजनि तेन किं द्विजः ।
   एवमेव च भवन्नयं द्विजः पर्यवस्यति विधुः किमत्रिजः ।। वही 22/143 ।।

मन्देह राक्षसों पर सूर्य की विजय [1]

मन्देह राक्षसों की संख्या तीन करोड़ है,[2] उनका शरीर अक्षय है इस कारण से उनका मरण कभी नहीं होता।[3] वे प्रतिदिन दोनों संध्याओं (प्रातः एवं सायं) के समय सूर्य को लील लेना चाहते हैं। इस कारण प्रतिदिन सूर्य का उन मन्देह राक्षसों से भीषण युद्ध होता है। युद्ध के समय ब्रह्मा, देवता तथा ब्राह्मणजन सन्ध्योपासन करते हुए सदा सूर्य को ओंकार सहित गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल की अंजलि देते हैं। जिसके बल से सूर्य की ज्योति अत्यन्त तीव्र हो जाती है, और वे अपने प्रचण्ड तेज, बल तथा पराक्रम के साथ लाखों योजन ऊपर चले जाते है और बालखिल्य आदि अनेक ब्राह्मणों द्वारा पूर्ण सुरक्षित होकर पूर्णकान्ति के साथ विचरण करते है।

नैषध में जब प्रभात वेला में नल को सूर्यांजलि देने की प्रेरणा दी जाती है तो उसी में बन्दीजन मन्देहवृत्त की ओर संकते करते हैं। महाराज! प्रभात वेला आ गयी है आप जलांजलि दें क्योंकि इसी समय ये जलांजलियाँ मन्देह राक्षसों को मारने के लिए सूर्य का जलमय वज्र होंगी।[4]

---

1. ब्रह्माण्ड-पुराण - पूर्वभाग - अनुषंगपाद, अध्याय 21/109-115.
2. तिस्रः कोटयस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ।। ब्रह्माण्ड0 21/110 ।।
3. अक्षयत्वं तु देहस्य प्रापितामरणं तथा ।। वही - 21/110 ।।
4. यदतिमहतीभक्तिर्भानौ तदेनमुदित्वरं,
त्वरितमुपतिष्ठस्वाध्वन्य । त्वमध्वरपद्धतेः ।
इह हि समये मन्देहेषु व्रजन्त्युदवज्रताम्,
अभिरविमुपस्थानोत्क्षिप्ता जलांजलयः किल ।। नैषध -19/4। ।।

शुक्राचार्य द्वारा कच को संजीवनी विद्या का दान[1]

देवासुर-संग्राम में राक्षसों के गुरू शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या के बल से मरे हुए राक्षसों को जिन्दा कर देते थे किन्तु देवगुरू बृहस्पति इस विद्या से हीन थे। अतः देवता बड़े दुःखी भाव से गुरू से बोले वे अपने पुत्र कच को शुक्राचार्य के पास भेजें और संजीवनी विद्या सीखें। कच ने एक हजार वर्ष तक रहकर गुरू शुक्र को अपनी सेवा से प्रसन्न कर अनेक विद्यायें सीखीं किन्तु एक दिन दैत्यों ने कच को वन में अकेले पाकर मार डाला, उसके शरीर को भेडियों को खिला डाला। शाम तक जब नहीं लौटा तो देवयानी की प्रार्थना पर शुक्र ने संजीवनी विद्या के प्रभाव से उसे जिन्दा कर दिया। कुछ दिन बाद देवयानी के लिए फूल तोड़ते हुए कच को अकेले पाकर दैत्यों को मार डाला। इस बार उसे जला दिया मदिरा में मिलाकर गुरू शुक्र को ही पिला दिया। बड़ी देर होने से देवयानी ने अनर्थ की आशंका पर पुनः कच को बुलाने के लिए शुक्र से प्रार्थना की। इस बार कच उनके पेट से ही बोला और यह भी बताया कि किस प्रकार दैत्यों द्वारा पेट में पहुँचाया गया। अब यदि शुक्र कच को बाहर निकालते तो स्वयं मरते, न निकालते तो कच पर अतिशयानुरक्त देवयानी प्राण दे देती अतः विवश होकर गुरू ने कच को संजीवनी विद्या पहले पढ़ी दी जिससे शुक्र की कोख फाड़कर बाहर आया पुनः उसी संजीवनी के बल से शुक्र को जिला दिया।

नैषध में सूर्य किरणों से अन्धकार को नष्ट होना देख अन्धकार को तमस् (राहु) जानकर कवि ने शुक्र द्वारा कच के पुनर्जीवित किए जाने की घटना का स्मरण किया है।[2]

---

1. मत्स्य-पुराण - अध्याय 25 ·
2. असुरहितमन्यादित्योत्थां विपत्तिमुपागतं दितिसुतगुरुःप्राणैर्योक्तुन्नकिंकचवत्तमः।
   पठति लुठतीं कण्ठेविद्यामयम्मृतजीवनींयदिन वहतेसन्ध्यामौनव्रतव्ययभीरुताम् ।।
   । नैषध - 19/15 ।।

शम्भुदारूवनसुरत क्रिया[1]

देवदारूवन के मुनियों की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर नग्न एवं विकृत रूप में ही वहाँ पहुँच गये और विकारों को उत्पन्न करने वाली चेष्टायें करने लगे। उन्हें देखकर आश्रम की स्त्रियों में प्रबल कामवासना जाग्रत हुई। उन्होंने सारी मर्यादायें तोड़कर शिव को घेर ली किन्तु शिव के मन में किसी प्रकार का विकार नहीं था। मुनियों ने शिव को बिना पहचाने ही उसकी दुश्चेष्टा के कारण क्रुद्ध होकर शाप देना आरम्भ किया। किन्तु मुनियों के शापों का शिव के ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। अन्त में वे मुनियों के देखते ही देखते अन्तर्धान हो गये, जिससे मुनियों का तेज भी नष्ट हो गया। वे अपने को सब प्रकार से अशक्त समझकर ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने उन्हें शिव की प्रार्थना करने के लिए कहा। मुनियों की प्रार्थनाा से शंकर प्रसन्न हुए और उसी वेश में मुनियों को दर्शन दिए तथा देवदारूवन में शिवलिंग की स्थापना हुई।[2] नैषध मे नल-विलास भवन के वर्णन में श्रीहर्ष ने लिखा है कि प्रासाद में स्वर्णमय कपोतपालिका पर शंकर के देवदारू-वन में सुरत-विलास का बृतान्त चित्रित है।[3]

---

1. ब्रह्माण्ड-पुराण - अनुषंग पाद 2, अध्याय - 27.
2. लिंग पुराण - अध्याय 29.
3. शम्भुदारूवनसम्भुजिक्रियामाधव्रजवधूविलासयोः ।
   गुम्फितैरूशनसा सुभाषितैर्यस्य हाटकविटङ्.कमङ्.कतम् ।। नैषध ।8/23 ।।

हरिहर की कथा[1]

देवासुर - संग्राम में अल्पकालिक पराजय से खिन्नमन देवतागण ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए और प्रार्थना करने लगे। प्रसन्न मन ब्रह्मा ने हरिहर रूप की उत्पत्ति के विषय में कहने लगे कि एक बार वैष्णव एवं शैव भक्तों में विवाद हुआ विवाद चरम सीमा तक पहुँच गया। ये लोग एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हो गये तभी शिव ने एक अद्भुत रूप धारण कर लिए जिसका आधा भाग शिव तथा आधा विष्णु रूप था। एक ओर गरूड़ तथा दूसरी ओर नन्दी उपस्थित थे। एक श्याम वर्ण तथा दूसरा गौर वर्ण। इस तरह भगवान शंकर ने भक्तों को शिव-विष्णु की एकता का बोध कराया। श्रुतियों और स्मृतियों को बाधित करने वाली भेद बुद्धि नष्ट हो गयी। पाखण्डी और युक्तिवादी सभी चकित रह गये। मन्दराचल पर्वत पर हरिहर रूप की वह मूर्ति आज भी विद्यमान है। मत्स्य-पुराण[2] में हरिहर की प्रतिमा बनाने की विधि है। उस प्रतिमा को शिवनारायण नाम दिया गया है। प्रतिमा के वामार्द्ध में विष्णु तथा दक्षिणार्द्ध में शूलपाणि को बनाने का उल्लेख है। नैषध में 'भगवान शिव के हरिहर रूप में आने पर भी अशेष रूप बतलाने'[3] तथा 'हरिहर रूप में नरसिंह की तरह एक रूप धड़ एक सिर होना चाहिए था फिर भी भेद क्यों? सच ही स्वतन्त्र सत्ता वाले से प्रश्न कैसा?[4]

---

1. स्कन्द-पुराण - ब्रह्मखण्ड, चातुर्मास्य महात्म्य ।।
2. मत्स्य-पुराण - अध्याय 260 ।।
3. केयमर्धभवताा भवतोहे मायिना ननु भवः सफलस्त्वम् ।
   शेषतामपि भजन्तमशेषं वेद वेदनयनो हि जनस्त्वाम् ।। नैषध - 21/88 ।।
4. ऊर्ध्वदिक्कदलनां द्विरिकार्षीः किं तनुं हरिहरीभवनाय ।
   किं च तिर्यगभिनो नृहरित्वे कः स्वतन्त्रमनु नन्वनुयोगः ।। वही 21/90 ।।

राहु द्वारा सूर्य-चन्द्र को ग्रसना[1]

अमृत-प्राप्ति हेतु विष्णु की आज्ञा से देवों और दानवों ने मिलकर क्षीरसागर का मन्थन किया था जिससे लक्ष्मी आदि अनेक रत्न प्राप्त हुए। सबसे अन्त में भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए उनके हाथ में अमृत कलश था। दानवों ने झपट कर उनके हाथ से अमृत छीन लिया। उस समय विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर देवों की सहायता की। दानवों को छलकर उनसे अमृत लेकर देवों को पिला दिया। उसी समय देवपङ्क्ति में राहु-केतु देव वेष में बैठे थे उसने ज्यों ही अमृत पिया त्यों ही सूर्य-चन्द्र ने संकेत द्वारा बता दिया कि तुरन्त विष्णु ने सुदर्शन चक्र से उस सिर और धड़ा अलग कर दिया परन्तु उसके अमृतपान के कारण सिर (राहु), धड़ (केतु) दोनों अमर हो गये। उसी वैरवश राहु (सिर) आज भी सूर्य एवं चन्द्र को पीड़ा पहुँचाता है अर्थात् पर्व पर ग्रास बनाता है। शिशुपाल वध में दो बार इस पुरा कथा का उल्लेख है - अमृत बाँटने के समय शरीर काट देने के कारण वैरी राहु द्वारा चन्द्रमा को आज भी पीड़ा पहुँचाने[2] तथा राहु द्वारा ग्रस लिए जाने पर सूर्य के लाल ताँबा जैसा होना।[3]

---

1. भागवत-पुराण - अष्टम्-स्कन्ध - अध्याय 6/9, 9/24-26.
2. यस्य किंचिदपकर्तुमक्षमः कायनिग्रहकगृहीतविग्रहः ।
   कान्तवक्त्रसदृशाकृतिं कृती राहुरिन्दुमधुनापि बाधते ।। शिशु0 14/78 ।।
3. सविषश्वसनोद्धतोरूधूमव्यवधिम्लानमरीचि पन्नगानाम् ।
   उपरागवतेव तिग्मभाषा वपुरौदुम्बरमण्डलाभमूहे ।। वही0 20/45 ।।

नैषध में श्रीहर्ष ने कई स्थलों पर इस वृतान्त की चर्चा की है। सिंहिका पुत्र राहु द्वारा चन्द्रमा को ग्रसने तथा छोड़ने,[1] शत्रु सुदर्शन चक्र के भ्रम से चन्द्र को ग्रसने,[2] राहु-चन्द्रमाकावैरी होना[3] राहु द्वारा चन्द्रमा को मृग के लोभ से गिलने[4] जबरदस्ती पान करने की विभीपिका को सूचित करने वाले सूर्य से बैर[5] सूर्य का प्रतिवारण करने के दन्तों का प्रयोग करने वाले राहु[6] इत्यादि रूपों में वर्णन है।

---

1. मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युतिसर्वनेमुनामायत सिंहिकासुतः ।
   तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितं कलाकलापं किलवैधवं वमन् ।। नैषध 1/96 ।।
   दहति कण्ठमयं खलु तेन किं गरूड़वद्द्विजवासनयोज्झितः।। वही0 4/71 ।।
   द्विजपतिग्रसनाहितपातकप्रभवकुण्ठसितीकृतविग्रहः ।। वही0 4/73 ।।
2. स्वरिपुतीक्ष्णसुदर्शनविभ्रमात् किमु विधुं ग्रसते स विधुन्तुदः।। वही0 4/64 ।।
3. एतत्कीर्तिप्रतानैर्विधुभिरिव युधे राहुराहूयमानः ।। वही0 12/[illegible] ।।
4. मत्स्य लोभत्खलु सिंहिकायाः सुनुर्मृगाड़्.कं कवलीकरोति ।। वही0 22/66
5. स्वर्भानुना प्रसभपानविभीषिकाभिः,
   दुःखाकृतैनमवधूय सुधा सुधांशुम् ।
   स्वं निह्नुते सितिमचिह्नमसुष्या रागै -
   स्ताम्बूलताम्रमवलम्ब्य तवाधरोष्ठम् ।। वही 22/136 ।।
6. स्वर्भानुप्रतिवारप्रतिपारणमिलद्दन्तौघ यन्त्रोद्भव -
   श्वभ्रालीपतयालुदीधितिसुधासारस्तुषारद्युतिः ।
   पुष्पेष्वासनतत्प्रियापरिणयानन्दाभिषेकोत्सवे
   देवः प्राप्तसहस्रधारकलशश्रीरस्तु नस्तुष्टये ।। वही0 22/148 ।।

कार्तिकेय का नैष्ठिक ब्रह्मचर्य[1]

महाबली तारकासुर का वध करने हेतु देवताओं ने पार्वती के गर्भ से उत्पन्न शिवजी के पुत्र कार्तिकेय (पडानन, कुमार या स्कन्द) को अपना सेनापति बनाया। मयूर नामक पक्षी को वाहन बनाकर कार्तिकेय ने घोर संग्राम में अपने भाले से तारकासुर का वध किए। मन्दराचल पर जाकर कुमार ने स्वयं सारा वृतान्त कह सुनाया। शिव ने जब कुमार के विवाह की इच्छा प्रकट की तो कार्तिकेय का उत्तर था - भगवन् । इस संसार में जितनी भी स्त्रियाँ है वे सब हमारी माता है क्योंकि माता पार्वती के समान हैं। मैं संसार सागर से पार उतरने की इच्छा रखता हूँ, अतः मुझसे इस प्रकार विवाह की बात न कीजिए। जब माँ पार्वती ने बार-बार आग्रह किया तब कुमार माता-पिता को प्रणाम कर क्रौंचपर्वत पर चले गये और वहाँ पवित्र आश्रम में बैठकर तपस्या करने लगे। अन्ततः उन्हें भगवत् पद की प्राप्ति हुई। नैषध में दो बार इस पौराणिक कथा का उल्लेख हुआ है। एक तो षडानन के वाहन मयूर का[2] तथा दूसरा कुमार के नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का।

---

1. स्कन्द-पुराण - चातुर्मास्य-माहात्म्य ।
2. भजते खलु षष्मुखं शिखी चिकुरैर्निर्मितबर्हगर्हणः ।। नैषध 2/33 ।।
3. स्वामिना च वहता च तं मया स स्मरः सुरतवर्णनाज्जितः ।
   योऽप्यमीदृगिति नृत्यते स्म यत्केकिना मुरजनिस्वनैर्घनैः ।। वही 18/27 ।।

   मत्स्य-पुराण के अध्याय 159 में इन्द्र द्वारा देव-सेना नामक कन्या का कुमार की स्त्री के पद के लिए सौंपा जाना कदाचित् स्वामी स्कन्द के तथाकथित नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का विरोधी माना जा सकता है।

मार्कण्डेय का विष्णु के उदर में प्रवेश[1]

प्रलयान्त में सम्पूर्ण जगत् के जलप्लावित हो जाने पर उस अनन्त महासमुद्र में तैरते हुए थक चुके मार्कण्डेय ऋषि को दैवात् एक बहुत बड़ा वट वृक्ष दिखाई पड़ा जिस पर दिव्य पलंग पर सोते हुए एक शिशु भी दिखाई पड़ा। बालक ने मार्कण्डेय को अपने शरीर में आराम करने के लिए बुलाया और उसके मुँह फैलाते ही पराधीन की भाँति मार्कण्डेय उसमें चले गये।[2] सैकड़ों वर्ष पेट में घूमते हुए उन्होंने वहाँ समस्त ब्रह्माण्ड का दर्शन किया।[3] अन्त में भगवत कृपा से सहसा वायुवेगवश बाहर निकल आये। नैषध में, मार्कण्डेय का विष्णु के उदर में सारे विश्व के पदार्थों को देखने,[4] प्रलयकाल में संसार के मुरारि जठर में समा जाने,[5] हरि के उदर में समस्त विश्व प्रपंच के साथ विद्यमान मार्कण्डेय मुनि के अपने को भी देखने और फिर उदर से बाहर निकलने का[6] वर्णन किया गया है।

---

1. विष्णु-पुराण, अंश-2, अध्याय - 5
2. ततो बालेन तेनास्यं सहसा विवृत्तं कृतम् ।
   तस्याहमवशो वक्त्रे दैवयोगात् प्रवेशितः ।। महाभा0 व0 प0 188/100 ।।
3. यच्च किंचिद्मया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ।
   सर्वपश्याम्यहं राजस्तस्य कुक्षौ महात्मनः ।। वही 188/121-122 ।।
4. मुनिनेव मृकण्डुसूनुना जगतीवस्तु पुरोदरे हरेः ।। नैषध 2/91 ।।
5. यथा जगद्वा जठरे मुरारेः ।।स वही 10/30 ।।
6. वस्तु विश्वमुदरे तव दृष्ट्वा वाह्यवत् किल मृकण्डुतनूजः ।
   स्वं विमिश्रमुभयं न विविंचन्निर्ययौ स कतमस्त्वमवैषि ।। वही 21/108 ।।

विश्वामित्र का त्रिशंकु को सशरीर भेजना[1]

इक्ष्वाकुवंशी त्रिशंकु ने अपने गुरू वशिष्ठ से सशरीर स्वर्ग गमन हेतु यज्ञ कराने को कहा। वशिष्ठ ने इस कार्य को असम्भव बताया। फिर गुरू के सौ पुत्रों के पास गये तो उन सभी ने भी अपने को अक्षम बताया तब राजा ने दूसरे के पास जाने की बात कही तो गुरू पुत्रों ने शाप दे दिया कि जा तुम चाण्डाल हो जाओगे। चाण्डाल त्रिशंकु दुःखित मन विश्वामित्र के पास आया तो विश्वामित्र को उस पर बड़ी दया आयी। त्रिशंकु से सारा वृतान्त सुनकर उसे सशरीर स्वर्ग भेजने का वचन दिया। इसके लिए विश्वामित्र ने अनेक ऋषियों-मुनियों को एकत्रित किया किन्तु वशिष्ठ के पुत्र नहीं आये अतः शाप देकर उन्हें जला डाला। यज्ञ आवाहन पर कोई देवता अपना भाग लेने नहीं आया। इस पर अत्यन्त क्रुद्ध हो विश्वामित्र ने अपनी तपस्या के फल रूप में त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेज दिया किन्तु इन्द्र ने उसे गुरू पाप का भागी समझकर पुनः पृथ्वी पर ढ़केल दिया। त्रिशंकु त्राहि-2 करता हुआ नीचे गिने लगा तो ऋषि ने उसे बीच में रोककर नये स्वर्ग की रचना शुरू कर दी इससे हाहाकर मच गया अन्त में विश्वामित्र की आज्ञा से देवों ने स्वर्ग में स्थान दिया किन्तु सिर नीचे कर दिया।

स्कन्द-पुराण[2] में यह कथा थोड़ी भिन्न है। इसमें पहले पृथ्वी के तीर्थो का भ्रमण तब पाताल गंगा में स्नान के बाद चाण्डालता से मुक्ति के बाद स्वर्ग गया। नैषध में कुण्डिनपुर के राजप्रासाद की धवलपताका मानो विश्वामित्र द्वारा आधी बनाकर छोड़ी गयी आकाशगंगा हो,[3] विश्वामित्र रचि स्वर्ग लोक दमयन्ती स्वयंवर में देवविमानों से आच्छादित आकाश मार्ग की तरह होता[4] इन्द्र के सम्मुख नत मस्तक कलि को स्वर्ग से अधोमुख लौटने वाले त्रिशंकु के समान बताया गया है।[5]

---

1. बाल्मीकि रामायण - बालकाण्ड - सर्ग 59, 60.
2. स्कन्द-पुराण - नागर खण्ड अबयाय 2-7 .
3. पूर्वंगाधिसुतेन सामिघटिता; मुक्ता नु मन्दाकिनी ।
   यत्प्रासाददुकूलवल्लिरनिलान्दोलैरखेलद्दिति ।। नैषध 2/102 ।।
4. द्यामन्तरा वसुमतीमपि गाधिजन्मास यद्यन्यमेव निरमासयत नाकलोकम् ।
   चारूः स यादृगभविष्यदभूद्विमानैस्ताद्वृक्तदभ्रमवलोकितुमागतानाम्।। वही ।।/3।
5. गुरोरीढावलीढः प्रागभून्नमित मस्तकः ।
   स त्रिशंकुरिवाक्रान्तस्तेजसेव विडौजसः ।। वही ।7/11। ।।

सप्तम अध्याय : पौराणिक आख्यानों पर आधारित अन्य महाकाव्य

एकसूत्रता की दृष्टि से सभी प्राचीन महाकवि किसी न किसी रूप में पौराणिक धर्म के प्रतिनिधि हैं। वस्तुतः स्मृतिप्रोक्त वर्णाश्रम धर्म के संकीर्ण प्रभाव के कारण कवियों ने स्वच्छन्द मनोभावों को व्यक्त करने के लिए पौराणिक कथाओं तथा आख्यानों का आश्रय लिया। अपने आश्रयदाताओं तथा साधुजनों के चरित्र के बहाने से विशिष्ट धर्म का प्रचार कर समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना कवियों का ध्येय बन गया। हिन्दू पुराणों के पात्रों तथा कथाओं को गृहीत करके जैन महाकवियों ने कुछ बदलाव के साथ जैन पुराणों की रचना कर डाली। अन्य धर्मावलम्बी होने पर भी महाकवियों ने पौराणिक धर्म में आदर दिखाया है। अश्वघोष यद्यपि बौद्ध थे फिर भी यदि उनके दोनों महाकाव्यों - सौन्दरानन्द[1] तथा बुद्धचरित,[2] का अध्ययन किया जाय तो यह बात ज्ञात होती है कि उन्हें पौराणिक धर्म का अच्छा ज्ञान था। जाने-अनजाने में चाहे जैसे हो लेकिन संस्कृत महाकवियों एवं महाकाव्यों पर इनका प्रभाव अवश्य पड़ा। पौराणिक आख्यानों को समाविष्ट करके महाकाव्य-प्रणयन करने वाले महाकवियों की एक लम्बी परम्परा है जिनके ग्रन्थों का अध्ययन अपेक्षित है। सच कहा जाय तो साहित्य-सर्जना की जो अविच्छिन्न परम्परा वैदिककाल से लेकर आज तक चल रही है उनमें जैन एवं अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यों की संख्या कम नहीं।

---

1. अश्वघोष, सौन्दरानन्द महाकाव्य, सप्तम सर्ग, श्लोक संख्या 26-45
2. बुद्धचरित महाकाव्य, प्रथम सर्ग, श्लोक संख्या 41-45
   चतुर्थ सर्ग, श्लोक संख्या 72-80

वराङ्.गचरितम्

संस्कृत में निबद्ध जैन चरित महाकाव्यों में वराङ्.गचरित नितान्त रम्य एवं प्राचीन है। जिनसेन ने अपने हरिवंशपुराण[1] में जिस वराङ्.ग नामक व्यक्ति की प्रशंसा है वही इस महाकाव्य का आधार पुरुष है। इस पौराणिक कथावस्तु को आधार बनाकर जटासिंह नन्दी या सिंहनन्दी ने 31 सर्गों में इसकी रचना की। इसमें 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ तथा वराङ्.ग नामक पुण्यशाली व्यक्ति का जीवन चरित्र वर्णित है। मूलतः कवि का लक्ष्य वराङ्.गचरित के माध्यम से जैन-सिद्धान्तों से जन-समुदाय को परिचित कराना। इसी कारण पाठक के लिए जैन तत्त्वों का आधिक्य उबाऊ हैं। यह अर्धपौराणिक काव्य है। कवि ने स्वयं इसे काव्य शैली में निबद्ध 'धर्म कथा' नाम से अभिहित किया है। जीवन की निःसारता का कितना अनोखा चित्रण कवि ने किया है।[2]

मुनसुव्रतमहाकाव्य

जैन विद्वान् अर्हंतदास ने बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत की कथा को 10 सर्गों में मुनिसुव्रत महाकाव्य के रूप में रच डाला। यह महाकाव्य गुणभद्र के उत्तरपुराण में वर्णित मुनिसुव्रत के आख्यान पर निर्भर है। प्रकृति के अनेक दृश्यों का सजीव एवं आकर्षक चित्रण इस महाकाव्य में है। पौराणिक शैली में निबद्ध यह महाकाव्य ओज, प्रसाद तथा माधुर्यगुण से युक्त है साथ ही इसमें अलंकारों की मनोरम छटा दृष्टिगोचर होती है।

---

1. बराङ्.गनेव सर्वाङ्.गैर्वराङ्.गचरितार्थ वाक् ।
   कस्य नोत्पादयेद् गाढमनुरागं स्वगोचरम् ।।
   हरिवंशपुराण 1/35

2. लक्ष्मीरियं वारितरङ्.गलोला क्षणे-क्षणे नाशमुपैति चायुः ।
   तारूण्यमेतद् सरिदम्बु पूयेपमं नृणां कोऽत्र सुखाभिलाषः ।।
   वराङ्.गचरितम् 13/5

धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य

महाकवि हरिश्चन्द्र ने 21 सर्गो में इस महाकाव्य की रचना की। इसमें 15वे तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित्र साङ्.गोपाङ्.ग वर्णित है। धर्म तथा शर्म (कल्याण) दोनों की उन्नति का साधक होने से इस महाकाव्य का नाम ही धर्मशर्माभ्युदय हो गया। इसकी कथावस्तु गुणभद्र के उत्तर पुराण[1] से ली गयी है। कथानक इस प्रकार है - रत्नापुर नगर में इक्ष्वाकुवंशी महमसेन राज्य करता था लेकिन वह पुत्रहीन था। चिन्ताग्रसित जीवन जीता रहा। संयोग से एक दिन चारण मुनि का आगमन हुआ। महासेन रानी के साथ गया और चारण मुनि की खूब सेवा की। प्रसन्न मुनि ने धर्मनाथ नाम के पुत्र की प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। मुनि का आशीर्वाद फलीभूत हुआ। धर्मनाथ के जन्म पर इन्द्रादि देवों ने स्तुति की। महासेन ने धर्मनाथ को राज्य सौंपकर वैराग्य धारण किया। धर्मनाथ का राज्याभिषेक हुआ। रात्रि के समय उल्कापात के दृश्य ने उनके जीवन में वैराग्य पैदा कर दिया वे भी अपने पुत्र को राज्य भार सौंपकर वन की ओर चल दिए। प्रत्येक स्थल पर विहार करते हुए सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे तपस्या की। माघ मास की पूर्णिमा को कैवल्य प्राप्त हुआ। अन्त में सात तत्त्वों का उपदेश कर भगवान् धर्मनाथ ने मोक्ष लाभ प्राप्त किया यही पौराणिक कथानक इस महाकाव्य का आधार बना। इस ग्रन्थ की पौराणिकता कवि मुख से भी प्रमाणित होती है। "पुराण रचना में निपुण महामुनियों के वचनों से मेरी भी इसमें गति हो जावेगी क्योंकि सोपानों द्वारा क्षुद्र मनुष्य की भी मनोकामना पूर्ण हो जाती है।"[2]

---

1. गुणभद्र, उत्तर पुराण, पर्व 61 अध्याय 14
2. धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग 1 श्लोक 12

प्रद्युम्नचरितम्

गुजरात के लाट संघ के प्रख्यात आचार्य महासेन कवि ने 14 सर्गो में प्रद्युम्नचरित नामक महाकाव्य की सर्जना की। प्रद्युम्न की कथा श्रीमदभागवत[1] तथा विष्णु पुराण[2] में जिस प्रकार से वर्णित है बिल्कुल उसी प्रकार जैन धर्म में भ प्रसिद्ध है। जिनसेन के हरिवंश पुराण में यह कथा विस्तार से दी गयी है। संक्षेप में इसका वर्णन गुणभद्र के उत्तरपुराण में भी है। यही प्रद्युम्न विषयक पौराणिक आख्यान भी इस महाकाव्य का आधार है। मूलतः जिनसेन के हरिवंश पुराण को ही आधार बनाकर कवि ने इसकी रचना की। इसमें श्रीकृष्ण का विवाह तथा अरिष्टनेमि से प्रद्युम्न की जैन धर्म में दीक्षा बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णित है। भावों में पूर्णतः सरलता एवं सहजता है। शैली भी गुणत्रय से समन्वित है। शास्त्रीय पाण्डित्य एकदम के बराबर है जिस कारण दुरूहता एवं विषमता का अभाव सर्वत्र है। यही ग्रन्थ को नितान्त श्लाघनीय बना देता है। भागवत के समकक्ष होने से यह वैष्णवों के लिए अत्यन्त प्रिय है। एक प्रसंग बड़ा मनोरम है जिसका उल्लेख अपेक्षित है - "ठण्डी हवा चल रही है, मूसलाधार पानी भी बरस रहा है, किसान अपने हल बैल खेत में ही छोड़कर काँपते हुए भाग रहे हैं।"[3]

---

1. श्रीमद्भागवत पुराण, दशम स्कन्ध, अध्याय 52-54
2. विष्णु पुराण, पंचम अंश, अध्याय 26-27
3. सीत्कारवायु परिकम्पित विश्वलोके
   वेगाद् विमुंचति जलं नववारिवाहे ।
   सर्वं हलोपकरणं च विहाय तस्मिन् ।
   कृच्छ्राज्जगाम भवनं प्रतिवेपिताङ्गः ।।
   प्रद्युम्नचरितम् - 5/104

पार्श्वनाथ चरितम्

पार्श्वनाथ जैन सम्प्रदाय के 23वें तीर्थंकर थे इनकी ऐतिहासिकता सर्वत्र सिद्ध है। गुणभद्र के उत्तर पुराण में वर्णित पार्श्वनाथ के सम्पूर्ण जीवन चरित्र को कविवर वादिराज ने संस्कृत में ग्रथित कर एक महाकाव्य का रूप दे डाला। इसमें कुल 12 वर्ग है। पार्श्वनाथ के पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के जीवन चरित्र का विशद वर्णन है। इसमें बाह्य प्रकृति के मनोज्ञ चित्रण के साथ मानवीय जीवन के अनेक पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। सुख-दुःख के उतार-चढ़ाव का वर्णन तो बड़ा ही मार्मिक है साथ ही मानवीय मनोभावों का चित्रण और स्वाभाविक है।

नेमिनिर्वाण

महाकवि वाग्भट ने जैन तीर्थंकर नेमिनाथ के चरित्र को 15 सर्गों में वर्णित किया है। कवि ने जिनसेन के हरिवंश पुराण में वर्णित नेमिकुमार या अरिष्टनेमि का पौराणिक आख्यान वर्णित है। इसे आधार बनाकर ही कवि ने इस महाकाव्य की रचना की। गुणभद्र के उत्तरपुराण तथा धर्मशर्माभ्युदय का भी इस महाकाव्य पर प्रभाव है। अत्यन्त स्वल्प कथानक को महाकाव्य का स्वरूप देने हेतु कवि ने भारवि जैसे महाकवियों की तरह शास्त्रीय शैली भी अपनाया है। इसमें नेमिनाथ के पाँच जन्मों का वर्णन है। देव मानवों के साथ सर्वत्र व्यवहार करते दिखाई पड़ते हैं। अलौकिक अद्भुत वातावरण सर्वत्र सुलभ है और सबसे अन्त में जैन धर्म के अनुपालन की बात की गयी है जिससे व्यक्ति मोक्ष लाभ प्राप्त कर सकता है।

त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित

इसकी रचना 12वीं सदी में जैन विद्वान हेमचन्द्र ने की। इसमें दस पर्व है जिसमें 63 शत्माका पुरूषों का जीवन चरित वर्णित है। मूलतः यह महाकाव्य महाभारत की शैली पर संस्कृत में श्लोकबद्ध जैन पुराण ही है। इसमें जिनसेन के आदिपुराण तथा गुणभद्र के उत्तर पुराण दोनों से सामग्री ली गयी है।

परिशिष्टपर्वन या स्थविरावली

यह पौराणिक शैली में लिखा गया स्वतन्त्र महाकाव्य है। इसकी रचना हेमचन्द्र ने ही की। उपदेशात्मक कथावृत्त, अवान्तर कथाएँ, वाद संवाद, नायकों की वंशावली जैसे पौराणिक तत्त्वों की उपलब्धि के कारण इसे पौराणिक शैली का महाकाव्य कहा जाता है। पाश्चात्य मनीषी हरमन जैकोबी के मत में इस महाकाव्य की रचना जैन पौराणिक महाकाव्य के रूप में की गयी - Hemchandra on the other hand, writing in Sanskrit in Kavya style and fluent verses, has produced on epical poem of great length (Some 37000 verses) intended as it were, for the Jain substitute for the great epic of Brahman's Sthaviravalicharita.[1]

पद्मचरित

मूलतः आर्या में निबन्द्ध पउमचरित का संस्कृत अनुवाद पद्मचरित है जिसे रविषेण ने 118 पर्वो में 18000 श्लोकों में रचा। राम कथा का यह प्रतिनिधि काव्य मूलतः पद्मपुराण को आधार बनाकर लिखा गया।

पद्मानन्द महाकाव्य

जिनसेन के आदिपुराण में वर्णित आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का चारित्र इस महाकाव्य में कविवर अमरचन्द्र ने 19 सर्गो में वर्णित किया है। वेणीकृपाण उपाधिधारी अमरचन्द्र ने एक प्रख्यात उपमा का वर्णन किया है जिससे मुदितमन सुधीसमाज ने इन्हें वेणीकृपाण की उपाधि दे डाली। उपमा यह है कि "महादेव ने कामदेव को भष्म कर डाला परनतु दधि मन्थन करने वाली ललनाओं की वेणी जब इधर उधर हिलती है तो लगता है कि जैसे कामदेव वीन अस्त्र वेणी कृपाण धारण कर अब लोगों को सता रहा है।[2]

---

1. Introduction of Herman Jacobi, Calcutta 1932 Page 24.
2. दधिमथनविलोलल्लोलदृग्वेणिदम्भात् अयमदयमनङ्गो विश्वविश्वैकजेता ।
   भवपरिभव कोप व्यक्त बाणः कृपाण श्रममिव दिवसादौ व्यक्तशक्ति व्यनक्ति ।।

कफ्फिणाभ्युदय

काश्मीरी विद्वान् शिवस्वामी ने बौद्ध जगत में प्रसिद्ध कफ्फिण के आख्यान को लेकर 20 सर्गो में कफ्फिणाभ्युदय नामक महाकाव्य की रचना की। यह एक प्रकार के पुराण तुल्य अवदान साहिता पर आधारित है। इसकी कथा इस प्रकार है कि कफ्फिण लीलावती का राजा था। एक बार उसने श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित को पराजित किया। पराजित प्रसेनजित ने कोई और मार्ग न देखकर बुद्ध का स्मरण किया बुद्ध प्रकट हुए और उन्होंने कफ्फिण को पराजित किया। अन्ततः कफ्फिण शरणागत हो गया और बुद्ध के उपदेशामृत का पान करके वह धन्य हो गया। इसी कथानक को आधार बनाकर शिवस्वामी ने यह महाकाव्य रचा। इस महाकाव्य के अनेक पात्रों का नाम महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त होता है। इसमें कवि ने स्वयं को बहुत सी कथाओं का ज्ञाता, चित्रकाव्य का ज्ञाता एवं उपदेष्टा तथा यमककवि कहा है। यह अक्षरशः सत्य है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में शिव शब्द मिलने से इसे 'शिवाङ्क' भी कहा जाता है। सूक्तियों एवं रसीले वचनों की सुन्दरता सहृदयश्लाघ्य है। उदाहरण के लिए देखें कि यह प्रसंग कितना मार्मिक है। विरहिणी की उक्ति है कि हे कौए! सूरज तो डूब गया है। अब तुम भी अपनी नीड में जाओ और सहचरी के साथ सुखपूर्वक वास करो। तूने तो सज्जनता का कार्य किया। आँखों में आँसुओं के छलकने पर भी मेरा प्रियतम मुझे छोड़कर चला गया। शायद अब वह तुम्हारे शब्द करने पर भी नहीं आयेगा।"[1] चूंकि अवदान साहित्य भी एक प्रकार से बौद्धों का पुराण ही है अतः इसे भी अर्धपौराणिक महाकाव्य कहा जा सकता है।

---

1. गतोऽस्तं धर्मांशुर्भ्रज सहचरनीडमधुना, सुखं भ्रातः सुप्याः सुजनचरितंवायसकृतम् ।
मयि स्नेहाद् वाष्पस्थागित नयनायामयघृणो, रूहत्यां यो यातसत्वयि स विलयत्येष्यति कथम् ।।
कफ्फिणाभ्युदयमहाकाव्य

यादवाभ्युदय

दार्शनिक कवि के रूप में ख्यात वेंकटनाथ या वेदान्त देशक ने वैष्णवधर्म के उन्नयन हेतु 24 सर्गो में यादवाभ्युदय नामक महाकाव्य की रचना की। इसकी कथावस्तु मूलतः भागवतपुराण में वर्णित यादवेश श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं एवं कार्यो पर आधारित है। श्रीकृष्ण ने गोकुल, मथुरा, वृन्दावन तथा द्वारकापुरी में रहकर जो लौकिक तथा अलौकिक कार्य किये उन सबका वर्णन यहाँ सहजप्राप्य है। महाकवि ने श्रीकृष्ण से सम्बन्धित अन्य पुराणों को भी आधार बनाया है। ये मुख्यतः कलापश के यशस्वी कवि हैं शायद इसीलिए इनके महाकाव्य में अलंकारों का विशेष चित्रण है। रूपकादि अलंकारों के विन्यास में कवि और भी सिद्ध हस्त है। "काली मेघमाला का नाना प्रकार के उपमानों से अभेदारोप"[1] कवि के कवित्व और मनोरंजक प्रतिभा का परिचायक है।

सुरथोत्सव

इस महाकाव्य की रचना सोमेश्वर कवि ने 15 सर्गो में की है। इसमें सोमेश्वर जी ने देवी भागवत[2] तथा मार्कण्डेय पुराण[3] के प्रख्यात अंश दुर्गा सप्तशती में उल्लिखित कथानकों को आधार बनाकर विस्तृत विवेचन किया है। राज्य हरण से दुःपित नरेश सुरथ को देवी की प्रसन्नता एवं आशीर्वाद से पुनः समृद्धि एवं राज्य की प्राप्ति होती है सुरथ अतिशय प्रसन्न होते है और उत्सव मनाते है। यही इस महाकाव्य का आधार है।

हरिवंशसारचरितम्

गोविन्द मखी (16वीं सदी) नामक महाकवि ने 23 सर्गो में इस महाकाव्य की रचना की। इसमें वैदर्भी रीति एवं माधुर्यगुण का सुमधुर समन्वय है। मूलतः यह महाकाव्य हरिवंशपुराण में निबद्ध पौराणिक कथाओं, आख्यानों तथा उपाख्यानों का संक्षेपण है। फिर भी इसमें एक अनूठी नवीनता परिलक्षित होती है।

---

1. अक्ष्णोरंजनवर्तिका जवनिका विद्युन्नटीनामियं स्वर्गं गायमुना वियज्जलनिधेर्वेला तमालाटवी । वर्षाणां कबरी पुरन्दर दिशालड्.कारकस्तूरिका कन्दर्प द्विपदर्पदानलहरी कादम्बिनी जृम्भते
यादवाभ्युदय महाकाव्य

2. देवीभागवत पुराण - अध्याय 65 पृ0 333
3. मार्कण्डेय पुराण - अध्याय 90 पृ0 228

श्रीकण्ठचरित

काश्मीरी कवि मंखक ने लिंग पुराण तथा शिवपुराण[1] में वर्णित पौराणिक आख्यान - शंकर एवं त्रिपुर युद्ध, के आधार पर 25 सर्गो में इस महाकाव्य की रचना की। मूल कथानक तो छोटा है किन्तु महाकाव्य के रूप में सर्जना कर कवि ने प्रशंसनीय कार्य किया है। इसके लिए कवि ने सूर्योदय, चन्द्रोदय, संन्ध्या, प्रदोष, रतिक्रीड़ा, पानकेलि एवं प्रभात आदि का विशद वर्णन किया है। 25वें सर्ग में तत्कालीन काश्मीरी कवियों का बड़ा ही जीवन्त एवं रोचक चित्रण है। कविता उच्चकोटि की है जिसकी रसमाधुरी पाठक हृदय को बरबस आकृष्ट करती है। शोभन पदावली, मनोहर अर्थ कल्पना तथा भक्ति की छलकन इस महाकाव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। कवि का मानना है कि जैसे मणिदीपक एवं तेल दीपक में अन्तर तब पता चलता है जब आँधी आती है? वैसे ही कविता के गुण कवित्व कठिन परीक्षा के बाद ही चलता है।[2] मंखककवि का यह कथन उनकी समीक्षात्मक दृष्टि का परिचायक है। अन्धकार के वर्णन में कवि की कल्पना तो और मौलिक, मनोरम तथा चमत्कृत कर देने वाली है। "सायंकाल का सूर्य महाकालेश्वर भगवान शिव का स्वर्ण निर्मित दावात (मसीपात्र) है। सन्ध्य के समय जब सूर्य अधोमुख होकर गिर पड़ता है तो वही स्याही दावात से निकलकर जगत में अन्धकार के रूप में फैल जाती है।[3]

---

1. अथाभ्ययात् पश्चिमसागरस्य मूर्धिन स्थितं तत् त्रिपुरं रथोऽसौ ।।

   शिवपुराण, अ0 53 सनत कुमार संहिता

   पेतुः समुद्रे बल विप्रयुक्ताः दैत्यान् समुद्रे पतितान् प्रणष्टान् ।।

   वही0 अध्याय 56

2. नो शक्य एव परिहृत्य दृढ़ां परीक्षां ।
   जातुं मितस्य महतश्च कवेर्विशेषः ।
   को नाम तीव्रपवनागममन्तरेण
   भेदेन वेत्ति शिखिदीपमणिप्रदीपौ ।।

   श्रीकण्ठचरित महाकाव्य 2/37

3. किन्नु कालगणनापतेर्मसीभाण्डमयमवपुर्हिरण्मयम् ।
   तत्र यद्विपरिवर्तितानने लिम्पतिस्य धरणीं तमोमषी ।।

   वही0 10/11

हरचरितचिन्तामणि

काश्मीरी विद्वान जयद्रथ कवि ने हरचरित चिन्तामणि नामक महाकाव्य की रचना की। इसका रचनाकाल 13वीं शताब्दी है। कविवर जयद्रथ काश्मीर के राजा राजदेव के सभा पण्डित थे। इसमें शिवपुराण में वर्णित महाकाव्य भगवान शंकर के चरित तथा लीला का विशद वर्णन है छन्द अनुष्टुप तथा भाषा सरल एवं सुबोध है।

शिव लीलार्णव

तंजौरदेशस्य कविवर नीलकण्ठ ने इस महाकाव्य की सर्जना 22 सर्गों में की है। इसमें मदुरे में पूजित सुन्दरनाथ देवाधिदेव महादेव की 64 लीलाओं का वर्णन है। यह लीला एवं चरित्र स्कन्दपुराण के हलास्य महात्म्य में वर्णित है।

त्रिपुरदहनम्

यह महाकाव्य महाकवि वासुदेव द्वारा विरचित है। इसकी कथावस्तु का आधार मत्स्य पुराण,[1] शिव पुराण[2] तथा भागवत पुराण[3] में वर्णित त्रिपुर विषयक आख्यान है। असुरों द्वारा त्रैलोक्य पीड़ित होने लगा तब देवताओं की प्रार्थना पर भगवान श्रीहरि कैलास पर गये और शंकरजी की आराधना करने लगे। प्रसन्न हुए शंकर जी ने श्रीहरि को सलाह दिया कि त्रिपुर में जाकर आप असुरों के शिव भक्ति से विमुख करें। सम्पूर्ण देव एवं नारद सहित श्रीहरि ने असुरों को कुमार्ग गामी बना दिया। इस प्रकार धर्माच्युत राक्षस समाज पर शिव क्रोधित हुए और उस क्रोधानल में सारे असुर जलकर राख हो गये यही पौराणिक आख्यान इस महाकाव्य का आधार है। इसमें तीन आश्वासों में सम्पूर्ण कथानक वर्णित है।

---

1. मत्स्य पुराण, अध्याय 129-40
2. शिव पुराण, रुद्र संहिता, पंचम खण्ड, अध्याय 9-10
3. भागवत पुराण, 7/10/56-71

रावणार्जुनीयम्

काश्मीरी कवि भट्ट भीम ने 27 सर्गों में रावणार्जुनीय महाकाव्य की रचना की। इसमें रावण एवं कार्त्तवीर्य अर्जुन के बीच युद्ध को कथावस्तु के रूप में महाभारत[1] एवं भागवतपुराण[2] से लिया गया है। कथा इस प्रकार है "एक बार दशानन रावण घूमते हुए महिष्मती नगरी में आया वहाँ उसने कार्त्तवीर्य अर्जुन से युद्ध करना चाहा किन्तु उसके नगरी में अनुपस्थित रहने के कारण वह नर्मदा नदी पर आया और स्नान करके शंकरजी की आराधना शुरू कर दी उसी समय कार्त्तवीर्य अर्जुन भी सहस्रभुजाओं से नर्मदा का जल रोककर विहार कर रहा था। नदी का जल अवरुद्ध होने से इधर-उधर बहने लगा। तट पर रखी पूजा सामग्री के बहने के कारण क्रुद्ध दशाननरावण अर्जुन पर दौड़ पड़ा युद्ध में कार्त्तवीर्य अर्जुन ने उसे बन्दी बना लिया और मुनि पुलस्त्य के विशेष आग्रह पर मुक्त कर दिया। इसी पौराणिक कथानक को आधार बनाकर कवि ने महाकाव्य की सर्जना की है। इसमें कई भाव भागवत पुराण[3] से भी ग्रहण किये गये हैं। एक उदाहरण है "वन में वृक्षों से फल गिरते हैं लोग इन्हें यथेच्छा से खाते हैं, सुखपूर्वक जीविका चल रही है तो आखिर परिश्रम की क्या आवश्यकता?[4] मूलतः भावसाम्य तो कवि प्रतिभा का उपकार ही करता है।

---

1. महाभारत, वन पर्व, अध्याय 116, 117
2. श्रीमद्भागवत पुराण 9/15, 16
3. चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
   नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।
   रुद्धा गुहाः किमजितो वति नोपसन्नान्
   कस्माद् भजन्ति कवयोधनदुर्मदान्धान् ।। भाग0 पु0 2/2/5 ।।
4. वने फलानि न्यपतन्द्रुमेभ्यः सुखं समादाय यथेच्छमादत् ।
   एवं सुखोपार्जन वर्तनोऽपि क्लेशाय सेवां कुरूते हि लोकः ।।
   रावणार्जुनीय, 23/46

रुक्मिणीहरण

यह बीसवीं सदी का प्रधान महाकाव्य है। इसकी रचना पं० काशीनाथ [illegible] ने की। इसमें कुल 21 सर्ग हैं। इसकी कथावस्तु मूलतः भागवतपुराण[1] में वर्णित श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के प्रेम एवं हरण रूप पौराणिक आख्यान पर आधारित है। पं० काशीनाथ ने इस कथा का विशद वर्णन अपने इस महाकाव्य में किया है। इसमें भावानुसार पदावली तथा यथोचित रस एवं छन्दालंकारों का प्रयोग है। यह कथा अन्य पुराणों[2] में भी वर्णित है। वस्तु वर्णन में कवि ने सन्ध्या, सूर्य, इन्दु, समुद्र, पर्वत, षड्ऋतु एवं प्रभात का वर्णन किया है। प्रभात[3] का मनोरम वर्णन उल्लेखनीय है।

वामनावतार

आधुनिक संस्कृत विधा के एक सशक्त आधार स्तम्भ तथा लेखक अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र ने भागवत,[4] पद्म,[5] वामन[6] आदि पुराणों में वर्णित वामनावतार नामक पौराणिक आख्यान को आधार बनाकर इस महाकाव्य की सर्जना की।

---

1. भागवतपुराण, दशम स्कन्ध, अध्याय 53, श्लोक 4-57 पृष्ठ 392
2. विष्णु पुराण, पंचम अंश, अध्याय 26, श्लोक 1-11 पृष्ठ 380
3. यामेष्वथ त्रिषुगतेषु निशीथिनी सा
निष्यन्दनीरवतराध्वनिता क्रमेण ।
निद्रालसेव रमणी रमणीय वाचां
वाचां भरेण रणिता भरणा बभूव ।। रुक्मिणी - 13/1 ।
4. भाग0पु0, अष्टम स्कन्ध, अध्याय 18-20, पृ0 834-42
5. पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, अध्याय 14 पृ0 234-48
6. वामन पुराण, अध्याय 87, 88 पृ0 389-99
हरिवंश पुराण, अध्याय 58 पृ0 878, अ0 69 पृ0 893, अध्याय 72 पृ0 901

देवीचरितम्

इस महाकाव्य की रचना महाकवि रामावतार मिश्र ने आदिशक्ति के महात्म्य का वर्णन करने हेतु की। देवीचरित की कथावस्तु मार्कण्डेय पुराण[1] के दुर्गासप्तशती नामक अंश से ली गयी है। इस अंश में वर्णित पौराणिक आख्यान को ही आधार बनाकर मिश्रजी ने इसे महाकाव्य रूप में परिणत कर दिया। इसमें जगत् की आद्य अवस्था के सहज निरूपण के साथ भगवान् नारायण के निद्रा परित्याग के बाद देवी द्वारा मधु तथा कैटभ नामक राक्षसों का वध वर्णित है। महिषासुर के भयावह अत्याचार, स्वर्ग पर उसके आक्रमण तथा उसकी विजय का भी उल्लेखनीय वर्णन है। इसके बाद आतंकित देवताओं की स्तुति से महिषासुर मर्दिनी का प्रकट होना तथा महिषासुर का विनाश वर्णित है। शुम्भ-निशुम्भ की कथा तथा देवी के अन्य अन्यरूपों द्वारा अनेक राक्षसों का बध वर्णित है।

भक्ति के धरातल पर अवस्थित देवीचरितम् महाकाव्य का स्थान बहुत ऊँचा है।

श्रीराधाचरितम्

यह पं0 कलिका प्रसाद शुक्ल द्वारा विरचित 13 सर्गो का महाकाव्य है। पदमपुराण[2] में वर्णित राधा विषयक पौराणिक आख्यान को आधार बनाकर इसकी रचना की गयी है। इस महाकाव्य में राधा की स्तुति, राधा सरोवर, बरसाना तथा यमुना का भव्य तथा मनोहारी चित्रण किया गया है। वस्तुतः इसमें कृष्णरसि का राधा के वियोगी जीवन का विशद वर्णन है। भाव, भाषा, रस, छन्द, अलंकार तथा शैली की दृष्टि से यह महाकाव्य अति महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि कहीं-कहीं श्रृङ्गार का ओछा चित्रण कुछ खटकने वाला है फिर भी इस कमी को इसकी दार्शनिकता सुपुष्ट कर देती है। राधाकृष्ण के ख्यात मनोरम सम्बन्धों पर रचित यह कृति सहृदयकण्ठाभूषण है।

---

1. मार्कण्डेयपुराण, दुर्गासप्तशती अंश, अध्याय 78-90
2. पदमपुराण, अध्याय 16, पृष्ठ 122

परम्बानुग्रह वेभवम्

डॉ0 गोपीनाथ कविराज ने 18 सर्गो में इस महाकाव्य की रचना की। इसकी कथावस्तु का मूल आधार देवीभागवतपुराण[1] में वर्णित देवी के अनुग्रह विषयक पौराणिक आख्यान है। इसका कथानक कुछ इस प्रकार है। अयोध्या के राजा ध्रुव सन्धि थे। उनकी दो रानियाँ मनोरमा तथा लीलावती भगवती की पूजा अर्चना करती हैं। दोनों को एक-एक पुत्र की प्राप्ति होती है। राज्य सिंहासन दिलाने का दोनों प्रयास करती हैं, उसमें मनोरमा का प्रयास विफल हो जाता है और वह वाराणसी चली आती है। इसके पूर्व वह कुछ दिन प्रयाग के भारद्वाज आश्रम में रहती है। सुदर्शन किसी ऋषि द्वारा उच्चारित क्लीव शब्द को क्लीं के रूप में सुनकर उसे जपता रहा जिससे भगवती की कृपा से उसे वाक्‌शक्ति की प्राप्ति हुई। देवी की स्तुति द्वारा उसने अक्षय तूणीर, धनुष तथा स्वर्ण का [illegible] प्राप्त किया। देवी ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा यश चिरस्थायी होगा साथ ही ऋषि भारद्वाज ने भी उसे समुद्र पर्यन्त पृथिवी का शासक होने का आशीर्वाद दिया। उधर शशिकला को भी देवी की कृपा से मनो मिलषित वर सुदर्शन की प्राप्ति होती है। अन्त में देवी की कृपा से सुबाहु और सुदर्शन मिलकर काशी को घेर लेते हैं सभी शत्रुओं को परासत कर पुनः भगवती की स्तुति करते हैं। सुबाहु के अनुरोध पर देवी काशी में वास करने का वचन देती है। जगज्जननी देवी सुदर्शन को अयोध्या जाकर राज्य करने का आदेश देती है। सभी शत्रु सुदर्शन के अधीन हो जाते हैं और सुदर्शन सभी को देवी भगवती का पावन चरित्र सुनाते हैं। इसी के साथ ही यह महाकाव्य का अन्त करते हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण कथा सुदर्शन पर ही आधारित है किन्तु इस कृति का मुख्य प्रतिपाद्य आदिशक्ति जगदम्बा की सत्ता महत्ता और भक्त वत्सलता का वर्णन करना है जो इस श्लोक[2] से स्पष्ट है।

---

1. देवी भागवत पुराण - अध्याय 20-25 पृष्ठ 116-41

2. या भासयति समग्रं जगदिहमखिलं विभाति निष्पाख्या ।
   तस्या लक्ष्म्याः करयोः समर्पितं भवतु काव्यमिदम् ।।
   परम्बानुग्रह वेभवम् दशम सर्ग ।।

शुम्भवधमहाकाव्य

यह महाकाव्य बसन्त त्रयम्बक शेवडे द्वारा रचा गया। इसकी कथावस्तु देवीभागवत[1] तथा मार्कण्डेय पुराण[2] के दुर्गा सप्तशती नामक अंश में वर्णित इस पौराणिक आख्यान - रक्तबीज आदि राक्षसों की मृत्यु से क्षुब्ध शुम्भ निशुम्भ ने मातृका से भयंकर युद्ध किए। भवानी ने दोनों का वध कर डाला, पर आधारित है। 14 सर्गों में रचित इस महाकाव्य की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है। शुम्भ इन्द्र का वैभव देखकर ईर्ष्या करने लगा इसकी प्राप्ति हेतु उसने त्रैलोक्य विजय अभियान प्रारम्भ किया। त्रिभुवन को जीतकर वह त्रैलोक्य का स्वामी बन गया। उसके अनीतिपूर्ण शासन से जनता में हाहाकार मच गया। सारे देवतागण बृहस्पति के पास पहुँचे और बृहस्पति से विनती करने लगे। बृहस्पति ने सारे देवताओं को हिमालय पर देवी की उपासना करने का निर्देश दिया। सभी देवों की उपासना से प्रसन्न देवी ने इस समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान हेतु शंकरजी के गण नन्दी को भेजा। शुम्भ ने इसे अस्वीकार करके अपने दूत सुग्रीव को देवी के पास भेजा किन्तु उसके निष्फल आगमन से वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और धूम्रलोचन से देवी को पकड़कर लाने के लिए कहा। धूम्रलोचन मारा जाता है इसके बाद चण्ड मुण्ड, निशुम्भ आदि सभी राक्षसों के मारे जाने से क्षुब्ध शुम्भ ने स्वयं देवी से युद्ध किया और वह भी मारा गया। विजय के उपलक्ष्य में देवों ने देवी पर पुष्प वर्षा किये और देवी की स्तुति की।

वस्तुतः शेवडे का यह महाकाव्य आसुरी शक्ति पर देवी शक्ति के विजय का प्रतीक है। पुराकथा के आश्रय से यह कथा और जीवन्त हो गयी है। साथ ही यह महाकाव्य शाक्तदर्शन के प्रकतीकरण का समुज्ज्वल दृष्टान्त है।

---

1. देवी भाग0 पु0 अध्याय 56, 64, पृष्ठ 293, 326
2. मार्कण्डेय पुराण दुर्गा सप्तशती अंश, अध्याय 86-87, पृष्ठ 221-22

विन्ध्यवासिनीविजय

यह महाकाव्य वसन्त त्रयम्बक शेवडे द्वारा 16 सर्गो में रचा गया। इसकी कथावस्तु का आधार वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा कालिदास के ग्रन्थ हैं किन्तु मुख्य उपर्जीव्य तो पौराणक ग्रन्थ ही है जिनमें देवी भागवत,[1] भागवत,[2] मार्कण्डेय[3] तथा विष्णु पुराण[4] मुख्य हैं। इन ग्रन्थों में वर्णित पौराणिक देवी विषयक आख्यान को महाकाव्य का रूप शेवडे जी ने दिया है। कथानक कुछ इस प्रकार है - किसी समय अबाध भ्रमण करने वाले त्रैलोम्यचारी देवर्पि नारद विन्ध्य के पास आते हैं, विन्ध्य अति प्रसन्न होता है और नारद की विधि पूर्वक पूजा करता है। अति तुष्ट होकर नारद ने विन्ध्य से कहा कि गर्वोन्मत्त इन्द्र तुम्हें तृणवत् मानता है। इन्द्र के प्रतिकार हेतु पर्वतों के मध्य विचार विमर्श हुआ और फिर विन्ध्य अबाधगति से आकाश की ओर बढ़ने लगा। इस अद्भुत दृश्य को देखने हेतु सभी उपस्थित हुए। सूर्य, चन्द्र की गति रूक गयी चारों तरफ हाहाकार मच गया जिससे इन्द्र अत्यन्त दुःखी हुआ। सभी देवता विष्णु के पास गये, विष्णु ने अगस्त्य के पास जाने को कहा। अगस्त्य के आश्रम में पहुँचकर सभी ने कष्ट सुनाया अगस्त्य ऋषि अपने पूरे परिवार को साथ लेकर विन्ध्य के पास पहुँचे विन्ध्य अत्यन्त हर्षित हुआ और गुरू की सविधि पूजा अर्चना की। ऋषि ने भी विन्ध्य की महत्ता का गुणगान किया और कहा कि तुम्हारे द्वारा अकारण प्रलय की स्थिति उत्पन्न की जा रही है। अतः दुराग्रह छोड़कर पूर्वावस्था का प्राप्त करो।

---

1. देवी भागवत पुराण, अध्याय 46-64, पृष्ठ 250-326
2. भागवत पुराण, दशम स्कन्ध, अध्याय 4, पृष्ठ 126
3. मार्कण्डेय, दुर्गासप्तशती अंश, अध्याय 78-89, पृष्ठ 200-26
4. विष्णु पुराण, पंचम अंश, अध्याय 3, श्लोक 25-29

विन्ध्य ने साधक गुरु की आज्ञा स्वीकार की और बोला कि यदि आप भगवती जगदम्बिका को मेरे कूट तट पर निवास कराने का प्रयास करें तो मैं पूर्ववत् झुक जाऊँगा। महर्षि अगस्त्य हिमालय पर जाकर देवी से विन्ध्याचल चलने की प्रार्थना करते हैं। देवी ने अगस्त्य की प्रार्थना स्वीकार की। इसके बाद उग्रसेन कंस, वसुदेव, देवकी आदि का वर्णन है। कंस के अत्याचारों से मुक्ति हेतु वासुदेव ने गर्ग ऋषि की पूजा अर्चना की। गर्ग ने विन्ध्यवासिनी का भजन करने को कहा। वसुदेव की ओर से जाकर गर्ग विन्ध्याचल में सहस्रचण्डी यज्ञ करते हैं। देवी प्रसन्न होती है और कहती हैं कि देवकी के ऑठवे गर्भ से विष्णु का जन्म होगा, वही कंस का वध करेंगे। कालान्तर में कृष्ण का जन्म होता है। वसुदेव कृष्ण को नन्द बाबा के घर पहुँचाते हैं। यशोदा के पास सोई हुई पुत्री को लाकर देवकी को देते हैं और संकल्प करते हैं कि मैं कारागार से मुक्ति के बाद सपरिवार विन्ध्यपीठ की यात्रा करूँगा। सुबह हुई, कंस आया और बालिका को उठाकर पटकना चाहा लेकिन हाथ से निकलकर आकाश में चली गयी और बोली मूर्ख! मैं विन्ध्यवासिनी हूँ, तुम्हारा अन्तक पैदा हो चुका है। कृष्ण की बाल लीला और कालियानाग से लोगों की मुक्ति हुई। अन्ततः कृष्ण के हाथों कंस का वध हुआ कारागार से वसुदेव और देवकी की मुक्ति हुई। वसुदेव द्वारा विन्ध्याचल में नवरात्र महोत्सव का विधान हुआ। सभी प्रजाजनों के साथ वसुदेव एवं देवकी ने राज्य किया।

वस्तुतः शेवडे जी की यह कृति बुराई पर अच्छाई, कुमार्ग पर सन्मार्ग तथा आसुरी शक्ति पर देवी शक्तियों के विजय की प्रतीक है।

xxxxx

:: उपसंहार ::

पुराण प्रणेताओं ने परिस्थितियों के केवल एक ही पक्ष को प्रस्तुत नहीं किया अपितु अच्छे-बुरे दोनों पहलुओं पर विचार किया। इसमें पतन के लक्षणों के चित्रण के साथ उत्थान के सूत्र भी हैं। भारत के गौरवमयी इतिहास के कलंकों का खुले रूप में वर्णन है। साथ ही भारत के मस्तक को ऊँचा करने वाली विभूतियों का भी वर्णन है। मानव मन की कमजोरियों का दिग्दर्शन कराते हुए उनका हल ढूँढ़ने का भी प्रयास किया गया है। दोषों, दुर्गुणों और कुरीतियों के दुष्परिणामों को और विशिष्ट ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है। इसमें मानव जीवन के उत्थान के सिद्धान्तों का वर्णन तो है ही, वह क्रिया रूप देने वाली साधनाओं का भी वर्णन है। कथाओं के माध्यम से जीवन जीने की कला सिखलाई गयी है। अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के विरोधी स्वभाव के प्रभावशाली व्यक्तियों को उभारा गया है। साम्प्रदायिक एकता एवं सामाजिक सौहार्द्र बनाने की भी बात कही गयी है। सारतः मानव जीवन के सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए जिन तथ्यों, विचारों और मूल्यों की आवश्यकता होती है। पुराण रचयिताओं ने इन आख्यानों के माध्यम से उसकी शिक्षा देने का सत्प्रयास किया है।

वस्तुतः जब-जब धर्म की हानि होती है, अधर्म का बोलबाला होता है, तो घोर सामाजिक अव्यवस्था फैल जाती है। इसका सुधार करने हेतु तब तब महान आत्माएँ अवतरित होती हैं। मूलतः आसुरी शक्तियों पर दैवी शक्तियों की विजय को दर्शाने हेतु अवतारवाद की अवधारणा का प्रादुर्भाव हुआ। चाहे बलि को छलने के लिए वामन का अवतार हो, चाहे हिरण्यकशिपु को मारने हेतु नृसिंहावतार

हो, चाहे पृथ्वी एवं वेद की रक्षा हेतु मत्स्यावतार हो चाहे हिरण्याक्ष द्वारा अपहृत पृथ्वी का उद्धार करने हेतु वराहावतार हो चाहे सागर मन्थन हेतु कूर्मावतार हो। सभी में बुराई पर अच्छाई की तथा असत्य पर सत्य की विजय को दर्शाया गया है।

ईमानदारी और सच्चाई हमेशा पुरस्कृत होती है। बेईमानी एवं झूठ को दण्ड अवश्य मिलता है शायद झूठ का ही फल था कि ब्रह्माजी को अपने एक सिर गँवाने पड़े तथा केतकी का पुण्य शिव की पूजा से बहिष्कृत हो गया उसका दोष यह नहीं था कि इसने झूठ बोला था बल्कि यह था कि झूठ बोलने वाले ब्रह्मा की गवाही दी थी।

राजा का भी कर्त्तव्य होता था कि प्रजाहित में हमेशा तत्पर रहे। पर्वतों के इधर-उधर उड्डयन से दुःखित पृथ्वी के कष्ट को दूर करने हेतु ही तो इन्द्र ने पर्वतों का पंख काटा। लेकिन एक बात यहाँ और खटकने वाली है कि उस समय समाज में, विपत्ति में कोई किसी का साथ नहीं दे सकता था चाहे वह पिता एवं पुत्र ही हो, यह असहयोग सामाजिक पतन का सूचक था जो मैनाक के सागर वास नामक पौराणिक आख्यान में दृष्टिगोचर होती है।

उस काल की एक विशेषता यह भी थी कि संघर्ष देवी एवं आसुरी शक्तियों में ही नहीं बल्कि देवों एवं मानवों में भी संघर्ष होता था। पारिजातहरण तथा देवासुर-संग्राम में यही बात स्पष्ट झलकती है। पारिजात के लिए कृष्ण तथा सभी देवों का संघर्ष हुआ, देवों की पराजय हुई। इससे यह ध्वनि निकलती है कि मानव देवों से श्रेष्ठ हैं। देवता भोग करते हैं। मानव भोग एवं कर्म दोनों करता है। मानव अपने बल, पौरूष तथा पराक्रम से उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता था। इसमें मानव का गौरव झलकता है।

सुकार्यो से ही समाज में एक सुव्यवस्था स्थापित होती है जिससे समाज का विकास होता है। लोकसंग्रह एवं लोक कल्याण के लिए ही भगवान ने राक्षसों का वध किया चाहे वह गजासुर हो या बाणासुर, चाहे वह वृत्तासुर हो या त्रिपुर चाहे तारकासुर हो या शिशुपाल, चाहे शम्बरासुर हो या जरासन्ध, चाहे नरकासुर हो या पूतना, चाहे शकरासुर हो या अन्धकासुर।

इस लोक कल्याण या सामाजिक सुव्यवस्था के लिए ही एक महान त्याग यज्ञ आरम्भ हुआ जिसमें सभी होताओं - शंकर, पार्वती, मदन, रति, अग्नि, भागीरथी, कृत्तिका, अगस्त्य, दधीचि, पृथु, शुक्राचार्य तथा विश्वामित्र को अपने-अपने स्वार्थ की आहुति देनी पड़ी। शंकर जैसे निवृत्ति मार्गी योगी को लोककल्याणार्थ गृहस्थाश्रम का सार्वजनिक प्रवृत्ति मार्ग स्वीकार करना पड़ा, कोमलांगी पार्वती को तपस्या के आग में झुलसना पड़ा, लैंगिक क्रीडा द्वारा स्त्री पुरूष प्रेम प्रतिपादित करने वाले कामदेव को भस्म होना पड़ा, रति को पति वियोग का दुर्दम दुःख सहना पड़ा, अग्नि को कुण्ठ की पीड़ा सहनी पड़ी, भागीरथी के दाह की ज्वाला से आक्रान्त होना पड़ा, कृत्तिकाओं को लोकापवाद की भययातनायें सहनी पड़ी, अगस्त्य को सागर पान के साथ-साथ प्रवजन का दुःख सहन करना पड़ा, दुर्गम हिमालय की यात्रा करनी पड़ी, दधीचि को अस्थिदान करना पड़ा, पृथु जैस राजा को अपना ऐशो-आराम छोड़ना पड़ा, शुक्राचार्य को कच को संजीवनी विद्या देना पड़ी और विश्वामित्र को अपने तप का आधा भाग देना पड़ा। इन सबके मूल में क्या था? आखिर लोक कल्याण ही था।

अगस्त्य के आख्यान के माध्यम से वैदिक संस्कृति एवं सामाजिक मान्यताओं को प्रत्यक्ष कर दिया गया है। वे जनहित में कोई भी कष्ट सह सकते हैं। वे

शिष्य विन्ध्याचल की प्रार्थना पर हिमालय एवं कैलाश की दुर्गम यात्रा करते हैं। उनकी विन्ध्य से कैलाश की धार्मिक एवं सांस्कृतिक यात्रा राष्ट्रीय एकता और मानवीय समरसता का प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। इनकी छवि एक राष्ट्रीय नायक के रूप में है। वे भारत की सांस्कृतिक एकता के अग्रदूत हैं। भारतीय साहित्य में उल्लिखित गुरु शब्द अगस्त्य के लिए पूर्णरूपेण सार्थक है। उनकी गुरुता एव महानता के सामने विन्ध्य जैसा शक्तिशाली पर्वत भी झुक गया और इसी झुकाव ने उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत को एक कर दिया। इस कारण अगस्त्य को सांस्कृतिक गुरु कहना पूर्णरूपेण सार्थक है। इससे यह भी शिक्षा मिलती है कि सच्चा गुरु वही है जो शिष्य की विपत्ति में काम आवे तथा उसकी लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति में सहायक हो।

सत्य के समाज ही चरित्र का शुद्ध और निष्कलंक होना मानव जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य है। यदि यह कहा जाय कि आदर्श जीवन अथवा धर्ममय जीवन के दो पहिये सत्य और चरित्र हैं तो इसमें कोई अनुपयुक्त बात नहीं। सचमुच चरित्र ही देवत्व है और चरित्रहीनता ही राक्षसपन। वस्तुतः चरित्र का उत्थान इस प्रकार होवे कि वह देवत्व तक पहुँच जाय। मानव ही नहीं देवताओं के लिए भी चरित्र एक अनिवार्य तत्त्व था। चरित्रहीनता के कारण ही इन्द्र और अहल्या को गौतम के शाप का भोजन बनाना पड़ा। ब्रह्मा पूज्य देव की पदवी से ही च्युत हो गये, गुरु पत्नी तारा एवं चन्द्रमा दोनों को लज्जित होना पड़ा, अग्नि से सुवर्ण की उत्पत्ति तथा पुरूरवा उर्वशी प्रेम में भी आंशिक ही सही लेकिन चरित्रहीनता संकेतित हो रही है।

कामासक्ति, भोगलिप्सा, व्यभिचार तथा सभी प्रकार के दुर्व्यसन ही चरित्रहीनता के मूल हैं। जब काम तपस्वी ऋषियों को भी पतित करने में समर्थ है तो साधारण व्यक्तियों की क्या बिसात। यहाँ तक कि देवतागण भी इससे नहीं बने हैं। भागों में लिप्त होने का राजा ययाति का उदाहरण अपने ढंग का अनोखा है। लम्बे समय तक भोगों में लिप्त होना एक दोष है और पुत्र का यौवन छीनकर वासना की तृप्ति करना दूसरा दोष है। पुत्र की खुशियों के अपहर्त्ता पिता तो आज इस घोर कलियुग में भी दुर्लभ है।

चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा से व्यभिचार किया। इन्द्र ने छल से अहल्या को दूषित किया। गुरु-पत्नी शिष्य के लिए माँ के समान पूज्य होती हैं। यही नहीं ऋषि पत्नी भी माँ सदृश ही होती है। उस पर आसक्त होना घोर पतित अवस्था का परिचायक है। वैसे कामासक्त व्यक्ति देवत्व और मानवीयता दोनों से गिर जाता है और वह किसी भी अनुचित उपाय को अपनाने में संकोच नहीं करता। अतः इन आख्यानों को काम के प्रति सावधान रहने के लिए चेतावनी समझनी चाहिए।

वस्तुतः इन आख्यानों, कथाओं तथा उपकथाओं के माध्यम से सुधी जनों ने जनता को जागरूक बनाया जागरूक को भी सचेत किया ताकि व्यक्ति का चारित्रिक पतन न हो। क्योंकि किसी विद्वान की यह कहावत कितनी सुन्दर बैठती है -

If wealth is lost, Nothing is lost.

If health is lost, something is lost.

I character is lost, every thing is lost.

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च ।

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ।। महाभारत ।।

सम्पूर्ण भारतीय वाङ्.मय किसी न किसी रूप में आख्यानों उपाख्यानों एवं कथाओं से परिपूर्ण है। हो सकता है कि वे कथाएँ या आख्यान लौकिक या ऐतिहासिक, सामाजिक या धार्मिक, साहित्यिक या सांस्कृतिक किसी भी रूप में हो। इन आख्यानों एवं उपाख्यानों को पूर्व में सूत जन कण्ठस्थ कर गाया करते थे और कभी-कभी अपने वर्ण्य विषय को अधिक आकर्षक बनाने के लिए परम्परागत गाथाओं में परिवर्तन भी कर देते थे। इसीलिए लिखित पौराणिक साहित्य में सभी प्रकार की बातें सहजता से प्राप्त हो मिलती हैं शायद यह स्वाभाविक भी था क्योंकि मौखिक आधार वाला साहित्य चिरस्थायी नहीं हो सकता। पाश्चात्य विद्वान मोल्टन ने भी यही माना कि मौखिक साहित्य संतरणशील होता है, उसमें लिखित काव्य जैसी स्थिरता नहीं होती। वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक एक ही कथा का अनेक रूपों में प्राप्त होना इसी बात का अकाट्य प्रमाण है। एक ही कथा के साथ अनेक उपकथाओं का जुड़ना उसकी बृहद्रूपता का हेतु है। इन कथाओं, आख्यानों तथा उपाख्यानों को इतिहास, पुराण, महाकाव्य सबका आदि रूप माना जा सकता है। अथवा हम यूँ कहें कि इन सबका विकसित, पल्लवित एवं परिवर्धित रूप ही ये सभी ग्रन्थ हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि युग-युग की प्रदीर्घ यात्रा में कोई कथा लोकप्रियतावश अपने आसपास के अनेक उपकथाओं का जाल एकत्र करती हुई और कभी-कभी अपने पूर्व या मूल रूप में परिवर्तित होती हुई किसी प्रतिभाशाली रचनाकार द्वारा संगुम्फित कर दी जाती है और अन्त में वह बृहदाकार ग्रन्थ का रूप ले लेती

है। इन प्राचीन आख्यानों, उपाख्यानों का रूप महाकाव्यों में इस तरह प्रयोग किया गया कि अब यह बतलाना भी कठिन है कि इन आख्यानों तथा उपाख्यानों से सुललित महाकाव्यों की सुदीर्घ परम्परा में काव्यप्रणेता या रचनाकार को किस-किस मार्ग से होकर गुजरना पड़ा। मूलतः यह विवेचन पाश्चात्य मनीषी मैकलीनडिक्सन के कथन को भी इंगित करता है - विकसनशील महाकाव्य का आज प्राप्त होने वाला यह सुन्दर रूप किसी निश्चित अवधि विशेष में नहीं अपितु इसकी सर्जना में न जाने कितने सामूहिक गीत नृत्यों, आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं तथा गाथाचक्रों का उपयोग हुआ होगा। निश्चयेन डिक्सन का यह कथन महाकाव्यों में पौराणिक सन्दर्भों की महनीयता ही प्रस्तुत करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सनातन धर्म के प्राणभूत पुराण हमारी जीवन यात्रा के शाश्वत पाथेय है। जीवन इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र सबका समष्टि रूप है। एकांगी रूप या व्यष्टि रूप कभी जीवन नहीं हो सकता। नानारूपात्मक जगत् में विविधता के साथ आश्चर्य भी है गुणों के साथ दोष भी है, अच्छाई के साथ बुराई भी है।

कुल मिलाकर जागतिक जीवन इस विरोधाभास का अद्भुत रूप है। चूँकि पौराणिक आख्यान भी इहलोक के ही मानव द्वारा रचित हैं तो उसके साथ भी विचार-विमर्श किसी दुराग्रह से ग्रसित होकर नहीं अपितु समादृत एवं समीक्षात्मक भावना से करना होगा। हो सकता है कि कुछ पौराणिक सन्दर्भ इहलोक के संकीर्ण मानव को अतिरंजित एवं काल्पनिक लगे किन्तु यह बात उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि आज वैज्ञानिक युग में जहाँ विकास की अपार सम्भावनाएँ विद्यमान है वहाँ किसी भी बात को अतिरंजित एवं काल्पनिक नहीं कहा जा सकता। चूँकि कल्पना

का क्षेत्र असीम है और विज्ञान इस कल्पना को ही प्रयोगों द्वारा वैज्ञानिक रूप प्रदान करके यथार्थ एवं वास्तविक बना रहा है।

हम यह मान सकते हैं कि ये पौराणिक आख्यान अतिशयोक्तिपूर्ण हैं लेकिन इनके माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा एवं उपदेश की उपादेयता पहले थी, आज है और भविष्य में भी रहेगी।

xxxx

:: सहायक ग्रन्थ सूची ::

1. ऋग्वेद संहिता — वैदिक संशोधन मण्डल पूना - सायण भाष्य सहित
2. शतपथ ब्राह्मण — माध्यन्दिन सायण भाष्य सहित, वैंकटेश्वर प्रेस मुम्बई
3. तैत्तिरीय उपनिषद् — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
4. कठोपनिषद् — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
5. मुण्डकोपनिषद् — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
6. श्वेताश्वतर उपनिषद — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
7. ईशावास्योपनिषद् — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

पुराण ग्रन्थ

8. विष्णु पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
9. भागवत पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
10. अग्नि पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
11. मत्स्य पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
12. मार्कण्डेय पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
13. भविष्य पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
14. ब्रह्मपुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
15. ब्रह्नाण्ड पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
16. ब्रह्मवैवर्त पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
17. वामन पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर
18. वराह पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

19. हरिवंश पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

20. देवीभागवत पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

21. वायु पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

22. नारद पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

23. पद्म पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

24. लिंग पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

25. गरुड़ पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

26. कूर्म पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

27. स्कन्द पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

28. नरसिंह पुराण — गीताप्रेस, गोरखपुर

महाकाव्य

29. बाल्मीकि रामायण — गीताप्रेस, गोरखपुर

30. महाभारत — गीताप्रेस, गोरखपुर

31. कुमारसम्भव — कालिदास — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

32. रघुवंश महाकाव्य — कालिदास — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

33. किराताजुर्नीय — भारवि — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

34. शिशुपालवध — माघ — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

35. नैषधीयचरित — श्रीहर्ष — चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

36.	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरत	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
37.	काव्यालंकार	आचार्य भामह	देवेन्द्र नाथ शर्मा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना
38.	काव्यालंकार	रुद्रट	देवेन्द्र नाथ शर्मा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना
39.	काव्यालंकार सूत्र	वामन	देवेन्द्र नाथ शर्मा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना
40.	काव्यादर्श	दण्डी	देवेन्द्र नाथ शर्मा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना
41.	काव्यमीमांसा	राजशेखर	पं0केदारनाथ शर्मा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना
42.	काव्य प्रकाश	मम्मट	आचार्य विश्वेश्वर एण्ड सन्स दिल्ली 1975
43.	साहित्य दर्पण	आचार्य विश्वनाथ	मोती लाल बनारसी दास 1956
44.	रसगंगाधर	पं0 राज जगन्नाथ	मोती लाल बनारसी दास 1956
45.	दशरूपक	आचार्य धनन्जय	मोती लाल बनारसी दास 1956
46.	काव्यानुशासन	हेमचन्द्र	मोती लाल बनारसी दास 1956
47.	सरस्वती कण्ठाभरण	भोजराज परमार	मोती लाल बनारसी दास 1956
48.	वक्रोक्ति जीवितम्	कुन्तक	आचार्य विश्वेश्वर आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली
49.	ध्वन्यालोक	आचार्य आनन्दवर्धन	आचार्य विश्वेश्वर आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली

समीक्षा ग्रन्थ

50.	पुराण विमर्श	आचार्य बलदेव उपाध्याय विश्वविद्यालय प्रकाशन
51.	कवि एवं काव्य	आचार्य बलदेव उपाध्याय विश्वविद्यालय प्रकाशन
52.	संस्कृत सुकवि समीक्षा	आचार्य बलदेव उपाध्याय विश्वविद्यालय प्रकाशन
53.	संस्कृत आलोचना	आचार्य बलदेव उ0प्र0हिन्दी संस्थान लखनऊ
54.	भारतीय साहित्य शास्त्र	आचार्य बलदेव उपाध्याय विश्वविद्यालय प्रकाशन

55. संस्कृत साहित्य का इतिहास — आचार्य बलदेव उपाध्याय विश्वविद्यालय प्रकशान

56. संस्कृत शास्त्रो का इतिहास — आचार्य बलदेव उपाध्याय विश्वविद्यालय प्रकशान

57. संस्कृत वाङ्.गमय का बृहद इतिहास — आचार्य बलदेव उ0प्र0 संस्कृत संस्थान लखनऊ

58. संस्कृत साहित्य का इतिहास - मैकडानल — मैकडानल

59. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कीथ — कीथ

60. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी

61. कालिदास — प्रो0 चन्द्रबली पाण्डेय

62. कालिदास — आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

63. कालिदास का सौन्दर्य बोध — मुकुल रानी त्रिपाठी

64. पुरातत्व विमर्श — थनेश चन्द्र उप्रेती

65. अष्टादश पुराण दर्पण — पं0 ज्वाला प्रसाद मिश्र

अंग्रेजी ग्रन्थ

66. History of Indian Literature — A. Weber

67. History of Indian Literature — W. Winternitz

68. History of Sanskrit Literature — Das Gupta & S.K. De

कोश ग्रन्थ

69. Pauranic Encyclopaedia - A Comprehensive Dictionary with special reference to the epic and Pauranic Literature by Vetten Muni.